वक्रेश्वर की भैरवी

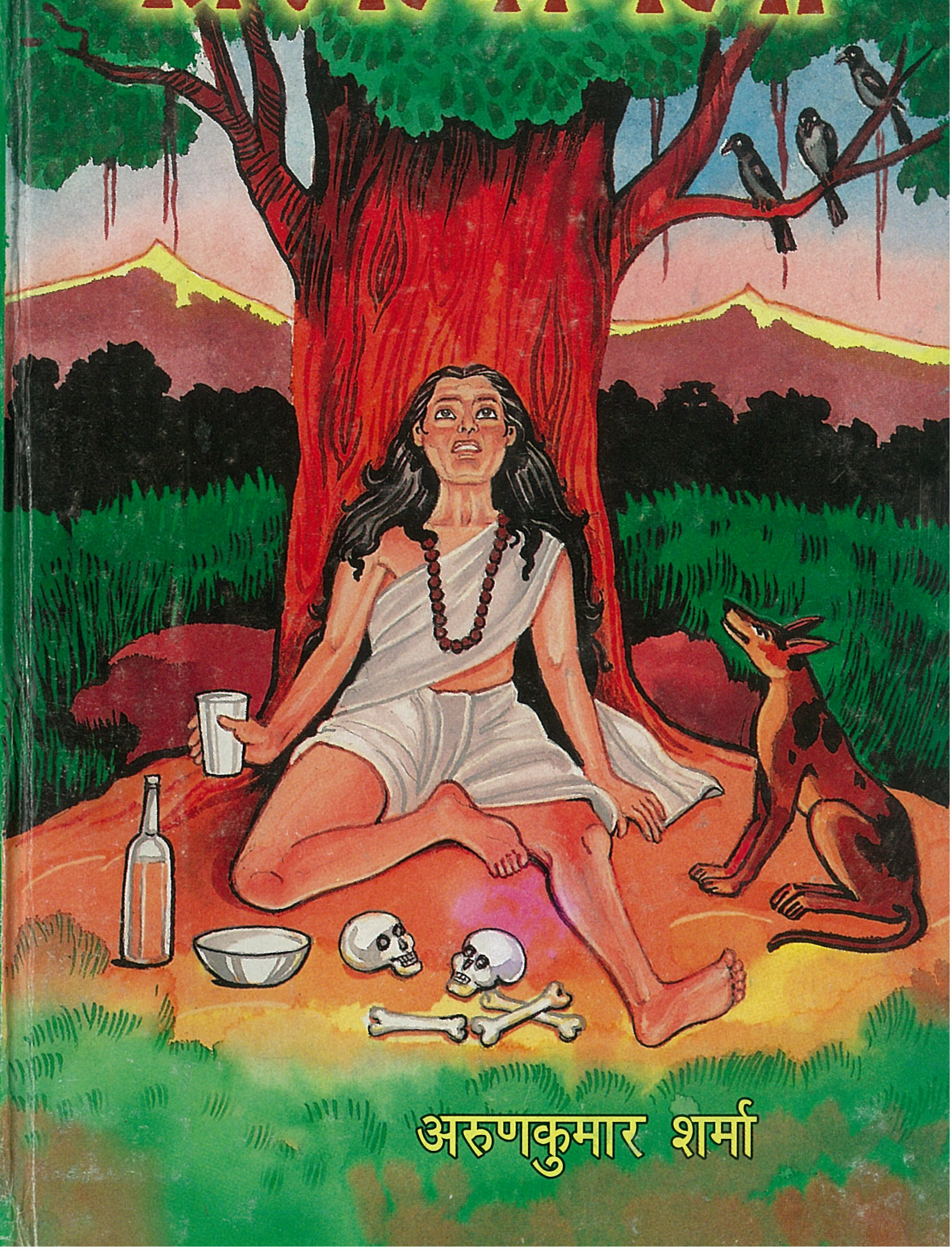

अरुणकुमार शर्मा

वक्रेश्वर की भैरवी

(सत्य घटनाओं पर आधारित योग तंत्रपरक कथाएँ)

अरुणकुमार शर्मा

संकलन

मनोजकुमार शर्मा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

VAKRESHWAR KI BHAIRVI

by

Arun Kumar Sharma

ISBN : 81-7124-491-2

वक्रेश्वर की भैरवी और उसके अन्तर्गत सभी कथाओं पर लेखक का सर्वाधिकार है। बिना उसकी अनुमति के कथा अथवा उसके किसी अंश का किसी भी भाषा में अनुवाद अथवा अन्य प्रकार का उपयोग पूर्ण रूप से प्रतिबन्धित है।

—आगम निगम संस्थान, वाराणसी

प्रथम संस्करण : 2006 ई०

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

उन सिद्ध साधकों की
स्मृति में
जिनकी अहैतुकी प्रेरणा
मुझे
बराबर प्राप्त होती रही
है

—अरुणकुमार शर्मा

कथा-सूची

दो शब्द vii

१. दीपावली की वह रहस्यमयी रात १

२. रहस्यमय विलक्षण मूर्ति २३

३. भैरवी दीक्षा ३४

४. तंत्र-मंत्र के नाम पर ४२

५. मिस्त्र की तांत्रिक भैरवी ५४

६. लामा तांत्रिक का चमत्कार ६६

७. जब एक मृतात्मा ने बदला लिया ८५

८. काली का वह रहस्यमय साधक १००

९. श्मशान की सिद्ध भैरवी ११७

१०. वक्रेश्वर की भैरवी १६४

●

दो शब्द

'वक्रेश्वर की भैरवी' जिन योग-तन्त्र-परक कथाओं का संग्रह है, वे निःसन्देह आपको अविश्वसनीय और असम्भव-सी लगेंगी, स्वाभाविक भी है। आज के वैज्ञानिक युग में भला कौन विश्वास करेगा, इन्द्रियों की सीमा से परे घटित घटनाओं पर, लेकिन यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस भौतिक जगत में दो सत्ताएँ हैं—आत्मपरक सत्ता और वस्तुपरक सत्ता। वस्तुपरक सत्ता के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं को तो प्रमाणित किया जा सकता है, लेकिन आत्मपरक सत्ता का नहीं। इसलिए कि आत्मपरक सत्ता की सीमा के अन्तर्गत जो कुछ भी है, उनका अनुभव किया जा सकता है, और उनकी अनुभूति की जा सकती है। अनुभव मन का विषय है और अनुभूति है आत्मा का विषय। दोनों में यही अन्तर है। मन का विषय होने के कारण किसी न किसी प्रकार एक सीमा तक अनुभवों को तो व्यक्त किया जा सकता है लेकिन अनुभूति को व्यक्त करने के लिए कोई साधन नहीं है क्योंकि वह है आत्मा का विषय। मन को एकाग्र कर आत्मलीन होने पर इन्द्रियातीत विषयों की अनुभूति होती है।

वेद परम ज्ञान हैं और तंत्र हैं गुह्य ज्ञान, जो अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय गोपनीय और तिमिराच्छन्न है। उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित होने के लिए जहाँ एक ओर मैंने योग तंत्र पर शोध एवं अन्वेषण कार्य शुरू किया, वहीं इसकी ओर प्रच्छन्न, अप्रच्छन्न रूप में संचरण-विचरण करके सिद्ध योगी साधकों और अति गोपनीय ढंग से निवास करने वाले संत-महात्माओं की खोज में हिमालय और तिब्बत की जीवन-मरण-दायिनी हिम-यात्रा भी की। पूरे तीन साल रहा मैं तिब्बत के रहस्यमय वातावरण में।

कहने की आवश्यकता नहीं। अपने इसी खोज अन्वेषण और अपनी यात्रा के सिलसिले में मेरे जीवन में जो भी अलौकिक और अभौतिक घटनाएँ घटीं और चमत्कार पूर्ण अविश्वसनीय अनुभव हुए उन्हें बराबर लिपिबद्ध कर अपनी प्रांजल भाषा में कथा रूप देता रहा। उन्हीं कथाओं में कुछ का संग्रह 'वक्रेश्वर की भैरवी' है, जो आपके सम्मुख है।

मुझे पूर्ण आशा है, और विश्वास भी है कि अन्य कथा-संग्रह की तरह यह कथा संग्रह भी रोचक और ऊर्जा देय सिद्ध होगा।

अरुणकुमार शर्मा

आगम निगम संस्थान
वी० ५/२३, अवध गर्वी
हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी-१

१

दीपावली की वह रहस्यमयी रात

सन् १९४९ ई०।

अक्टूबर का सिहरन-भरा महीना और दीपावली का दिन। मेरी तांत्रिक साधना का विशेष पर्व।

काशी में कई शक्तिपीठ हैं, जिनमें देवनाथपुरा का शिवशिवा, पंचकोट की श्मशान काली और दुर्गाकुण्ड की दुर्गाजी तंत्र की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं। हर वर्ष की भाँति दीपावली के दिन जब मैं शिवशिवा और श्मशान काली का दर्शन-पूजन आदि करने के पश्चात् जब दुर्गाकुण्ड पहुँचा उस समय साँझ की स्याह कालिमा बिखर चुकी थी वातावरण में। मैंने विधिवत् दुर्गाजी का दर्शन-पूजन किया और मन्दिर के बाहर निकल आया। उन दिनों मन्दिर के पीछे आम, पाकड़, पीपल और बरगद कई घने पेड़ थे और चारों ओर हमेशा छाया रहता था सन्नाटा!

मन्दिर के सामने घना जंगल था जो संकटमोचन तक फैला हुआ था, जिसके बीच से एक सँकरी पगडंडी साँप की तरह बलखाती चली गयी थी नरिया और सुन्दरपुर गाँव की ओर। न जाने क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत हो कर चल पड़ा मैं उसी पगडंडी पर। जितना बढ़ता उतना ही और-और आगे जाने की इच्छा होती। घने ऊँचे-ऊँचे पेड़-पौधे, ऊँची झाड़ियाँ और उन झाड़ियों के घने झुरमुट, पक्षियों की चहचहाहट, बन्दरों की चिकचिक और गिलहरियों की विचित्र आवाज के साथ पेड़ों की डालियों की पत्तियों की सरसराहट परिचित से लगे मुझे! पहली बार जाना हुआ था मेरा उस ओर लेकिन ऐसा लगता था कि भली-भाँति परिचित हूँ मैं वहाँ के जंगली वातावरणों से। विचित्र-सी उदासी थी वहाँ और थी वातावरण में गहरी निस्तब्धता। साँझ की स्याही थोड़ा और गहरा गयी थी। अब न बन्दरों, गिलहरियों और पक्षियों की आवाजें सुनायी दे रहीं और न तो पेड़ों की पत्तियों की सरसराहट। लगा जैसे वातावरण जड़ीभूत हो गया हो। एक हल्की-सी सुगन्ध वातावरण में व्याप्त थी। वह कैसी सुगन्ध थी? समझ में नहीं आयी मेरी। हल्की ठंडक-सी लगने लगी मुझे। जल्दी से चलता हुआ घने जंगलों से निकलने का प्रयास करता हुआ आगे बढ़ रहा था मैं। और तभी सामने एक खुला स्थान दिखलायी दिया मुझे। जंगल में वह खुला स्थान हरी-हरी घासों से भरा था और जिसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे घने वृक्ष हवा में झूम रहे थे। मैदान बड़ा ही रमणीय और मनोहारी लगा मुझे। थोड़ा आगे

बढ़ने पर एक छोटा-सा मन्दिर दिखलायी दिया। मन्दिर काफी पुराना और जीर्णशीर्ण था। आगे टूटी-फूटी दो सीढ़ियाँ थीं। मन्दिर के सामने लकड़ी का एक कुंदा गड़ा था जमीन में, जिस पर सिन्दूर पुता हुआ था। वहाँ पहुँचने पर वह रहस्यमयी विचित्र सुगन्ध और तेज हो गयी थी। वह सुगन्ध किधर से आ रही थी, समझ न सका मैं। सम्भवतः मैं दूसरी दिशा में निकल आया था। यह बात बड़ी विचित्र-सी लग रही थी कि यह जंगल इतना विस्तृत कैसे हो गया? अब मैं मन्दिर के सामने आ गया था। मन्दिर किसका है और कौन देवता उसमें स्थापित हैं? यह जानना चाहा मैंने। चारों तरफ गहरी नीरवता थी। आसपास कोई नहीं दिखलायी दिया मुझे। मन्दिर का टूटा दरवाजा खुला हुआ था। भीतर हल्का-सा प्रकाश था। निश्चय ही मन्दिर के भीतर से वह विचित्र सुगन्ध बाहर आकर फैल रही थी चारों तरफ। वह प्रकाश निश्चय ही मन्दिर में जल रहे दीपक का था, इसमें संदेह नहीं। बाहर कोई पुजारी मिला नहीं। शायद भीतर हो वह मन्दिर के। मन्दिर के भीतर जाने की इच्छा हुई। फिर सोचा कहीं अनधिकार चेष्टा न हो। और मुझे लगा जैसे मेरा नाम लेकर पुकारा हो किसी ने। चौंक पड़ा मैं। सम्भवतः मेरा भ्रम रहा हो। यहाँ इस वीरान सुनसान स्थान में और इस सर्वथा अपरिचित मन्दिर के बाहर भला कौन मेरा नाम लेकर पुकार सकता है मुझे। और यहाँ कोई और है भी तो नहीं। आवाज जब सुनी मैंने तो वह चारों ओर से आती हुई लगी थी मुझे। सिर घुमा कर इधर-उधर देखा, कहीं कोई नहीं। थोड़ी दूर पर पेड़ों की पत्तियाँ अवश्य हिल रही थीं।

अब तक साँझ की स्याह कालिमा रात्रि के गहन अंधकार में बदल चुकी थी। अब मेरे भीतर भय का संचार होने लगा था। सोचने लगा क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अंधेरे में रास्ता मिलेगा कहाँ? सम्भवतः मन्दिर में कोई हो। दीप तो वहाँ प्रकाशित है ही। किसी भी व्यक्ति से मिलने को उत्सुक था मैं उस समय। दुर्गा मन्दिर से किस दिशा में आ गया हूँ यह मालूम करना था मुझे।

सहमते हुए धीरे से मन्दिर के भीतर झाँका। झाँकते ही जिस पर मेरी दृष्टि पड़ी वह थी माँ महामाया भगवती काली की विशाल मूर्ति। मूर्ति काले चमकीले पत्थर की थी और थी काफी पुरानी। माँ महामाया के रक्ताभ नेत्रों में करुणा, दया, अनुकम्पा का मिला-जुला भाव स्पष्ट झलक रहा था, लेकिन उसमें थोड़ा क्रोध का भी भाव था। गले में नरमुण्डों की माला झूल रही थी जो बिल्कुल सजीव-सी लग रही थी। माँ की बाहर निकली हुई जीभ पर लगा शोणित देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अभी-अभी किसी नरपशु का रक्तपान किया हो उन्होंने। बाएँ हाथ में ऊपर की ओर तने हुए विकराल खड्ग और नीचे के हाथ में झूलता हुआ नर-पशु का रक्तरंजित मुण्ड देख कर जहाँ भय और आतंक का संचार होना स्वाभाविक था वहीं मन में शक्ति, सुख और आनंद के अतिरिक्त अभय की अनुभूति का होना भी स्वाभाविक था वरद और अभय हस्त देख कर माँ का।

पंचमुण्डी आसन पर अट्टहास करती हुई शिवारूढ़ा महामाया तंत्र की महाशक्ति महाकाली का रूप अति सजीव प्रतीत हो रहा था। सामने हवन कुण्ड था, जिसमें से धूम्र की पतली रेखायें निकल कर मन्दिर के वातावरण में चारों ओर फैल रही थीं। हवन कुण्ड के बगल में गजाधार पर चौमुखा दीप जल रहा था, जिसके हल्के प्रकाश में माँ की मुखाकृति और अधिक लग रही थी भयानक। अब तक मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हो चुका था मैं। जो कुछ देखना शेष था वह भी अब स्पष्ट हो गया था मेरे सामने। बायीं ओर की मटमैली दीवार के सहारे एक काफी लम्बा-चौड़ा भयंकर खड्ग लटक रहा था, जिस पर लगे खून सूख कर काले पड़ गये थे। एक बड़ी-सी थाली में नारियल, माला, जवा पुष्प, कपूर और सिन्दूर रखा हुआ था। मन्दिर के भीतर का वातावरण निश्चय ही भयप्रद और रहस्यमय था, इसमें सन्देह नहीं। सिर झुका कर माँ महामाया को प्रणाम किया मैंने दोनों हाथ जोड़ कर और तभी किसी ने गम्भीर आवाज में मेरा नाम लेकर पुकारा—बेटा अरुण कुमार ! मुझे लगा मूर्ति बोली है। चौंक कर माँ का मुँह देखने लगा मैं। तभी बगल से आवाज आयी, इधर देखो मैं यहाँ हूँ ...!

अब मेरा ध्यान उधर गया। दाहिनी ओर मन्दिर के कोने में कोई बैठा हुआ था। उस पर दीपक का मटमैला हल्का प्रकाश पड़ रहा था। उसी हल्के प्रकाश में ध्यान से आँखें गड़ा कर देखा मैंने। व्याघ्र चर्म के आसन पर एक साधु पद्मासन की मुद्रा में तन कर बैठा हुआ था। उसके सिर पर लम्बी जटायें थीं। शरीर पर लाल वस्त्र था। रंग साँवला था। मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। गले में रुद्राक्ष, स्फटिक और हड्डी के टुकड़ों की मालायें झूल रही थीं। आँखें गूलर की तरह लाल और बाहर की ओर निकली हुई थीं। थोड़ा भय लगा। समझते देर न लगी। वह साधु निश्चय ही कापालिक मार्गीय तंत्र साधक था, इसमें सन्देह नहीं।

मैंने थोड़ा आगे बढ़ कर साधु को प्रणाम किया। और मुझे हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया उसने। फिर कहा—"बैठो बेटा।" मैंने चकित होकर पूछा—"महाराज! आप क्या यहाँ के पुजारी हैं ? आप मेरा नाम कैसे जानते हैं ?"

साधु हो-हो कर हँसा और सामने रखे नर-कपाल को उठा कर मुँह से लगा लिया उसने। निश्चय ही उसमें मदिरा भरी थी, जिसे गट-गट कर पी गया एक ही साँस में वह।

मदिरापान करने के बाद उल्टे हाथ से मुँह पोंछते हुए गम्भीर किन्तु विचित्र स्वर में बोला वह—"अरुण कुमार, कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ मैं यहाँ इस मन्दिर में। आज के लिए ही तुम्हें आना था। भला तुम्हें मैं नहीं जानूँगा ...!" मुझे लगा साधु पर दारू का नशा अधिक चढ़ गया है। ऐसे पाखंडी लोग ऐसी बातें करते हैं जिससे साधारण लोग तुरन्त हो जाते हैं प्रभावित।

मैंने भर्राये स्वर में कहा—"महाराज, मैं तो दुर्गाजी का दर्शन करने आया था, आप ..... !"

"हाँ-हाँ बेटे, मुझे सब कुछ ज्ञात है। कई दिनों से तुम्हारी राह देख रहा हूँ मैं।"

वह भयंकर लगने वाला साधु अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और माँ काली को प्रणाम कर मन्दिर के बाहर निकल आया और बोला—"मेरे साथ आओ बेटे। घबराओ मत। माँ तुम्हारा कल्याण करेगी।"

मैं सचमुच घबरा गया था। पूछा—"महाराज, मुझे तो इस जंगल से निकलने का रास्ता मालूम करना है। भटक गया हूँ मैं प्रभु।"

"भटके कहाँ हो। जिस स्थान पर तुम्हें आना था, वहाँ तो आ चुके हो तुम।" साधु उसी स्वर में हँसा हो-हो कर। "दुर्गा मन्दिर जाना तो एक निमित्त मात्र है। तुमको तो यहीं आना था। आज अमावस्या है और है दीपावली की महानिशा बेला।"

सोचा, किस संकट में आ फँसा मैं। घर पर लोग इन्तजार कर रहे होंगे। पत्नी घबरा रही होगी कि कहाँ चला गया मैं ? वह भला क्या जानती होगी कि किसी पागल तांत्रिक के चक्कर में फँस गया हूँ मैं। बड़ी शोचनीय स्थिति थी मेरी उस समय।

जमीन में अन्दर तक धँसे लकड़ी के कुन्दे पर दीपक जल रहा था । कौन जला गया था ? यह जान न सका। आया था तो दीपक नहीं था कुन्दे पर। दीपक का प्रकाश अनुमान से अधिक था, जिसके प्रकाश में साधु को अच्छी तरह से देखा मैंने। छह फुट लम्बा, पुष्ट, शक्तिशाली शरीर, गहरा साँवला रंग, बाल कन्धों तक बिखरे हुए, पहले से अधिक भयभीत हो उठा मैं।

गम्भीर स्वर में साधु बोला—"मेरे साथ आओ।"

मैं विवशता का अनुभव करने लगा था। लेकिन उसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि उसकी आज्ञा को टाल न सका मैं। मन्दिर का इलाका पार कर साधु एक बड़े से बरगद के पेड़ के पास आया। पेड़ के नीचे पत्थर का एक चबूतरा था। उसी चबूतरे पर बैठते हुए उसने गम्भीर स्वर में उसी चबूतरे पर बैठने का आदेश दिया मुझे। हिचकिचाते हुए बैठ गया मैं, और फिर अनुनय-भरे स्वर में बोला, "महाराज, मुझे जरा जल्दी है। घर में मेरी पत्नी है। त्यौहार का दिन है। मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी वह।"

उसने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं। गम्भीर स्वर में बोला—"तुम काली के उपासक हो न! तुमको दीवान आनन्द नारायण ने भेजा है। उनसे कब मिले थे तुम ?"

यह सुन कर एकबारगी मेरा सिर चकरा गया। हकलाते हुए बोला—"महाराज, मैं काली का उपासक अवश्य हूँ, लेकिन किसी दीवान आनन्द नारायण को मैं नहीं जानता।"

साधु क्षुब्ध हो गया। कर्कश स्वर में बोला—"काशीराज के दीवान आनन्द नारायण को तुम नहीं जानते।" "महाराज, आप नाराज मत होइये। यह बतलाइये कि आप किन काशीराज की बात कर रहे हैं। बनारस में तो किसी राजा का शासन नहीं है।" अपना हाथ चबूतरे पर पटकते हुए साधु बोला—"अरे मूर्ख, मैं महाराज चेतसिंह की बात कर रहा हूँ।"

चेतसिंह ..... राजा चेतसिंह! हाँ-हाँ आपने ठीक कहा। काशी का राजवंश, जब वारेन हेस्टिंग्स ने चेतसिंह पर पाँच लाख का जुर्माना किया था और महल की तलाशी ली थी। इतना ही नहीं, रानियों का अपमान भी किया था उसने। परिणाम यह हुआ कि काशी की जनता एकबारगी भड़क उठी और रईस गुण्डों ने सम्भाल ली थी अपनी लाठियाँ वारेन हेस्टिंग्स को जान बचा कर काशी से भागना पड़ा। इतिहास का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पृष्ठ समझा जाता है। मन ही मन सोचने लगा यह भयानक तांत्रिक राजा चेतसिंह के समय की बातें क्यों कर रहा है। लगता है जैसे उसी जमाने में हो और जी रहा हो उसी काल में वह।

मैंने कहा—"महाराज, राजा चेतसिंह से भली-भाँति परिचित हूँ मैं। लेकिन यह तो काफी पुरानी बात है और है एक ऐतिहासिक घटना काशी की।" "अरे दुष्ट, यह तू क्या बक रहा है", तांत्रिक ने झल्ला कर कहा—महाराज चेतसिंह को तो ग्वालियर गये अभी कुछ ही साल हुए हैं। अभी उनके वंश का एक युवक गद्दी पर विराजमान है। अंग्रेजों की उनके आगे कुछ न चली और तू कहता है इतिहास की बात...।

वह विकट तांत्रिक कुछ पागल-सा लगा मुझे। जरा कड़े स्वर में मैंने कहा—"महाराज, क्षमा करें अब तो अंग्रेज भी अपने देश चले गये। अब अपने देश में अपना राज है, यानी प्रजातंत्र। राजा नहीं है कोई। राष्ट्रपति ही सब कुछ हैं। क्या आप दीर्घकाल तक समाधि लगाये रहे। मुझे यही एक कारण लग रहा था।"

"अच्छा यह बतलाओ यह कौन सा सन् है।"

"यह तो सन् १९४९ ई० है।"

"असत्य है। गलत बतला रहे हो। यह सन् १७९६ ई० है।" तांत्रिक जोर से हँसा और फिर बोला—"तुम भी ठीक कहते हो। अब बात स्पष्ट हो गयी। तुम जिस काल में हो वह १९४९ ई० का काल है। समझे वत्स। तुम माँ महामाया की प्रेरणा से यहाँ इस काल में उपस्थित हो। निश्चय ही साधना सफल होगी, इसमें सन्देह नहीं।"

मेरा चकराना आवश्यक था। धीरे से पूछा—"कैसी साधना? क्या कह रहे हैं महाराज आप?" "ठीक कह रहा हूँ। यह है राजा चेतसिंह के समय का शासन-काल १७९७ ई०। सर जान शोर अभी गवर्नर हैं। राजा चेतसिंह के समय जो दीवान था, वह आनन्द नारायण ही अभी भी दीवानी सम्भाल रहा है। वह मेरा परम शिष्य है।"

"तुम आश्चर्यचकित क्यों हो बेटे। ध्यान से सुनो और समझो। सन् १७७० ई० में त्रिकाल सिद्धि के लिए कठोर तांत्रिक साधना माँ काली के सम्मुख प्रारम्भ की मैंने।"

"कृपया मुझे यह बतलाइये महाराज, यह त्रिकाल सिद्धि क्या होती है ?"

"बड़े ही जड़ युवक हो। तंत्र की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण सिद्धि है यह। त्रिकाल सिद्धि होने पर साधक इच्छानुसार सशरीर भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों में से किसी भी काल में प्रवेश कर सकता है। वह हजारों वर्ष पीछे अतीत में जा सकता है और इसी प्रकार भविष्य में भी। त्रेता, द्वापर आदि किसी भी युग में पदार्पण कर सकता है वह।"

"मुझे तो यह सब असम्भव-सा प्रतीत होता है महाराज़।"

मेरी बात सुन कर वह भयंकर तांत्रिक खूब जोर से हँसा। फिर बोला—"जिसे तुम लोग असम्भव समझते हो और जिसे वैज्ञानिक समझते हैं कल्पना, उसे हमारे देश के सिद्ध साधकों ने कभी का योग और तंत्र-बल से सिद्ध कर रखा है। रही मेरी बात! मैंने भी घोर योग तांत्रिक साधना की और अपनी साधना को सफल बनाने के लिए प्रारम्भ में मैंने नर बलि भी दी। "

'नर-बलि' यह सुन कर मेरा घबराना स्वाभाविक था।

"हाँ! योग तांत्रिक साधना भूमि में एक ऐसी अवस्था आती है जब महामाया पराशक्ति के सम्मुख नर-बलि देना आवश्यक हो जाता है, उससे जो पुण्यलाभ होता है वह साधक के लिए आगे के साधना-मार्ग में सहायक सिद्ध होता है।

"यह पुण्य-लाभ क्या है ?"

"मनुष्य के लिए मोक्ष एक परम पुरुषार्थ है और है चरम उपलब्धि, जो जन्म-जन्मान्तर की कठोर साधना के बाद ही सम्भव है। मनुष्य प्रकृति के अधीन है। वह स्वयं, उसका शरीर और उसका सम्पूर्ण जीवन। इसलिए तंत्र की भाषा में प्रकृति के अधीन मनुष्य को पशु कहते हैं।"

थोड़ा रुक तांत्रिक आगे बोला—"तुम मूर्ख हो फिर भी तुम्हें समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। तंत्र का यह गूढ़ विषय है। मनुष्य का शरीर दो भागों में विभक्त है। पहला भाग ज्ञानखण्ड है और दूसरा भाग है कर्मखण्ड। गर्दन का ऊपरी भाग ज्ञानखण्ड है इसलिए कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ उसी खण्ड में हैं। गर्दन के नीचे का भाग कर्मखण्ड है। हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियाँ कर्मखण्ड के अन्तर्गत हैं। गूढ़ और गोपनीय तांत्रिक क्रियाओं द्वारा नर-पशु की बलि देने पर ज्ञानखण्ड और कर्मखण्ड दोनों अलग हो जाते हैं। बिना ज्ञान के कर्म व्यर्थ है। किन्तु बिना कर्म के 'ज्ञान' अपने आपमें अपना अस्तित्व बनाये रखता है। उसका अस्तित्व बड़ा ही मूल्यवान और महत्वपूर्ण है। वह मुक्ति अथवा मोक्ष का साधन भी है।

"नर-बलि होने पर नर-पशु उसी ज्ञान की सहायता से बिना जन्म-जन्मान्तर की साधना के दुर्लभ मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। एक मनुष्य को नर-बलि द्वारा जीव भाव से मुक्त करा कर मोक्ष प्राप्ति कराना बहुत बड़ा पुण्य है और वही पुण्य मैं करने जा रहा हूँ इस महानिशा बेला में, ताकि मेरा साधना मार्ग प्रशस्त हो।"

नर-बलि और उससे सम्बन्धित रहस्यमयी तांत्रिक बातें सुन कर रोमांच हो आया मुझे। भय से काँपने लगा मैं।

साधु आगे कहने लगा—"सर्वप्रथम मैंने बीस साल कठोर तांत्रिक साधना की। इक्कीसवें साल मैंने नरबलि देकर माँ को प्रसन्न किया और मुझे सन् १७९० में भूतकाल की सिद्धि प्राप्त हुई, जिसके फलस्वरूप मैं सैकड़ों वर्ष पूर्व अतीत में प्रवेश कर सका था। उसके बाद भविष्य काल के लिए मैंने पुनः कठोर तांत्रिक साधना प्रारम्भ की और स्वप्न में मुझे महामाया ने बतलाया कि सन् १७९७ में सफल होगी मेरी साधना। साधना में सफलता के बाद बलि के लिए नर-पशु मेरे पास स्वयं चल कर आयेगा और वह नर-पशु दो सौ वर्ष पूर्व के भविष्य के समय का होगा। उसकी बलि देकर मुझे भविष्यकाल की सिद्धि प्राप्त हो जायेगी और जिसके फलस्वरूप मैं सैकड़ों-हजारों वर्ष आगे भविष्य में प्रवेश कर सकूँगा।"

"बलि देकर ....।" भयग्रस्त होकर बोला मैं। "चुप मूर्ख।" तांत्रिक ने डाँटा, और अपनी लम्बी-लम्बी जटाओं को झटकारते हुए बोला—"मैं अब तक नरबलि के लिए किसी योग्य व्यक्ति की प्रतीक्षा करता रहा और मेरी प्रतीक्षा सफल हुई।"

"मैं समझा नहीं महाराज।"

तांत्रिक हँसा, "ठीक दो सौ वर्ष भविष्य से निकल कर आ गये तुम मेरे पास। इसे मैं माँ की कृपा ही समझूँगा।"

"महाराज! निश्चय ही नशे के कारण बेकाबू हो गये हैं। आप क्या बोलते जा रहे हैं, स्वयं आप नहीं जानते।" अपने स्थान से उठते हुए आगे मैं बोला—"आप तो सन् १९४९ में हैं। आपकी दो सौ वर्ष वाली बात पूरी तरह बिल्कुल गलत है।"

"गलत कहता है।" तांत्रिक एकबारगी भड़क उठा। बोला—"अरे जड़, तू नहीं समझता, जब मैं तेरी बलि दूँगा तब ....!"

"मेरी बलि?" उछल कर खड़ा हो गया मैं और तेजी से भागा अँधेरे में एक ओर। कठोर स्वर में तांत्रिक ने पुकारा—"कहाँ जाता है मूर्ख, ठहर वहीं।"

मेरे पैर जैसे जड़ हो गये। पीछे घूम कर देखने का साहस मुझे नहीं हो रहा था। बहुत चेष्टा करने के बाद भी वहाँ से भाग न सका मैं। लगा जैसे दोनों पैर जमीन से चिपक गये हों।

धीरे-धीरे चल कर वह तांत्रिक मेरे पास आया। मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कटु स्वर में बोला—"बता अरुण कुमार तू व्यर्थ क्यों घबरा रहा है? तुम्हारा यहाँ आना

और मेरे पुण्य-लाभ के लिए माँ के सामने बलि चढ़ना तो नियति ने पहले से ही निश्चित कर रखा था। विधाता का इसे अमिट लेख समझो तुम। बलि के रूप में अपने को माँ के सामने अर्पित कर तुम दिव्यलोक के अधिकारी बन जाओगे, यह तेरा सौभाग्य है।'' यह सुन कर मेरी मानसिक स्थिति क्या हुई होगी, इसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता। बस समझ लीजिये मुझे लगा किसी भी क्षण बेहोश जाऊँगा मैं। बलि चढ़ूँगा, मेरा सिर धड़ से अलग हो जाएगा, यह कापालिक साधु मेरी बलि देगा। .... मेरे नेत्रों के सामने मन्दिर की दीवार पर टँगा विशाल खड्ग घूम गया एकबारगी।

साधु ने लपक कर मेरी कलाई पकड़ी और मुझे बलि के बकरे की तरह निर्दयतापूर्वक खींचता हुआ उसी पेड़ के नीचे ले आया। उसकी पकड़ इतनी मजबूत थी कि मुझे अपने कलाई की हड्डी कड़कती-सी लगी।

पेड़ के पीछे घनी झाड़ियाँ थीं और उन्हीं झाड़ियों के बीच एक झोपड़ी थी । अभी तक मेरा ध्यान उधर नहीं गया था। साधु ने उसी झोपड़ी की ओर मुँह करके जोर से पुकारा—''भैरवी, ओ भैरवी आओ इधर।'' तांत्रिक की आवाज सुन कर झोपड़ी के भीतर से एक युवती निकल कर आती हुई दिखायी दी मुझे। उसके हाथ में मोटी रस्सी का बड़ा-सा बंडल था। साधु और वह युवती दोनों ने मिल कर पहले मेरे दोनों हाथों को पीछे करके बाँधा और फिर पेड़ से सटा कर उसके मोटे तने से कस कर बाँध दिया। अब पेड़ से बँधा विवश खड़ा रहा मैं। कर ही क्या सकता था।

कापालिक साधु और युवती दोनों ने पत्थर के चबूतरे पर बैठ कर नर-कपाल में शराब ढाल कर पी एक साथ और आपस में कुछ बातें कीं जिसे समझ न सका मैं। कुछ क्षण बाद वह तांत्रिक साधु झूमता हुआ मेरे करीब आया और लड़खड़ाते स्वर में कहने लगा—''वत्स, तुम्हें अभी बाँध देना उचित है और आवश्यक भी। अन्यथा तुम भागने की मूर्खतापूर्ण चेष्टा कर सकते हो। तुम शांत रहो, यह आवश्यक है तुम्हारे कल्याण के लिए। कराल वदना माँ काली के सम्मुख महानिशा की बेला में दी जाएगी तुम्हारी बलि।'' फिर पलट कर सामने खड़ी उस युवती से कड़कते स्वर में उसने कहा—''इसे कारणवारि (मदिरा) दे दो, ताकि यह अपने आपमें लीन रहे।'' मैं विवश था। लाचार था। बस, उन दोनों को देख रहा था टुकुर-टुकुर। युवती बहुत सुन्दर थी। आयु यही रही होगी सोलह-सत्रह के आसपास। गोरा रंग, घने काले बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। बड़ी-बड़ी चीता जैसी गहरी नीली आँखें। रक्ताभ होंठ, ऊँचा चौड़ा माथा, जिस पर सिन्दूर की लाल बिन्दिया झिलमिला रही थी ध्रुव तारे की तरह। हाथ में लाल चूड़ियाँ और शंख का वलय। सुडौल मांसल देह, जिस पर लिपटी हुई थी लाल रंग की रेशमी साड़ी। एक पीले रंग का दुपट्टा कमर और वक्ष को समेटे हुए था, जिससे वक्ष और उभर कर सामने आ गया था छिपने के बजाय। सब कुछ मिला कर वह युवती किसी देवकन्या-सी लगी मुझे।

काश! यदि मैं बँधा हुआ न होता, मृत्यु का भय न होता और आतंकित भी न होता तो उस सुन्दरी के सौन्दर्य और रूप का कुछ और ही प्रभाव पड़ता मुझ पर, किन्तु अभी तो वह मुझे मांस-भक्षणी और रक्तपायी डाकिनी जैसी लग रही थी दीपक के हल्के पीले प्रकाश में। वह मुझे वैसे ही निर्विकार दृष्टि से देख रही थी मानो मैं मनुष्य नहीं सचमुच बलि-पशु ही हूँ। तांत्रिक नशे में कोई मंत्र बड़बड़ाता हुआ मन्दिर के भीतर चला गया और उसके जाने के बाद वह युवती चबूतरे पर बैठ गयी इत्मीनान से। लगता था जैसे मेरा पहरा दे रही हो वह।

इधर-उधर देख कर मैंने अनुनय-भरे स्वर में युवती से कहा—"सुनिये।" उसने मेरी ओर देखा। मैंने गिड़गिड़ाते हुए अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"मुझे खोल दीजिये। मुझे मार कर मेरी बलि देकर क्या मिलेगा आप लोगों को?"

बड़े ही कोमल और मधुर स्वर में वह बोली—"तुम भयभीत क्यों होते हो युवक? मृत्यु तो क्षणिक घटना है। उसे घटते ही तुम भवसागर से सदैव के लिए मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। तुम्हे तो प्रसन्न होना चाहिए। माँ के सामने बलि होगी। माँ उसे स्वीकार करेगी और तुम्हारी आत्मा को आशीर्वाद देगी।"

"मुझे मोक्ष नहीं चाहिए। मुझे माँ का आशीर्वाद भी नहीं चाहिए"—लगभग रोते हुए मैंने कहा—"मुझे यहाँ से बस मुक्ति चाहिए। मुझ पर दया करो। मेरी रस्सी खोल दो।"

"मैं नहीं खोल सकती। मुझे भी तुम अपनी तरह समझो। क्या करूँ मैं" और फिर उसने मन्दिर की ओर अँगुली उठा कर कहा—"वह बहुत बड़ा क्रोधी है। सब कुछ जान जाता है। यदि मैं तुम्हारी सहायता करूँगी तो तुमको तो छोड़ेगा नहीं, मुझे भी मार डालेगा वह।" "तुम उसकी कौन हो? कैसे फँस गयी तुम इस भयंकर कापालिक के चक्कर में? कितनी सुन्दर हो? तुमको तो किसी राजकुमार के साथ होना चाहिए और बनना चाहिए उसकी अंकशयनी।"

मेरी अपनत्व भरी सरस वाणी को सुन कर पहले तो थोड़ी झिझकी, फिर बोली—"यह साधु अत्यंत कठोर और अत्यंत निर्दयी है। अपनी तांत्रिक साधना की सिद्धि के लिए मेरा उपयोग करता है। मेरी सहायता से यह अब तक कई तांत्रिक सिद्धियों का अधिकारी बन चुका है।" युवती ने निर्विकार भाव से कहा—"जैसे किसी दूसरे की बात कह रही हो, तंत्र की साधना भूमि में भैरवी का स्थान बहुत ऊँचा है। भैरवी पूजा बिना तंत्र की कोई भी साधना सफल नहीं होती। भैरवी के अभाव में पग-पग पर कठिनाई का सामना करना पड़ता है साधक को। कुमारी कन्या ही भैरवी का स्थान ग्रहण कर सकती है। तुम कुमारी हो? थोड़ा अविश्वास का भाव था मेरे प्रश्न में। शायद युवती समझ गयी। बोली—"मैं कुमारी तो हूँ ही, अक्षता भी हूँ। किसी पुरुष ने अभी तक मेरे शरीर का स्पर्श तक नहीं किया है। मैं तो किसी पुरुष की कल्पना तक नहीं कर सकती महाशय।

"जो कन्या कुमारी और अक्षता न हो, उसे भैरवी के स्थान पर स्थापित करना, साधक को ही नाना प्रकार की विपत्तियों में डाल देता है। वह बहुत सतर्क रहता है। किसी भी पुरुष की छाया तक नहीं पड़ने देता मुझ पर।" इतना कह कर युवती स्थिर भाव से मेरी ओर देखने लगी अपलक। उस समय उसकी भौराली आँखों में कौन-सा भाव था, समझ न सका मैं। "तांत्रिक को तो सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। उसके बाद तुम्हारा क्या होगा?" थोड़ा सहज भाव से पूछा मैंने?

विषण्ण स्वर में बोली युवती—"होगा क्या?" आकाश में शून्य की ओर देखती हुई थोड़ा रुकी। इतना कह कर और फिर आगे कहने लगी—"मेरी भी बलि दे देगा या फिर अपनी भोग्या बना कर रखेगा अपने साथ। कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरी नियति में यही लिखा होगा शायद। अच्छा अब तुम मौन धारण कर लो। वह तुमसे बातें करता सुनेगा तो कठोर दण्ड देगा मुझे।"

और तभी एक मोटा-ताजा लम्बे कद का व्यक्ति प्रकट हुआ वहाँ। शरीर का रंग काला, सिर कोहड़े जैसा, छोटी-छोटी गोल आँखें, नीचे का जबड़ा लटका हुआ, जिसके भीतर से झाँकता हुआ पीला दाँत। गर्दन भैंसे जैसी, बाहर निकला हुआ पेट और कमर में लिपटा हुआ लाल रंग के कपड़े का टुकड़ा। देखने में राक्षस जैसा लगता था वह व्यक्ति, जिसे देख कर युवती सिहर उठी एकबारगी। उसी समय मन्दिर से बाहर निकल कर तांत्रिक आता हुआ दिखलायी दिया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं, जैसे गहरे नशे में हो। उसके हाथ में एक नर-कपाल था, जिसमें कोई द्रव भरा हुआ था। उसने वह कपाल उस मोटे, काले और बदसूरत व्यक्ति के हाथ में देते हुए कठोर स्वर में कहा—"भद्रेश्वर, आ गये तुम। लो, इस प्रसाद को पिला दो अपने हाथ से बलि-पशु को। वह निर्भय और निर्विकार रहे, यह आवश्यक है।"

भद्रेश्वर कपाल लेकर मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया। उसने घूर कर एक बार मेरी ओर देखा और फिर आदेश-भरे स्वर में कहा—"मुँह खोलो।"

भय से काँपने लगा मैं। मुँह कस कर बंद कर लिया।

भद्रेश्वर भारी स्वर में बोला—"गुरु की आज्ञा है। पी लो प्रसाद है। पी लेने पर कुछ भय नहीं लगेगा। मन को शांति मिलेगी और आत्मा की व्याकुलता भी दूर हो जायेगी।" वह कोई अत्यंत गहरा मादक पदार्थ था, जिसे पीकर अवश हो जाता मैं, इसमें सन्देह नहीं। दाँत पर दाँत रख कर और कस कर मुँह बन्द कर लिया मैंने। लेकिन क्या सफल रहा मैं अपने प्रयास में, नहीं। न जाने कैसे मेरा बन्द मुँह अपने आप खुल गया और वह रहस्य पदार्थ चला गया मेरे मुँह के भीतर। गले से लेकर पैर तक जलने लगा जैसे। उसका स्वाद विचित्र था। लेकिन उसके प्रभाव से दूसरे क्षण सनसनाने लगा पूरा शरीर मेरा। शरीर में जैसे दम ही न रहा।

युवती अपने स्थान पर बैठी केवल मेरी ओर स्थिर भाव से देख रही थी बस। भद्रेश्वर कपाल पात्र लेकर वापस लौट गया मन्दिर की ओर। मैं अपने आपको चैतन्य रखने का बराबर प्रयास कर रहा था। एक बार फिर जोर लगाया, लेकिन बन्धन को खुलने को कौन कहे, जरा-सा ढीला भी नहीं हुआ। न जाने किस कल्पना में आकण्ठ डूबी हुई निर्विकार भाव से बैठी रही पूर्ववत् पत्थर पर वह युवती। अब जीवन की आशा लेशमात्र भी नहीं रह गयी थी हृदय में । खून में डूबा हुआ अपना कटा सिर और छटपटाता हुआ धड़ देख रहा था अपने मानस चक्षु के सामने।

जंगल में गहरी खामोशी थी। चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। न पक्षियों की चहक थी न कोई जानवर की आवाज ही थी। मुझे जोर की प्यास लगी थी। मैं घंटों पेड़ से बँधे-बँधे थक कर चूर हो गया था। मुझमें अब खड़े होने की शक्ति नहीं रह गयी थी। उसी समय मन्दिर से युवती बाहर निकली। मैंने उसे जोर से पुकारा और जब वह मेरे करीब आयी तो बोला—"मुझे प्यास लगी है। थोड़ा पानी पिला दो न मुझे।"

युवती मेरी ओर देखती हुई झोपड़ी के भीतर चली गयी और पानी लाकर मुझे पिलाया। मैंने विनम्र स्वर में कहा—"अब यह बन्धन खोल दो न। सही नहीं जा रही है पीड़ा अब। अति कष्ट हो रहा है शरीर को ......।"

तुम्हारी सारी पीड़ा और तुम्हारे सारे कष्ट रात्रि में हमेशा के लिए दूर हो जायेंगे। प्रिय, चिन्ता मत करो। युवती के मुँह से अपने लिए प्रिय शब्द सुन कर थोड़ा ढाँढ़स बँधा। पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?" युवती ने सिर झुका कर धीरे से अपना नाम बतलाया—"रत्नावली।"

मैंने रत्नावली को प्रसन्न करते हुए कहा—"बड़ा ही सुन्दर नाम है तुम्हारा। निश्चय ही बहुमूल्य रत्न हो तुम, इसमें सन्देह नहीं। मेरे बन्धन खोल दो। मैं भाग कर अपनी जान बचा लूँगा। मुझे मार कर भला क्या लाभ होगा ? तुम्हारा गुरु पागल है, शराबी है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। वह सपने देख रहा है त्रिकालज्ञ होने का। तुम क्यों फँस गयी हो उसके चक्कर में ? आओ भाग चलो मेरे साथ। तांत्रिक खोज नहीं पायेगा हम दोनों को।"

"वह खोज लेगा। उसके पास तांत्रिक शक्ति है। मैं जानती हूँ। तुम उसे नहीं जानते"—रत्नावली का स्वर निराशाजनक था। थोड़ा ठहर कर बोली रत्नावली—"तुम तो दो सौ वर्ष पूर्व भविष्य के प्राणी हो, मेरा काल यही है। मेरा-तुम्हारा फिर क्या जोड़ ? इस बार उसके स्वर में अत्यधिक निराशा-भरी उदासी थी। सुनो रत्नावली, मैंने धैर्य से समझाया—"यह दो सौ वर्ष पूर्व की बात मुझे मूर्खतापूर्ण लगती है। माँ काली का उपासक मैं भी हूँ। मेरे परिवार में परम्परागत रूप से तांत्रिक साधना चली आ रही है। त्रिकाल यज्ञ और त्रिकाल सिद्धि भी अपने स्थान पर ठीक है। लेकिन जिस

तरीके से यह अघोरी तांत्रिक बलि देकर त्रिकाल सिद्धि प्राप्त करना चाहता है वह सरासर मूर्खतापूर्ण कार्य है। ऐसा कोई विधान तंत्र में नहीं है रत्नावली।''

''नहीं! यह सत्य है।'' युवती समझाने के स्वर में बोली—''यह राजा चेतसिंह के ग्वालियर भाग जाने के बाद का समय है और तुम कहते हो कि अंग्रेज देश छोड़ कर चले गये। यहाँ अभी वे लोग हैं। यह तांत्रिक भूतकाल सिद्ध कर चुका है। मैं जानती हूँ। अब तुम्हारी बलि देकर भविष्यकाल सिद्ध करेगा। ''

''तुम इतनी सुन्दर युवती हो। राजकुमारी जैसी लगती हो। तुमको तो किसी राजकुमार की बाँहों में रहना चाहिए। क्यों तुम अपना जीवन बर्बाद कर रही हो इस सनकी तांत्रिक की बातों में आकर।''

मेरी बातों को सुन कर रत्नावली की आँखों में आँसू छलछला आये। कण्ठ अवरुद्ध-सा हो गया। आँचल से गालों पर ढुलक आये आँसुओं को पोछती हुई विगलित स्वर में कहने लगी वह—''तुम ठीक कहते हो। तुम्हारा अनुमान सही है। सचमुच मैं एक राजकुमारी हूँ। अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान हूँ मैं। मेरे पिता का नाम है सूर्यदेव नारायण सिंह। वे एक छोटे से राज्य के राजा हैं। अंग्रेजों ने अपने छल-बल और कपटपूर्ण व्यवहार से उनका राज्य अपने अधिकार में कर लिया। पिताजी विवश हो गये। अंग्रेजों की हुकूमत के अधीन हो गये वह। न जाने कब और कैसे इस कापालिक अघोरेश्वरानन्द से उनका परिचय हो गया। मेरे पिता उसके चमत्कारों से इतना प्रभावित हो गये कि कापालिक जो भी कहता उसे करते वह। प्रायः कापालिक नित्य कोई न कोई तांत्रिक अनुष्ठान करता और करता नयी-नयी तांत्रिक क्रियायें। सब कुछ तामसिक होता। फिर भी पिताजी उसमें पूर्ण सहयोग देते। सुनने में आया कि अंग्रेजों से अपने को और अपने राज्य को मुक्त कराने के लिए वे सारे वीभत्स तांत्रिक अनुष्ठान और तमोगुणी तांत्रिक क्रिया करवा रहे हैं कापालिक द्वारा। उनकी दृष्टि में अब तक पूर्ण सिद्ध बन चुका था वह कापालिक।

''उस समय मेरी अवस्था चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी। एक दिन अचानक उस कापालिक की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी। इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। वह काफी देर तक अपलक देखता रहा और मेरे रूप-रंग और सौन्दर्य का रसपान आँखों ही आँखों में करता रहा न जाने कब तक। उसकी लाल-लाल आँखों में वासना की झलक स्पष्ट दिखलायी दे रही थी उस समय, जिसे समझते देर न लगी मुझे। उसी दिन से मुझे किसी न किसी प्रकार पाने के लिए व्याकुल रहने लगा।

''पिताजी अपनी धर्मभीरुता के कारण इस नराधम कापालिक के चंगुल में बुरी तरह से फँस चुके थे अब तक। एक दिन अवसर देख कर कापालिक ने पिताजी से कहा—''तुम्हारी कन्या रत्नावली किशोरवय की अक्षता है। यदि उसे भैरवी दीक्षा देकर विशेष तांत्रिक अनुष्ठान किये जायें तो निसन्देह आपका राज्य अंग्रेजों से मुक्त होगा और इसके अतिरिक्त उनके द्वारा जागीरें भी मिलेंगी।''

"पिताजी ने सिर हिला कर अपनी सहमति दे दी। मैंने इसका अपनी ओर से काफी विरोध किया, लेकिन माता-पिता नहीं माने, बल्कि समझाते ही रहे मुझे तरह-तरह का प्रलोभन देकर। उस समय मेरी उम्र ही क्या थी। अविकसित फूल थी। अनुभव भी क्या था न के बराबर। कापालिक का लम्बा-चौड़ा काला शरीर, कमर तक झूलती जटा, गले में झूलती हुई कई तरह की मालायें, कमर में लिपटी हुई काली लुंगी, चौड़े मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड और लाल गोल टीका और हाथ में लम्बे त्रिशूल के अलावा नर-कपाल। देख कर भयभीत होना स्वाभाविक था मेरे लिए। राजमहल के ऊपर मोतीमहल था। उसी मोतीमहल को अपना साधना कक्ष बना लिया था कापालिक ने। पिताजी ने उसके लिए सभी प्रकार की सुख-सुविधायें दे रखीं थी। किसी वस्तु का अभाव नहीं था। एक प्रकार से राजसी सुख और वैभव का आनन्द ले रहा था उस समय वह कापालिक। भैरवी दीक्षा का समय निश्चित हुआ। किसी अज्ञात भय से रोमांचित हो उठता था बार-बार मेरा शरीर। कैसे होगी भैरवी दीक्षा? क्या-क्या होगा उस समय? शंका-कुशंकाओं से भर उठा था मेरा मन।

अमावस्या का दिन!

रात्रि का प्रथम प्रहर!

मोतीमहल में भेज दिया गया मुझे। स्वयं पहुँचाने आये थे मेरे माता-पिता। कापालिक जैसे मेरी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मेरे भीतर आते ही दरवाजा बंद कर दिया उसने। धड़क उठा मेरा दिल एकबारगी। हे भगवान् क्या होगा? कौन-सा व्यवहार करेगा यह तांत्रिक। कमरे में तरह-तरह की पूजा का सामान रखा हुआ था। एक वेदी बनी हुई थी। सामने एक छोटी-सी मूर्ति रखी थी पत्थर की। शायद काली की मूर्ति थी वह, जिसके सामने चौमुखा दीप जल रहा था और जिसके नीचे एक नर-मुण्ड भी रखा था। कमरे का वातावरण रहस्यमय लगा मुझे। धड़कने लगा मेरा दिल जोर से। रोमांच भी हो आया। ऐसा सब कुछ पहले कभी देखा नहीं था मैंने।

"और तभी कर्कश स्वर में बोला आदेश भरे स्वर में कापालिक—"कपड़े उतारो!"

"नहीं-नहीं, कपड़े नहीं उतारूँगी"—दृढ़ता से कहा मैंने।

उतारना ही पड़ेगा। पूर्ण नग्न होना आवश्यक है। यह कह कर स्वयं मेरे कपड़े उतारने लगा वह। विचलित हो उठी मैं। विवश थी, कर ही क्या सकती थी? दूसरे क्षण पूरी तरह नग्न हो उठी मेरी कंचन काया। फिर उसने मेरा बँधा हुआ बाल खोला और अपने हाथ से स्नान कराया। जब मैं स्नान कर चुकी तो अपने खुरदुरे और बेडौल हाथों से कोई सुगन्धित द्रव्य लगाया मेरे अविकसित अंगों का स्पर्श करते हुए। मैंने पूरी तरह से इसका विरोध किया, लेकिन असफल रही। एक बार मेरी सम्पूर्ण नग्न काया को नीचे से ऊपर तक लाल-लाल आँखों से देखा उसने।

उसकी आँखों की भाषा पढ़ न सकी उस समय मैं। उसने आसन पर नग्नावस्था में ही बैठने आदेश दिया। मैं बैठ गयी चुपचाप। मेरा सारा शरीर सनसना रहा था उस समय। उसी अवस्था में उसने चाँदी की कटोरी में कोई द्रव पीने के लिए दिया। द्रव में से दुर्गन्ध निकल रही थी। मैंने मुँह दूसरी ओर फेर लिया और बोली—"नहीं पीऊँगी इसे।"

पीना पड़ेगा-आदेश भरे कठोर स्वर में कापालिक बोला। भय से काँप उठी। विवश हो कर उस गरल को पीना ही पड़ा मुझे किसी प्रकार। गला के साथ-साथ छाती भी जलने लगी। सारा शरीर भी सनसनाने लगा एकबारगी। निश्चय ही वह शराब थी, तीखी शराब। हल्का-हल्का-सा नशा भी छाने लगा मुझ पर। उसी अवस्था में कापालिक ने मेरे गुप्तांग का स्पर्श किया, रोमांचित हो उठा मेरा पूरा शरीर! एकाएक मेरी मानसिक स्थिति न जाने कैसी हो गयी, बतला नहीं सकती! उन क्षणों में न मैं बोल सकी कुछ और न तो किसी भी प्रकार का विरोध ही कर सकी थी। उसी अनिर्वचनीय और साथ ही अवर्णनीय अवस्था में शायद दो-तीन बार मदिरापान कराया कापालिक ने, इसमें सन्देह नहीं। उस स्थिति में कौन-सा तांत्रिक अनुष्ठान और कौन-सा पूजन किया कापालिक ने मेरे माध्यम से? यह सब समझ न सकी मैं और मेरी चेतना लौटी, आँखें खुलीं तो अपने आपको इसी जंगल में और इसी झोपड़ी में पाया। निश्चय ही नशे की हालत में मेरा अपहरण कर लिया था कापालिक ने। यह समझते देर न लगी मुझे। तब से उसकी भैरवी बन कर यहीं हूँ मैं। मेरे माता-पिता का क्या हुआ? उनके राज्य का क्या हुआ? आज तक न जान सकी मैं! हाँ! इतना अवश्य जानती हूँ कि त्रिकाल सिद्धि कर लेने के बाद मेरी भी बलि दे देगा यह अघोरी, इसमें सन्देह नहीं।"

मैं सब कुछ सुनने के बाद बोला—"तुम सब कुछ जान-बूझ कर मौत के मुँह में क्यों बैठी हो। तुम्हारी कथा सुन कर सचमुच विचलित हो उठा हूँ मैं। मेरा कहना मानो, भाग चलो यहाँ से! तुम जैसा कहोगी वैसा ही रखूँगा तुमको मैं!"

रत्नावली कुछ नहीं बोली। एक बार सजल नेत्रों से मेरी ओर देखा और जलपात्र को लेकर चली गयी।

मैं फिर बन्धन से मुक्त होने की चेष्टा करने लगा, लेकिन व्यर्थ! सफलता नहीं मिली। अब मैंने समझ लिया कि मरना ही पड़ेगा मुझे। काफी देर से बँधे रहने के कारण निराशाजन्य तन्द्रा ने घेर लिया मुझे! कब आँख लग गयी पता ही नहीं चला मुझे। एकाएक झकझोर कर जगा दिया गया। देखा सामने खड़ा था भद्रेश्वर! रात्रि का अंधकार और गहरा हो गया था। भैरवी का कहीं पता नहीं था। भद्रेश्वर मेरा बन्धन खोलने लगा। बन्धन खुलते ही वहाँ से भागने का प्रयास किया मैंने, लेकिन दौड़ कर पकड़ लिया कस कर भद्रेश्वर ने मुझे और खींच कर मुझे मन्दिर

की ओर ले जाने लगा। खूब चीखा-चिल्लाया और पटका हाथ-पैर। लेकिन वहाँ कौन था मेरा सुनने वाला। मैं मन्दिर के भीतर लाया गया। कई दीपक जलाये गये थे, जिनका प्रकाश मन्दिर में चारों ओर फैल रहा था। महाकाली के सामने पूजा के सामानों के अलावा एक बड़ा-सा काला मुर्गा भी था, जिसकी दोनों टाँगें बँधी हुई थीं। तीन कपाल पात्रों में मदिरा भरी हुई थी और तीन नर-मुण्ड भी रखे हुए थे वहाँ। जिन पर सिन्दूर लगा था और उन्हें माला पहनायी गयी थी। शायद उनकी पूजा की थी और ठीक उनके सामने आसन पर पूर्ण नग्नावस्था में भैरवी पद्मासन की मुद्रा में ध्यानस्थ बैठी हुई थी आँखें बंद किये। उसका सिर झुका हुआ था और गले में माला झूल रही थी। लगा था मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका! भैरवी के घने बाल कन्धों से होकर स्तनों को ढँकने की कोशिश में थे, किन्तु भैरवी का शरीर इतना परिपुष्ट था कि बाल उसके अंगों को ढँकने में असमर्थ थे।

कापालिक अघोरेश्वरानन्द भैरवी के बगल में बैठ कर हवन कुण्ड में अन्य सामग्रियों के साथ मांस का हवन करने लगा मंत्रोच्चारण के साथ। मांस के जलने की दुर्गन्ध से भर गया मन्दिर का वातावरण। मध्य रात्रि में बलि देंगे मेरी। अब कुछ ही समय का मेहमान समझने लगा मैं अपने आपको। गर्दन कटते ही मृत्यु के गहन अंधकार में डूब जायेगा मेरा अस्तित्व। दीवार से उतार कर भयंकर खड्ग को माँ काली के बगल में रख दिया भद्रेश्वर ने। उस समय खूब शराब पी रखी थी उसने। उसका कोहड़े जैसा गोल सिर इधर-उधर हिल रहा था नशे में। तांत्रिक ने एक नर-कपाल की मदिरा स्वयं और दूसरे की मदिरा पीने के लिए भैरवी को दी। भैरवी गट-गट कर पी गयी पूरी मदिरा। तांत्रिक ने अब उसकी पूजा प्रारम्भ की। पूजा क्या थी? तंत्र के नाम पर एक वीभत्स और कामजन्य कृत्य था और कुछ नहीं। अंत में तांत्रिक ने मुर्गे की बलि दी। मुर्गे का कटा सिर अलग हो गया और धड़ तड़पने लगा। आसपास की जमीन लाल हो उठी खून से। थर-थर काँपते हुए सोचने लगा मैं। ऐसा ही मेरे साथ भी होगा कुछ देर बाद। खून से सना मेरा कटा सिर एक ओर पड़ा होगा और दूसरी ओर पड़ा होगा खून से लथपथ मेरा धड़।

कापालिक अघोरेश्वरानन्द की आँखें लाल हो रही थीं नशे के कारण और चेहरा भी वीभत्स और भयानक हो उठा था। बिल्कुल राक्षस जैसा लग रहा था वह। उसने मुर्गे के रक्त का टीका मुझे लगाया और फिर भैरवी को। उसके बाद मेरे बाल को पकड़ कर मेरी गर्दन सीधी की और मस्तक पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका लगाया और फिर जवा पुष्प की माला डाली गले में। और अंत में मेरा मुँह खोल कर नर-कपाल की शराब उड़ेल दी। झनझना उठा पूरा शरीर! मेरी बलि की तैयारी हो रही थी, यह समझते देर न लगी मुझे। अब मेरा जीवन कुछ ही क्षणों का था! मैं निराश और हताश हो कर भगवती का ध्यान करने लगा—माँ मेरी रक्षा करो! मेरे न रहने पर मेरी पत्नी का क्या होगा? वह मेरे बिना कैसे रह सकेगी....!

कापालिक के संकेत पर भद्रेश्वर ने मेरा हाथ-पैर रस्सी से बाँधा और फिर माँ काली के सामने पेट के बल लिटा दिया मुझे। मेरा सिर माँ के चरणों पर था! एक अनर्वचनीय आन्तरिक शान्ति का अनुभव हुआ मुझे। हिलक-हिलक कर रोने लगा मैं। माँ के चरणों को धोने लगे मेरे आँसू! माँ, मेरी रक्षा करो माँ, क्या कोई माँ अपने पुत्र की बलि चाहती है ? तू तो जगन्माता है। पूरे विश्व को अपने वात्सल्य रस से प्लावित करती है माँ। बोलो, बोलो माँ। ऐसा लगा मानो जगन्माता माँ महाकाली अपनी मूक भाषा में कह रही हो—तू चिन्ता मत कर, घबरा मत, रोने से कोई लाभ नहीं। नियति जो चाहती है वही होता है ....!

उसी समय तांत्रिक ने मुर्गे के धड़ को उठा कर कोई मंत्र बुदबुदाया और डाल दिया हवन कुण्ड में। दूसरे क्षण जलते मांस की दुर्गन्ध से भर उठा मन्दिर का वातावरण और तभी भैरवी झूमने लगी। वह गर्दन झटक-झटक कर बाल बिखेर रही थी। नशे अथवा अन्य किसी कारण से उसके नेत्र लाल हो रहे थे। चेहरे पर एक अवर्णनीय भाव आ गया था। दोनों हाथ घुटनों पर थे। उसका पूरा नग्न शरीर जैसे चमक रहा था। बाल बिखर जाने से उसके उन्नत और पुष्ट उरोज बिल्कुल खुल गये थे। बिल्कुल होश नहीं था भैरवी को उस अवस्था में। झूमती हुई विचित्र भाव-भंगिमा प्रदर्शित कर रही थी वह! उसके होंठ हिल रहे थे, जैसे वह कुछ कहना चाहती हो। दोनों हाथ जोड़ कर तांत्रिक बैठ गया भैरवी के सामने। माँ का आदेश हुआ था ऐसा कहना था तांत्रिक का। कुछ क्षण बाद भैरवी की आवाज स्पष्ट हुई। तांत्रिक ध्यान से सुनने लगा। मैं भी ध्यान से सुन रहा था।

"अरे मूर्ख नराधम"! एक रस स्वर में कह रही थी—"तू त्रिकाल सिद्धि चाहता है। कठोर साधना के बाद यह सिद्धि किसी बिरले को ही प्राप्त होती है। तूने इस बलि-पात्र से पूछा है ? यह प्रसन्नता से अपने आपको माँ के सामने उत्सर्ग कर रहा है ?"

"नहीं माँ!" तांत्रिक ने हाथ जोड़ विनय-भरे स्वर में कहा—"यह विवश किया गया है माँ!" "तो ..... तो .... इसे सन्तुष्ट करो। इसका विरोध दूर करो।"

"मुझे त्रिकाल सिद्धि मिलेगी न माँ!"—तांत्रिक ने पूर्ववत् स्वर में पूछा।

उत्तर में भैरवी के कण्ठ से विकृत अट्टहास निकला।

सहम गया एकबारगी तांत्रिक।

भैरवी झूमती हुई कठोर स्वर में बोली—"मूर्ख, तू त्रिकाल ज्ञान को इतना सरल समझता है। तांत्रिक वज्रसन्धि की तीन गाँठ हैं। अभी तूने दो गाँठ ही खोली हैं। तीसरी गाँठ खोलनी है।" "वह कब और कैसे होगी माँ ?"—हाथ जोड़े कातर स्वर में तांत्रिक ने प्रश्न किया!

"इतना ही नहीं जानता तो साधक कैसा रे!" झूमती हुई भैरवी बोली—"आगामी दीपावली के अवसर पर स्वयं स्वेच्छा से चल कर एक बलि-पशु आयेगा

तेरे पास। तू उसकी बलि देना और इस भैरवी को मुक्त कर देना। नहीं तो सत्यानाश हो जायेगा तेरा!'' भैरवी मौन हो गयी और उसका झूमना भी बन्द हो गया।

तांत्रिक ने विशाल खड्ग उठाया और भैरवी से कहा—''भैरवी, यह खड्ग लो और इस बलि-पात्र का मस्तक विच्छिन्न कर दो। मैं समझ गया कि अब मेरा अंतिम समय आ गया है। मात्र केवल भगवती माँ काली की याद आयी उस क्षण और फिर मैंने आँखें मूँद लीं। भैरवी ने खड्ग का मूठ पकड़ लिया और आसन से उठ कर खड़ी हो गयी। सर्वांग नग्न थी वह उस समय। बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। आँखें लाल थीं। गले में जवा पुष्प की माला काफी नीचे तक झूल रही थी। मस्तक पर मुर्गे के खून और सिन्दूर का लाल टीका बिखरा हुआ था। बड़ी भयंकर लग रही थी भैरवी की मुख-मुद्रा उस समय। लगा जैसे स्वयं महाकाली साकार रूप धारण कर प्रकट हो गयी हों वहाँ! भाव-भंगिमा भी अद्भुत और विलक्षण थी भैरवी की।

एकाएक भैरवी का अट्टाहास गूँज उठा मन्दिर के रहस्यमय तांत्रिक वातावरण में। अट्टहास कर भैरवी ने कहा—''गुरुदेव, आप पहले जगन्माता को प्रणाम तो कर लें।''

तांत्रिक ने तुरन्त भैरवी की आज्ञा का पालन किया, कमर में दोनों हाथ बाँध कर और घुटने टेक कर भूमि से मस्तक टेक दिया तांत्रिक ने श्रद्धा-भाव से। त्रिकाल ज्ञान-प्राप्ति की कामना के वशीभूत वह वज्र तांत्रिक भला क्या जानता था कि अभी एक क्षण में कौन-सा अनिष्ट घटने वाला है। यदि जानता होता तो कभी भी इस प्रकार प्रणाम न करता वह। जो होना था वही किया भगवती जगत्तारिणी ने।

पलक झपकते ही खड्ग को दोनों हाथों से सिर के ऊपर तान कर भरपूर वार किया पूर्ण नग्ना भैरवी ने। सिर कट कर माँ महामाया के चरणों पर लुढ़क गया कापालिक अघोरेश्वरानन्द का। चारों ओर खून ही खून और उस खून से लथपथ तांत्रिक का धड़ कुछ देर छटपटाने के बाद शांत हो गया। भद्रेश्वर कुछ समझे, उसके पहले ही उसका भी सिर धड़ से अलग हो चुका था और वह कटे भैंसे की तरह जमीन पर गिर कर छटपटाने लगा था।

बन्धन-मुक्त हो चुका था मैं। स्वयं भैरवी ने ही मेरे हाथ-पैर की रस्सी खोली थी। मैं उठ कर खड़ा हो गया! आश्चर्य, कौतूहल, संशय और भय के मिले-जुले भाव से देखने लगा मैं उस पूर्ण निर्वसना भैरवी के चेहरे को! उस समय उसके चेहरे पर एक ऐसा विलक्षण दिव्य भाव था, जिसे समझा तो जा सकता है लेकिन व्यक्त नहीं किया जा सकता। भैरवी की भौराली कजरारी आँखों में करुणा, दया, अनुकम्पा के सागर एकसाथ लहरा रहे थे उस समय। लगा जैसे साक्षात् माँ महामाया खड़ी मुस्करा रही हों मेरे सामने। न जाने क्यों सिसक-सिसक कर रोने लगा मैं। मुझे रोता हुआ देख कर आगे बढ़ी भैरवी और अपने गले से लगा लिया दूसरे क्षण मुझे।

इस अवर्णनीय अवस्था में मुझे ऐसा लगा मानो माँ स्वयं अपनी मूक भाषा में कह रही हों—पगले, रोता क्यों है? मैं जो हूँ तेरे साथ। साधना मार्ग पर बराबर आगे बढ़ता चल और साथ ही संसार का कष्ट, दुख और क्लेश भी झेलता चल। सदैव तेरे पीछे रहूँगी मैं। अपने को अनाथ और एकाकी मत समझना कभी ......।

और तभी बिजली कड़की, विलाप करती हुई तूफानी हवा का एक प्रबल झोंका मन्दिर के भीतर आया और माँ काली के सामने जल रहा पंचमुखी दीपक बुझ गया एक झटके से और फिर चेतनाशून्य हो गया मैं। और जब चेतना लौटी और आँखें खुलीं तो जंगल में अपने आपको पड़ा पाया। सबेरा होने वाला था। आश्चर्यचकित होकर चारों ओर देखा, लेकिन न वहाँ काली का मन्दिर था, न तांत्रिक था, न भद्रेश्वर था और न तो थी भैरवी ही। ऐसा लगा कि कोई लम्बा सपना देख कर जगा हूँ मैं। कुछ देर तक गुमसुम बैठा रहा और फिर उठ कर चल पड़ा मैं। झनझना रहा था मेरा सिर। काफी कमजोरी और शिथिलता का अनुभव कर रहा था अपने आपमें! किसी प्रकार घर पहुँचा! परिवार के लोग चिन्तित और परेशान थे। पूरी रात खोज हुई थी मेरी। पत्नी का चेहरा देखा। आँखें सूजी हुई थीं। निश्चय ही पूरी रात रोई होगी वह! कहाँ थे आप पूरी रात! क्या दशा बना रखी है आपने अपनी? सशंकित दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली मेरी पत्नी। क्या उत्तर देता और क्या कहता मैं। अभी भी रात की पूरी घटना और पूरा दृश्य नाच रहा था मेरे मानस-पटल पर! यदि सारी बातें बतलाता भी तो कोई विश्वास न करता, पत्नी भी न करती। चक्कर के कारण धम्म से बिस्तर पर बैठ गया मैं। पत्नी चाय लेकर आयी और तभी उसकी दृष्टि मेरे गले पर पड़ी। बोली—"आपके गले में जवा की माला कैसी है, अरे! आपके माथे पर तो सिन्दूर का लम्बा टीका भी लगा है!" फिर रुक कर बोली—"अच्छा हाँ! आप दुर्गा मन्दिर गये थे न दर्शन के लिए। समझ गयी। पूरी रात वहीं मन्दिर में बिता दिया होगा, आपने ध्यान-धारणा में, सब कुछ भूल कर!" माला और टीका की बात सुन कर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। सुध ही नहीं थी मुझे माला और टीका की। यह तो वही माला थी जिसे बलि देने के पहले मस्तक पर सिन्दूर का लम्बा टीका लगा कर मेरे गले में पहनाया था कापालिक अघोरेश्वरानन्द ने। मैंने तुरन्त रूमाल से टीका मिटाया और गले से माला उतार कर जमीन पर फेंक दिया उसे।

लेकिन यह क्या? यह कैसा चमत्कार? जमीन पर माला गिरते ही तत्काल गायब हो गयी! आश्चर्य हुआ मुझे! आखिर माला गयी कहाँ? उन दिनों काशी के देवनाथपुरा मुहल्ले में एक शाक्त साधक रहते थे। नाम था तारानाथ भट्टाचार्य। तंत्र के मूर्धन्य विद्वान् तो थे ही इसके अतिरिक्त उच्चकोटि के तंत्र साधक भी थे तारानाथ भट्टाचार्य महाशय। मेरे प्रति उनका परम स्नेह तो था ही इसके अतिरिक्त मेरे

शुभचिन्तक भी थे वे। मैं भी उनको अपने बड़े भाई के समान मानता था और आदर करता था उनका। अगाध श्रद्धा तो थी ही उनके प्रति मेरे हृदय में!

❑ ❑ ❑ ❑

नित्य की भाँति उस दिन भी गया मैं भट्टाचार्यजी के निवास पर ! मुझे देखते ही अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर मुस्कराते हुए बोले—"महाशय, कल कहाँ थे बन्धु, बहुत प्रतीक्षा की। फिर अकेले ही माँ की महानिशा पूजा की और चक्रार्चन किया!"

"कल कहाँ था? यही तो बतलाने आया हूँ आज मैं आपको!" और फिर रात की सारी कथा सुना दी मैंने तारानाथ भट्टाचार्यजी को। आँखें बंद किये मौन सुनते रहे कथा। और जब अंत में मैंने माला एकाएक गायब होने की बात कही तो चौंक पड़े वह! आँखें खोल कर मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए गम्भीर स्वर में बोले—"दो सौ वर्ष पूर्व भूतकाल में चली गयी वह माला। जब तक वह आपके गले में थी तब तक वर्तमान में थी और गले से निकलते ही अतीत के अंधकार में खो गयी वह!"

"ऐ ! क्या कहा आपने? समझा नहीं ....।"

"जिन घटनाओं का वर्णन आपने अपनी कथाओं में किया है, वह पूर्ण सत्य है। उसे न भ्रम कहा जायेगा और न तो सपना। शुरू से लेकर अंत तक आपने जो कुछ देखा, जो कुछ सुना और जैसी मानसिक यंत्रणा और शारीरिक प्रताड़ना का अनुभव किया, उन सबको दो सौ वर्ष पूर्व अपने किसी जन्म में भोगा है आपने। वह सारी कथा आपके पिछले किसी जन्म की कथा है, जिसके मुख्य पात्र आप रहे हैं। कापालिक अघोरेश्वरानन्द के नाम और उनकी उत्कट साधना से भली-भाँति परिचित हूँ मैं।" यह सुन कर अवाक् रह गया मैं एकबारगी। थोड़ा रुक तारानाथ भट्टाचार्य आगे बतलाने लगे—"आपको ज्ञात होना चाहिए सन्त कीनाराम और महाराज चेतसिंह के समय काशी का दक्षिण भाग घनघोर जंगल था जो काफी लम्बा-चौड़ा था और उस जंगल में कहीं काली का प्राचीन मन्दिर भी था। सम्भवतः इसी कारण वह जंगल वाममार्गियों, कापालिकों और अघोरियों की गुप्त साधना-स्थली भी बन गयी थी, जो समय-समय पर काली को प्रसन्न करने तथा अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से नर-बलि भी दिया करते थे। कापालिक अघोरेश्वरानन्द भी उन्हीं में से एक थे। त्रिकाल सिद्धि प्राप्त करने के लिए उन्होंने, सुना है, कई नर-बलि दी थी। यह सत्य है कि कापालिक साधना मार्ग के सर्वोच्च साधक थे कापालिक अघोरेश्वरानन्द, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन अंत में उस महासाधक ने अपनी साधना भूमि में भयंकर भूल की।"

वह क्या ? उत्सुक होकर पूछा मैंने। रत्नावली की इच्छा के विरुद्ध उसे भैरवी-दीक्षा दी थी कापालिक ने और इसके अतिरिक्त रत्नावली का अपहरण भी किया था उन्होंने। उससे बड़ी बात तो यह है कि नर-पशु की इच्छा के विरुद्ध उसकी बलि देनी चाही थी उन्होंने। ये सभी कार्य तांत्रिक साधना के घोर विरुद्ध हैं। माँ महामाया के कोप का भाजन तो बनना ही पड़ता है और इसके अतिरिक्त परिणाम भी बड़ा ही भयंकर होता है इसका। सारी साधना विफल तो होती ही है। स्वयं साधक भी प्राप्त हो जाता है असद्गति को। उसे मुक्ति नहीं मिलती। एक प्रकार की विशेष प्रेत योनि में दीर्घ काल तक भटकता रहता है वह। कहने की आवश्यकता नहीं, साधना भ्रष्ट हो जाने के कारण कापालिक अघोरेश्वरानन्द की प्रेतात्मा भी दीर्घ काल से भटक रही है इसी काशी के महाश्मशान में अभी भी! यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तारानाथ भट्टाचार्य का इस प्रकार के साधनाभ्रष्ट साधकों की आत्माओं से प्राय: सम्पर्क होता रहता है। इसीलिए उत्सुकतावश मैंने पूछ ही लिया—"क्या आपका सम्पर्क कापालिक अघोरेश्वरानन्द से हुआ है कभी ?"

अपने चेहरे पर हाथ फेरते हुए भट्टाचार्य महाशय बोले—"दो-तीन बार हुआ है सम्पर्क! बड़ी ही विपन्न अवस्था है उनकी। श्मशान के मुर्दों के सड़े-गले मांस खा कर उनकी आत्मा प्रेतयोनि में कर रही है जीवनयापन! इससे अधिक क्या दुर्दशा हो सकती है एक साधनाच्युत साधक की ?"

"तब तो आप रत्नावली के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानते होंगे ?"

"क्यों नहीं", भट्टाचार्य महाशय बोले—"उसी समय गुरु की हत्या करने के बाद उसने भी उसी खड्ग से अपनी भी बलि दे दी थी माँ महामाया के सामने! गुरु की हत्या के कारण उसकी भी असद्गति होनी चाहिए लेकिन ऐसा नहीं हुआ! इसलिए कि आवेश के रूप में माँ महामाया ने स्वयं रत्नावली के शरीर में प्रविष्ट होकर कापालिक और भद्रेश्वर का नाश किया था और प्रेरित किया था रत्नावली को अपनी आत्महत्या करने के लिए! यह बहुत बड़ा रहस्य है! सभी के लिए समझ पाना कठिन है।

"तब तो आप रत्नावली के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानते होंगे ?"

तारानाथ भट्टाचार्य थोड़ा सोचते हुए बोले—"बहुत कुछ तो नहीं, हाँ, इतना अवश्य जानता हूँ कि रत्नावली ने तीन बार जन्म लिया, लेकिन उसके तीनों जन्म कहाँ हुए यह तो मैं नहीं जानता। इतना अवश्य जानता हूँ कि उसका चौथा जन्म इसी काशी में तीस वर्ष पूर्व किसी उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ है और यह भी जानता हूँ कि संन्यास ग्रहण कर लिया है उसने। संन्यासिनी के रूप में यत्र-तत्र भ्रमण करती रहती है वह! इसके अतिरिक्त और कुछ जानने-समझने की आवश्यकता नहीं समझी मैंने।"

यह सुन कर स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। रत्नावली का सुन्दर चेहरा मेरे मानस-पटल पर उभर आया एकबारगी! क्या रत्नावली मिलेगी मुझको ? यदि मिल

भी गयी तो उसे कैसे पहचानूँगा मैं? वह भी तो मुझे नहीं पहचान पायेगी! दो सौ वर्ष का दीर्घ अन्तराल! पुनर्जन्म के बाद मन और आत्मा नहीं बदलती और सब कुछ तो बदल जाता है। जाति, धर्म, रूप-रंग और शरीर ...... सब कुछ। फिर कैसे पहचान पायेंगे हम दोनों एक-दूसरे को? पूरी रात नींद नहीं आयी। बार-बार रत्नावली की मोहक छवि घूम जाती थी आँखों के सामने। भोर के समय थोड़ी झपकी लगी और उसी तन्द्रिल अवस्था में देखा—एक लम्बी-चौड़ी कद-काठी के व्यक्ति को। उसके शरीर का रंग बिल्कुल काला था। सिर पर लम्बी जटायें थीं जो उसके पीठ पर साँप की तरह लग रही थीं। कमर में लाल रंग का कपड़ा लपेटे हुए था। शरीर का ऊपरी भाग अनावृत्त था। गले में रुद्राक्ष की कई मालायें झूल रही थीं, चौड़ा चेहरा था। आँखें खून में डूबी-सी लग रहीं थीं। उसके चौड़े चेहरे पर क्रोध, घृणा, द्वेष के मिले-जुले भाव थे उस समय! हाँ! उसके हाथ में एक खोपड़ी भी थी अधजली, जिसमें से दुर्गन्ध निकल रही थी! अचानक कुछ कौंध-सा गया मेरे मस्तिष्क में! वह भयानक व्यक्ति और कोई नहीं, कापालिक अघोरेश्वरानन्द थे। पहचानने में जरा-सा भी भूल नहीं हुई थी मुझसे!

आग्नेय दृष्टि से अपलक घूरते रहे मेरी ओर कापालिक महाशय! कुछ क्षणों के बाद सिर घुमा कर अपनी बायीं ओर देखने लगे वह! अपने आप मेरी आँखें भी उधर ही घूम गयीं! देखा तो देखता ही रह गया चकित भाव से! मेरे सामने काशी का अहिल्याबाई घाट था और उस घाट की सीढ़ियों पर बैठी हुई एक संन्यासिनी थी। अपनी सूनी आँखों से उगते हुए सूरज को देख रही थी गालों पर हाथ धरे वह!

एकाएक तन्द्रा भंग हो गयी। अचकचा कर उठ बैठा मैं! उस तन्द्रिल अवस्था में मैंने जो कुछ देखा था, क्या वह वस्तुतः सत्य था या भ्रम! नहीं-नहीं, बिल्कुल सत्य था पूर्ण सत्य! मेरी दृष्टि में वह रत्नावली ही थी सन्यासिनी के रूप में, नाम था कीर्ति आनन्द। अपने अतीत से अनभिज्ञ और अपरिचित, सरल, सहज, करुणामयी लगी मुझे कीर्ति आनन्द! तीस वर्षीया उस गौरांग और लावण्यमयी युवा संन्यासिनी में मुझे छवि दिखलायी दी रत्नावली की।

निस्तब्ध वातावरण में साँझ की स्याह कालिमा पसर गयी थी! हल्के कुहरे में लिपटा हुआ चाँद थोड़ा ऊपर आ गया था अब! गंगा की निर्मल धारा में झिलमिलाने लगी थी चाँदनी। अहिल्याबाई घाट की सीढ़ियों पर कीर्ति आनन्द के बगल में बैठा था मैं!

काफी देर मौन रहने के बाद चाँद को निहारते हुए कहने लगी कीर्ति आनन्द—होश सम्भालने पर बराबर हर समय यही लगता था कि मेरा कोई और भी जीवन था. जिसके किसी मोड़ पर मेरा कुछ खो गया था! कुछ छूट गया था। कोई अनमोल वस्तु गँवा बैठी थी मैं। कोई अपना दूर हो गया था मुझसे! मेरा क्या छूट गया था? कौन-सी वस्तु गँवा बैठी थी मैं? कौन था वह जो मुझसे दूर हो गया था?

क्या बतलाऊँ मैं आपको! इन्हीं प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए सर्वस्व त्याग कर बीस वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया मैंने! लेकिन दस वर्ष हो गये अभी तक किसी प्रश्न का उत्तर नहीं मिला मुझे बन्धु! कभी-कभी व्याकुल हो उठती हूँ मैं और अशांत हो जाता है मेरा मन। और तब इसी घाट पर आकर बैठ जाती हूँ मैं थोड़ी देर के लिए। इतना कह कर आकाश की ओर देखने लगी कीर्ति आनन्द।

यह सब सुन कर एकबारगी उद्वेलित और साथ ही विचलित हो उठा मैं। अशांत हो उठी मेरी आत्मा न जाने क्यों? और फिर न रहा गया मुझसे। धीरे-धीरे दो सौ वर्ष पूर्व भूतकाल में घटित घटनाओं से सम्बन्धित सारी कथा सुना दी मैंने। सब कुछ सुनती रही मौन साधे कीर्ति आनन्द। उनका निर्विकार चेहरा देख कर लगा कि कथा का कोई भी अंश उनको प्रभावित न कर सका था। लेकिन थोड़ा रुक कर जब मैंने यह कहा कि भले ही आप कीर्ति आनन्द हों, लेकिन आपके भीतर रत्नावली की आत्मा है। दो सौ वर्ष पूर्व के जीवन का जो संस्कार है वह उसमें विद्यमान है और उसी के कारण अशांत है उसका मन। इतना और मैं आपको बतला दूँ कि रत्नावली ने जिस कापालिक की हत्या की थी उसकी आत्मा तभी से ब्रह्म पिशाच के रूप में भटक रही है इसी काशी के महाश्मशान में। यह भी आज सुन लीजिये। उसी ब्रह्म पिशाच के संकेत पर आपसे भेंट की है मैंने। यह सुन कर स्तब्ध और अवाक् हो गयी कीर्ति आनन्द, और आश्चर्यचकित होकर मेरी ओर अपलक देखने लगी वह। उनकी बड़ी-बड़ी झील जैसी नीली आँखों में उस समय क्या भाव था? यह समझ न सका मैं। थोड़ी देर बाद मैंने देखा, रक्ताभ होने लगा कीर्ति आनन्द का सौम्य, शांत चेहरा। आँखें भी गूलर की तरह लाल हो कर उबल पड़ीं बाहर की ओर। एकाएक भयानक हो उठा उस संन्यासिनी का मुख-मंडल। थोड़ा भय लगा मुझे, लेकिन सम्भाल लिया मैंने अपने आपको। अब उनके होंठ फड़फड़ाने लगे थे। शायद कुछ कहना चाहती थी वह। एक बार उन्होंने अपने सिर को झटका दिया और फिर आवेश-भरे गम्भीर स्वर में मेरी ओर देखती हुई वह बोली—"रत्नावली के माध्यम से माँ महामाया ने जो तुझे आशीर्वाद दिया था और जो दी थी सांत्वना, उसे बतलाना भूल क्यों गये थे तुम? सारी कथा सुनाते समय वह अमृतवाणी याद नहीं आयी थी तुझे? बोल...।"

यह सुन कर अवाक् और स्तब्ध हो गया मैं एकबारगी। क्या बोलता और क्या कहता? मुँह बाये देखने लगा मैं कीर्ति आनन्द की ओर। निश्चित ही दो सौ वर्ष पूर्व के जीवन और उस जीवन में घटी सारी घटनाएँ एक-एक कर उभर आयी थीं कीर्ति आनन्द के मानस-पटल पर, अब सन्देह करने की कोई बात ही नहीं थी। कीर्ति आनन्द के रूप में रत्नावली ने ही जन्म लिया था। यह प्रमाणित हो चुका था अब।

●

२

रहस्यमय विलक्षण मूर्ति

क्या आप कभी इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि हमारे देश में एक ऐसी भी जगह है, जहाँ एकमात्र औरतों का ही राज्य है? और ऐसी औरतों का, जो घोर तांत्रिक हैं और जो हमेशा पुरुषों की वासना की प्यासी और उनके गर्म-गर्म गोश्त की भूखी रहती हैं।

नहीं।

कोई भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकता और न ही मैंने सोचा था।

सन् १९५२ ई० की बात है। पुरातत्व विभाग की ओर से हुई खुदाई में मुझे एक विलक्षण मूर्ति के रूप में अत्यन्त दुर्लभ कलाकृति मिली थी। लगभग दो फुट ऊँची, पद्मासन में बैठी वह विलक्षण मूर्ति मध्यकालीन थी और निश्चय ही नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित थी। मैंने अनुमान लगाया कि जिस जगह यह मूर्ति मिली है, वहाँ निश्चय ही कभी नाथ सम्प्रदाय का कोई मठ रहा होगा।

आदि शंकराचार्य से प्रताड़ित तांत्रिक साधनाओं की रक्षा करने के लिए सर्वप्रथम जिस सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ था—वह नाथ सम्प्रदाय था। योग के आधार पर शिव-शक्ति का समन्वय करके इस सम्प्रदाय ने साधना का जो मार्ग बतलाया, उसमें तंत्र की सभी साधनायें थीं। इसी युग में 'कुण्डलिनी' और 'षट्चक्र' जैसे गम्भीर और रहस्यमय योग तत्वों का रहस्योद्घाटन हुआ, साथ ही हमारे देश में कई महत्वपूर्ण शक्तिपीठों की भी स्थापना हुई। पश्चिम के विद्वान् इस समय नाथ सम्प्रदाय और उसके योग-तांत्रिक पक्ष को लेकर काफी गहराई में शोध कर रहे हैं।

हाँ तो उस अलभ्य विलक्षण मूर्ति के बारे में थोड़ा और बतला दूँ। वह मूर्ति त्रिधातु सोना, चाँदी और ताँबे की बनी थी और कम-से-कम चार-पाँच किलो की थी। पद्मासन पर बैठी उस मूर्ति की गोद में नील सरस्वती की मूर्ति विराजमान थीं और उसकी भी गोद में ज्ञान मुद्रा में तांत्रिक गणपति विराजमान थे। देवी के आठ हाथ थे। पहले दो हाथों की उँगलियों से उसने नील सरस्वती के तथा दूसरे हाथ की अँगुलियों से तांत्रिक गणपति के नेत्रों को बन्द कर रखा था। उसके तीसरे दो हाथों में चक्र और खड्ग थे और चौथे दो हाथों में नागपाश व नर-कंकाल। देवी के गले में भी नरमुण्डों की माला पड़ी थी और उभरे हुए दोनों उरोजों पर बीजाक्षर मंत्र लिखे

हुए थे। देवी का मुखमण्डल भव्य और आकर्षक साथ ही भयोत्पादक भी था। उसके स्थिर नेत्रों में एक अवर्चनीय भाव था।

देवी की उस विलक्षण मूर्ति का गहन अध्ययन करने के उद्देश्य से मैंने उसको अपने पास रख लिया। भला उस समय मैं क्या जानता था कि वह विलक्षण मूर्ति एक अत्यन्त तिमिराच्छन्न रहस्य को मेरे सामने अनावृत्त कर देगी।

एक दिन मैं यों ही मूर्ति का निरीक्षण कर रहा था, तभी मेरी दृष्टि उसके आसन के नीचे पड़ी। वहाँ पेंचदार एक ढक्कन था। कौतूहलवश ढक्कन को खोल दिया मैंने। भीतर खोखली जगह में एक पाण्डुलिपि रखी हुई दिखाई पड़ी मुझे। घोर आश्चर्य हुआ। वह पाण्डुलिपि १०-१२ पृष्ठों में की थी, जिसका आकार लगभग एक फुट लम्बा-चौड़ा था। भोजपत्र के पृष्ठों पर ब्राह्मी लिपि में जो कुछ लिखा था, उसको पढ़कर मैं एकदम स्तब्ध रह गया। सोने की बनी स्याही से लिखे गये अक्षर बिल्कुल स्पष्ट थे। समय के प्रभाव से सर्वथा मुक्त थी वह मूल्यवान पाण्डुलिपि। देखकर ऐसा लगता था कि कुछ दिनों पूर्व ही उसे लिखा गया हो।

मैं बड़े मनोयोग से पाण्डुलिपि पढ़ने लगा। पुरातत्व विभाग से सम्बन्धित होने के कारण पाण्डुलिपि की आयु समझते देर नहीं लगी। वह लगभग पाँच सौ वर्ष प्राचीन थी।

पहले पृष्ठों पर एक ऐसे द्वीप समूह का नक्शा दिया था जिसे आज अण्डमान निकोबार कहते हैं। अगले दो पृष्ठों में उसकी भौगोलिक स्थिति और वहाँ के प्राकृतिक वातावरण का वर्णन किया गया था। इसके बाद के पृष्ठों में उस स्थान का उल्लेख किया गया था, जहाँ केवल औरतों का राज्य था। वे औरतें नाथ सम्प्रदाय की अनुगामिनी थीं और उनकी इष्टदेवी थीं रिक्तोदरी। महाकाल के बारह रूप हैं। उसी में से एक रूप है कंकाल काली। इस कंकाल काली का ही दूसरा नाम रिक्तोदरी है।

तामसिक तंत्र साधना में कंकाल काली का बड़ा ही भयंकर स्थान है। इसके साधक बहुत उग्र होते हैं। एक समय था जब भारत में कंकाल काली के उग्र साधकों का बोलबाला था। उनकी साधना पूजा में नर-बलि, नर-मांस भक्षण, योनि-पूजा, गुह्य-पूजा, भैरवी-पूजा आदि का तामसिक विधि से उपयोग होता था। वे अपनी साधना शक्ति के बल पर सब कुछ कर सकने में समर्थ थे। उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं था। इस मार्ग की साधिकाओं को कापालिनी कहा जाता था। उनके विशेष तांत्रिक अनुष्ठान नर-मांस भक्षण का विशेष महत्व होता था। अपनी विशेष यौगिक क्रिया द्वारा वे काम शक्ति के आधार पर युवा पुरुषों की शारीरिक, मानसिक और प्राण शक्ति को ग्रहण कर लिया करती थीं और बाद में उसमें तांत्रिक शक्ति का समन्वय कर अपने लक्ष्य की पूर्ति करती थीं। अण्डमान निकोबार की वह रहस्यमय

जगह आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व ऐसी ही कापालिनियों का गढ़ था। पाण्डुलिपि के अन्त में लिखा था कि अण्डमान निकोबार में उस स्थान पर पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध है। यदि कभी कोई भूल से उस क्षेत्र में पहुँच भी गया तो उसका वापस लौटना सर्वथा असम्भव है।

सारा विवरण पढ़ने के बाद मैं सिहर उठा। पूरी रात उस मूर्ति और पाण्डुलिपि के बारे में ही सोचता-विचारता रह गया। बार-बार मेरे मस्तिष्क में यही प्रश्न चक्कर काटता था—क्या आज भी वहाँ कापालिनियों का ही राज्य होगा?

धीरे-धीरे छः साल लम्बा अर्सा गुजर गया। मैं पुरातत्व विभाग से मुक्त होकर श्रीलंका चला गया। उस समय तक एक प्रकार से मैं उस विलक्षण तांत्रिक मूर्ति और उस पाण्डुलिपि को भूल ही चुका था।

एक दिन कोलम्बो में मेरी भेंट एक सज्जन से हुई। वे अंग्रेज थे। नाम था जस्टन। वह रिटायर्ड पायलट थे। बातों के सिलसिले में उन्होंने मुझे बतलाया कि वे एक बार कोलम्बो से रंगून जा रहे थे। उनका जहाज अधिक ऊँचाई पर नहीं था। जब वे अण्डमान निकोबार के ऊपर पहुँचे तो एक विचित्र दृश्य देखा उन्होंने। घने जंगलों से घिरे हुए एक पहाड़ी इलाके में एक छोटी-सी झील थी, जिसके किनारे दर्जनों औरतें नहा रही थीं। वे सब युवा और सुन्दर थीं, और सबकी सब नख से शिख तक अनावृत्त। वे पानी में चुहल करती हुई एक-दूसरी के साथ कामुकता-भरा व्यवहार कर रही थीं।

जस्टन साहब की यह बात सुनते ही मुझे एकाएक फिर उस मूर्ति और रहस्यमयी पाण्डुलिपि की याद आ गयी। वे कापालिनियाँ ही तो नहीं थीं? सम्भव है, आज भी उनका अस्तित्व हो वहाँ.......

जब मैंने जस्टन साहब को सारी कथा सुनाई तो वे भी आश्चर्य से भर उठे। बोले, "हो सकता है कि वे रूपसी युवतियाँ जादूगरनी ही हों।"

न जाने क्यों मैं उस रहस्यमय इलाके में जाने के लिए उतावला हो उठा। यह मेरा पागलपन ही तो था और ऐसे ही पागलपन के वशीभूत होकर मैं जीवन-भर खतरे उठाता रहा हूँ।

उन दिनों से लंका रंगून के लिए हर हफ्ते स्टीमर रवाना होता था। रास्ते में एक दिन के लिए वह अण्डमान में लंगर डालता था।

इस बात का पता लगते ही मैंने स्टीमर के कप्तान से बातें कीं और निश्चित समय पर अण्डमान के लिए रवाना हो गया।

यहीं से शुरू होती है एक विचित्र और रहस्यमय अतीत को उद्घाटित करने वाली अविश्वसनीय कथा।

जब मेरा स्टीमर अण्डमान पहुँचा, उस समय पूरब का आकाश लाल हो रहा था। स्टीमर की बालकनी से मैंने एक बार चारों ओर देखा, फिर जस्टन साहब के

दिये हुए उस नक्शे पर नजर गड़ा दी, जिसे उन्होंने मुझे चलते समय अपने अनुमान के आधार पर बना कर दिया था।

अण्डमान निकोबार के पश्चिमी तट से भीतर १०-१२ मील चलने पर वह झील थी, जिसके किनारे उन्होंने उन औरतों को देखा था।

मैंने निश्चय किया था कि चौबीस घंटे के भीतर ही सारे रहस्यों का पता लगाकर वापस स्टीमर पर लौट आऊँगा। जब मैंने अपना यह निश्चय कप्तान को बतलाया, तो वह हाथ हिलाकर मुस्करा पड़ा।

काश! उसकी उस मुस्कराहट का रहस्य मैं उस समय समझ गया होता और अपने निश्चय को बदल देता तो.....

अण्डमान की धरती पर अपने पैर रखते ही एक बार सिहर उठा मैं। एक विचित्र-सी अनुभूति हुई। चार-पाँच घण्टे लगातार चलने के बाद मैं घोर जंगली इलाके में पहुँच गया। गर्जन, पड़ाक, चुगलुम, दीदू टाम्पिंग, लाकूच, थिंगम, एरेगी के घने और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से भरा था वह जंगल। मैं काफी थक चुका था। जंगल के उस काले समुद्र में घुसने की हिम्मत नहीं हुई मेरी अत: वापस लौटने की सोचने लगा—जंगल के भीतर कौन जाने किस विपत्ति का सामना करना पड़े।

थोड़ा आराम करने के ख्याल से मैं एक जगह बैठ गया। फिर मैंने थर्मस से कॉफी निकाल कर पी और एक सिगरेट जला कर पैर पसार दिया। फिर न जाने कब झपकी आ गयी।

सहसा कई स्त्रियों के खिलखिलाकर हँसने की मधुर ध्वनि से मेरी तन्द्रा भंग हो गयी। आँख खुली तो मैं स्तब्ध रह गया। सहसा विश्वास नहीं हुआ मुझे। मेरी आँखों के सामने पूरी एक दर्जन युवतियाँ खड़ी थीं, सभी निरावरण। उनकी उम्र अट्ठारह से बीस साल के भीतर ही रही होगी। सुन्दर तो नहीं, वे आकर्षक अवश्य थीं। उनके भूरे रंग के बाल काफी छोटे-छोटे थे। सबके गले में मूँगे और हड्डियों की मालायें बँधी हुई थीं। कमर में भी साँप की हड्डियों की मालायें बँधी हुई थीं। शरीर का रंग हल्का स्याह था। आँखों में अजीब-सी चमक, साथ ही वहशीपने की झलक थी। निश्चय ही वे आदिवासी जाति की औरतें थीं। वे विचित्र भाषा में आपस में बातें करतीं और खिलखिला कर हँसने लगतीं।

उस समय मेरी मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी। बस, आँखें फाड़े मैं उनकी ओर ताक रहा था।

सहसा सबसे कम उम्र की एक युवती मेरे बिल्कुल पास आ गयी और मेरा हाथ पकड़ कर उस पर अपने नुकीले दाँत गड़ा दिये उसने। दूसरे ही क्षण भलभला का ढेर सारा खून निकल आया वहाँ। मैं तेज दर्द से कराह उठा। वह युवती जीभ निकाल कर खून चाटने लगी। फिर उसने मुड़कर बड़ी प्रसन्न मुद्रा में अपनी साथिनियों की ओर देखा और अपनी विचित्र भाषा में न जाने क्या बात करने लगी।

मेरी हालत दयनीय हो रही थी। दर्द और पीड़ा से मेरे मन-मस्तिष्क पर न जाने कैसी बेहोशी छाती जा रही थी धीरे-धीरे। कब और किस क्षण चेतनाशून्य हो गया मैं, पता ही नहीं चला।

और जब चेतना लौटी तो घने जंगलों पर साँझ की स्याह चादर बिछ गयी थी। मैं उस समय एक टूटे-फूटे चबूतरे पर पड़ा हुआ था। सामने एक छोटी-सी झील थी और उसके ठीक बगल में किसी बहुत बड़े मंदिर का खण्डहर था। सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा—वहाँ एक नवयुवती सिर झुकाये खड़ी मेरी ही ओर ताक रही थी। बहुत सुन्दर थी वह। रंग भी गोरा था। आँखें चमकीली थीं। सुनहरे और घने बालों के गुच्छे उसके कन्धे तक लटक रहे थे। उसकी गठीली देह मानों साँचे में ढली थी। गले में काले मोतियों और मनुष्यों की उँगलियों की हड्डी की माला पहनी थी, जो उसके पुष्टोन्नत उरोजों पर झूल रही थी।

दृष्टि मिलते ही उसका खूबसूरत चेहरा सहसा लाल हो उठा। कुछ क्षण बाद वह धीमे स्वर में शुद्ध हिन्दी में बोली—''यहाँ तुमको महाभैरवी के आदेश से लाया गया है और मुझे तुम्हारी निगरानी करने के लिए रखा गया है।''

मैंने विस्मित होकर युवती की ओर देखा। वह हिन्दी कैसे जानती है ? बाद में उस युवती ने ही इसका रहस्य खोला, बोली—''इसमें विस्मित होने की जरूरत नहीं है। मैंने तुमसे बात करने के लिए एक हिन्दी भाषा-भाषी व्यक्ति की आत्मा से सम्पर्क स्थापित कर लिया है। उसी के माध्यम से मैं तुमसे हिन्दी में बातें कर सकती हूँ।''

मुझे समझते देर नहीं लगी कि मैं निस्सन्देह कापालिनियों के क्षेत्र में आकर उनके चंगुल में फँस चुका हूँ।

उस युवती का नाम मोडा था। महाभैरवी ने उसे विशेष तांत्रिक दीक्षा दी थी और कुछ दिनों बाद वह स्वयं महाभैरवी का पद पाने वाली थी।

मोडा को न जाने क्यों मुझसे हमदर्दी हो गयी थी, समझ में नहीं आया। उसने मेरे सूजे हुए हाथ को अपनी कोमल उँगलियों से सहलाया और कटी हुई जगह पर किसी जड़ी का लेप लगा दिया। जब वह लेप कर रही थी, उस समय बार-बार उसके पुष्टोन्नत उरोजों का मुझसे स्पर्श हो जाता था। हर बार वह सिहर उठती और उसका सुन्दर चेहरा गुलाबी हो जाता।

लेप करने के बाद मोडा ने बाँस की नली में भरकर कोई तरल पदार्थ मुझे पीने के लिए दिया। उसको पीते ही मेरा सारा शरीर एक नयी ताजगी और स्फूर्ति से भर उठा, और रोम-रोम से वासना की लपटें निकलने लगीं।

थोडी देर बाद मैंने देखा—पाँच-छः जवान आवरणहीन औरतें हाथों में मशाल लिये मेरी ही ओर आ रही थीं। एक औरत उत्तेजित स्वर में कह रही थी—''महाभैरवी उसे यहाँ नहीं रहने देगी। हमारे क्षेत्र में कोई भी पुरुष नहीं रह सकता।''

इसके बाद दूसरी औरत की आवाज सुनाई दी। वह कह रही थी, ''मैंने उसका खून चख कर देखा है, वह 'महाप्रसाद' के योग्य है।''

'महाप्रसाद' का नाम सुनते ही सब औरतें एक साथ खिलखिला कर हँस पड़ीं। जब वे मेरे पास आयी तो मैंने देखा—उनमें सिर्फ एक युवती परिचित थी, जिसने अपने दाँत से मेरा हाथ काट कर खून पीया था। बाकी सबके चेहरे पर मेरे प्रति विद्रोह और विद्वेष के भाव स्पष्ट थे।

वे काफी देर तक मेरी ओर घूरती हुई आस-पास चक्कर काटती रहीं, फिर एक-एक करके वापस चली गयीं।

इसके बाद मोडा मुझे झील के किनारे एक पथरीली गुफा में ले गयी। भीतर मुलायम घास का गद्दा-सा बिछा हुआ था। वहाँ उसने मुझे फिर वही तरल पदार्थ पिलाया और मुर्गे का भुना हुआ मांस खाने को दिया और पास ही बैठकर मेरे बालों को सहलाने लगी।

दुबारा उस पेय को पीने से पूरे शरीर में असहनीय तपन महसूस होने लगी मुझे। वासना से रक्त सनसना उठा। शायद यही हालत मोडा की भी थी। उसके गुलाबी होंठ काँप रहे थे। वह बार-बार मेरे शरीर से सट जाया करती। उसकी भूरी आँखों में अजीब उत्तेजना का भाव था। एकाएक न जाने कितने दिनों से रुकी हुई उसकी कामना का बाँध टूट गया और उसने मुझे नागपाश जैसे आलिंगन में बाँधकर मेरे चेहरे को चुम्बनों से लाल कर दिया। उसकी साँसों से बारूद की-सी आँच निकल रही थी। मैं भी आखिर हाड़-मांस का बना मनुष्य था। मैंने भी वासना के उफनते हुए भँवर में अपने को छोड़ दिया। पूरी रात वासना की आग में झुलसते हुए दोनों शरीर एक-दूसरे में खोये रहे। मोडा को मेरे प्रति इतनी हमदर्दी क्यों थी—इसका रहस्य अब मेरी समझ में आ गया था। मगर मोडा की वासना की आग एक ही रात में बुझने वाली नहीं थी। साँझ होते ही वह मुझे वही नशीला पदार्थ पिला देती, फिर पूरी रात कामान्ध होकर मेरे साथ वासना का खेल खेलती।

इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। मैं अब ऊब चुका था लेकिन एक दिन मैंने इन्कार कर दिया तो मोडा एकदम उत्तेजित हो उठी और काँपते स्वर में कहने लगी, ''नहीं तुमको रोज मेरी वासना तृप्त करनी पड़ेगी—तब तक जब तक मैं गर्भवती नहीं हो जाती। यह एक तांत्रिक अनुष्ठान है, जिसे तुमको पूरा करना ही होगा।''

मैं लाचार था। आखिर कर ही क्या सकता था। हर रात मोडा तांत्रिक अनुष्ठान के नाम पर मेरे साथ वासना का खेल खेलती और जब तृप्त हो जाती तो आदमखोर पिशाचिनी की भाँति ऐसी हरकतें करने लगती, जिसका वर्णन करना असम्भव है।

आखिर एक दिन वह गर्भवती हो ही गयी।

उस समय उसके चेहरे पर एक अजीब-सी चमक थी। वह इतनी खुश थी जैसे कोई साम्राज्य मिल गया हो। उस समय मेरी समझ में कुछ नहीं आया। बाद में उसकी खुशी का रहस्य तब खुला, जब मुझे महाभैरवी के सामने लाया गया।

सचमुच वह महाभैरवी ही थी।

तांत्रिक ग्रन्थों में मैंने महाभैरवी के जिस रूप का वर्णन पढ़ा था, वह उससे कहीं अधिक भयंकर थी। काफी ऊँचे पत्थर की वेदी पर बैठी थी वह प्रौढ़ महिला। शरीर का रंग बिल्कुल आबनूस जैसा काला वह भी बिल्कुल निरावरण थी। कमर में मोटी-सी रस्सी बँधी हुई थी। सिर मुड़ा हुआ था, जिस पर वह मानव-शिशु की खोपड़ी रखे थी। शराब के नशे के कारण उसकी लाल-लाल आँखें दहक रही थीं।

चबूतरे के सामने काफी लम्बा-चौड़ा मैदान था, जिसके एक ओर बहुत-सी निर्वस्त्र औरतें पीछे की ओर हाथ बाँधे सिर झुकाकर विनम्रता से खड़ी थीं। मैदान में दूसरी ओर मिट्टी की कई नाँदों में मशालें जल रही थीं और उन्हीं के पास गैंडे के मोटे खाल से मढ़ा नगाड़ा रखा हुआ था, जिसे एक मोटी-सी औरत बड़े मनोयोग से बजा रही थी। उसकी आवाज से वातावरण और गम्भीर एवं भयानक हो उठा था। मैदान के बीचोबीच एक मोटे-ताजे भैंसे की बलि दी थी, जिसका काला गाढ़ा खून चारों तरफ जमीन पर फैला हुआ था।

महाभैरवी के इशारे पर मेरे कपड़े उतारकर लकड़ी के एक मोटे खम्भे से बाँध दिया गया। उस समय मेरी मानसिक स्थिति कैसी थी, इसे मैं शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। बस, मैं एक ही बात सोच रहा था कि शायद अब वापस नहीं लौट सकूँगा। ये आदमखोर तांत्रिक औरतें निश्चय ही मेरी हत्या करके मेरे शरीर को नोंच-नोंच कर खा जायेंगी। भय से मेरा रोम-रोम काँप रहा था। मैंने चारों ओर देखा—मोडा वहाँ कहीं नहीं दिखायी दी। नगाड़े की भयानक आवाज धीरे-धीरे तेज होने लगी। औरतें उसके लय-ताल पर कतार बनाकर नाचने लगीं।

थोड़ी देर बाद दो युवतियाँ मोडा को लिये हुये वहाँ उपस्थित हुईं। मोडा का रूप देखकर मैं दंग रह गया। उसके सिर पर मोरपंख का मुकुट था। वह गले में मोतियों की मालायें और भुजाओं में स्फटिक का बाजूबन्द पहनी थी तथा उस समय भी वह निर्वस्त्र ही थी। मशालों के प्रकाश में उद्भाषित उसकी वह देह जैसे स्वर्गिक सौन्दर्य से झलमला रही थी। वह महाभैरवी के सामने आकर सिर झुकाये हुए खड़ी हो गयी।

महाभैरवी कटोरे जैसा एक पात्र लेकर उसमें उँगलियाँ डुबा-डुबा कर मोडा की देह पर छिड़कने लगी। मैने आश्चर्य से देखा कि छिड़का जाने वाला वह द्रव कुछ और नहीं, रक्त था। महाभैरवी ने मोडा के उरोजों, उभरे हुए पेट और नितम्बों पर पड़े रक्त के छीटों को अपने हाथ से रगड़ते हुए ऊँची आवाज में कुछ कहा, जैसे

कोई मंत्र पढ़ रही हो। उसे सुनकर मेरा सारा शरीर सिकुड़ने लगा। वह भाषा प्रागैतिहासिक काल की थी। मुझे समझते देर नहीं लगी, महाभैरवी निश्चय ही किसी आसुरी शक्ति-सम्पन्न देवी का आह्वान कर रही थी।

फिर विशालकाय महाभैरवी ने अपने सिर पर रखे शिशु-मुण्ड के सिर पर रख दिया और अपने हाथों से उसे शराब पीने को दी। सब औरतें समवेत स्वर में चीख कर हर्षोल्लास प्रकट करने लगीं।

इसके बाद मुझे एक अति रोमांचकारी और भयानक दृश्य देखने को मिला, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उस भयंकर अमानवीय दृश्य को याद करते ही आज भी मेरा सारा शरीर काँप उठता है।

सहसा मोडा बेहोश होकर गिर पड़ी। उसकी देह पर पोता हुआ रक्त मशालों के प्रकाश में काले-काले धब्बों की तरह दिखायी दे रहा था।

मोडा के गिरते ही महाभैरवी अपने स्थान से उठकर उसके पास पहुँची और अपना हाथ उसकी योनि में डालकर कोई मंत्र फिर पढ़ने लगी। कुछ देर बाद महभैरवी का हाथ बाहर निकला तो उसके साथ बहुत सारा खून भलभलाकर निकल पड़ा और जमीन पर फैल गया। बेहोशी की स्थिति में भी मोडा के मुँह से कातर चीख निकल गयी। फिर वह रह-रह कर आर्तनाद करने लगी।

हे भगवान्! क्या हो रहा था यह सब। घृणा से मेरी आँखें पल भर के लिए बन्द हो गयीं। दूसरे ही क्षण मैंने देखा—मोडा की जाँघों के बीच खून में डूबा मांस का एक लोथड़ा पड़ा था। निश्चय ही वह कुछ ही महीनों का गर्भस्थ शिशु का निर्जीव पिण्ड था।

महाभैरवी ने उस लोथड़े को उठाकर पत्थर की एक बड़ी-सी थाली में रखा और हाथ में तेज धार वाला छूरा लेकर उसके टुकड़े काटने लगी।

जब वह लोथड़ा छोटे-छोटे कतरों के रूप में बदल गया तो उसने हाथ उठाकर फिर कोई मंत्र पढ़ा और थाली लाकर मेरे सामने रख दी।

उसके बाद वे सारी औरतें एकदम टूट पड़ीं और उस थाली में से उस महाप्रसाद का एक-एक टुकड़ा उठाकर मुँह में रखने लगीं। वे सभी प्रसन्न थीं और हर्षोल्लास से नाच रही थीं।

उस भयंकर और रोमांचकारी अनुष्ठान की समाप्ति होने के बाद महाभैरवी का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हुआ। उसके संकेत पर मेरे बन्धन खोल दिये गये। इसके बाद मुझे महाभैरवी की भाषा, जिसे मैं बिल्कुल समझ नहीं पा रहा था, और संकेतों के जरिये जो कुछ समझाया उसका सारांश यह था कि मेरे पवित्र रक्त से मोडा का कौमार्य भंग हुआ और उसने गर्भ धारण किया है, इसके लिए वह कृतज्ञ है। तांत्रिक अनुष्ठान के माध्यम से गर्भस्थ शिशु का महाप्रसाद का वितरण करके

उसे 'देवी' का पद दिया गया है। मोडा अब देवी है, जो बाद में महाभैरवी का पद प्राप्त करेगी। इस प्रकार मुझे अपने पवित्र रक्त द्वारा पाँच और नवयुवतियों को देवी का पद प्राप्त कराना होगा। अगर एक वर्ष के भीतर वे तीनों नवयुवतियाँ भी गर्भवती नहीं हुईं तो महादेवी के सामने मेरी महाबलि दे दी जायेगी।

यह सुनकर मेरी क्या हालत हुई होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मैदान से काफी दूर घने जंगलों के बीच किसी प्राचीन मंदिर का बहुत बड़ा खण्डहर था, जिसमें गुफा जैसी कई टूटी-फूटी कोठरियाँ थीं। उन्हीं में से एक कोठरी मुझे रहने को दे दी गयी। समुद्र-तट वहाँ से काफी नजदीक ही था। तीनों नवयुवतियाँ भी मेरे पास ही थीं।

मारलो ने पहले तो टाल-मटोल की, पर बाद में वह मुझे तहखाने में ले जाने के लिए तैयार हो गयी।

खण्डहर वाले टूटे-फूटे मन्दिर से ही नीचे तहखाने में जाने का रास्ता था। मारलो आगे-आगे चल रही थी, मैं उसके पीछे-पीछे। जैसे ही मैं तहखाने में घुसा, दुर्गन्ध से माथा भन्ना उठा। मुझे मिचली-सी आने लगी।

तहखाने के बीच में एक छोटा-सा आँगन था, जिसके चारों ओर पत्थर के ऊँचे-ऊँचे खम्भे और दालान थे। धूल-भरी जमीन काफी गन्दी थी। कहीं-कहीं जानवरों की हड्डियों का ढेर लगा हुआ था। रोशनदान से आने वाले धुँधले प्रकाश में सब कुछ साफ-साफ दिखलायी पड़ रहा था। बायीं ओर वाले ढलान के छत के सहारे कई नर-कंकाल झूल रहे थे। मारलो ने बताया कि ये सारे कंकाल उन अभागों के हैं, जिनकी यहाँ बलि दी गयी थी। वह ढलान जहाँ खत्म होती थी वहीं काले पत्थर से बने एक ऊँचे चबूतरे पर पाँच-छः फुट ऊँची मूर्ति स्थापित थी। वह लाल पत्थर की थी।

उस पर दृष्टि पड़ते ही मैं स्तब्ध रह गया। खुदाई में मिली उस विलक्षण मूर्ति से यह मूर्ति बिल्कुल मिलती-जुलती थी। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। वह कंकाल काली रक्तोदरी की ही मूर्ति थी। उसी समय मारलो से एक और रहस्य की बात मालूम हुई—जब भारत में मुगल-शासन था, उस समय एक नागा तांत्रिक ने यहाँ आकर शरण ली थी। वह बड़ा उग्र और भयंकर तांत्रिक था। हर अमावस्या की रात वह नर-बलि देता और उसका कच्चा मांस खाता था। फिर एक दिन अचानक बिना किसी से कुछ कहे वह गायब हो गया। जाते समय वह यहाँ स्थापित सोने-चाँदी और ताँबे की बनी देवी की मूर्ति भी लेता गया था। वह मूर्ति बिल्कुल इस पत्थर की मूर्ति जैसी थी।

बताते-बताते मारलो मेरे पास आकर खड़ी हो गयी, फिर मेरे गले में हाथ डालकर पूछने लगी, "तुम मुझे धोखा देना चाहते हो न?"

"नहीं! यह क्या कह रही हो मारलो।" मैंने जल्दी से कहा, "मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ। जब तुम देवी बनोगी, उस समय मुझे कितनी खुशी होगी, बतला नहीं सकता।"

"यह सब झूठ है।" मारलो उत्तेजित होकर बोली, "मुझे तुम्हारे मन की सारी बातें अब मालूम हो गयी हैं। मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है। तुम प्यार का नाटक कर रहे हो मेरे साथ।"

"यह तुम्हारा भ्रम है मारलो।"

"नहीं। भ्रम नहीं है। इस मूर्ति की आँखों से आँख मिलाते ही दूसरे के मन के मन की सारी बातें मालूम हो जाती हैं—समझे?"

हे भगवान्, क्या सचमुच मारलो को मेरा उद्देश्य मालूम हो गया?

दूसरे क्षण मारलो मेरे सीने पर सिर रखकर फफक-फफक कर रोने लगी—"मैं तुमको बहुत चाहती हूँ। तुमसे बहुत प्यार करती हूँ। तुम मुझे छोड़कर क्यों भागना चाहते हो....बोलो? क्यों भागना चाहते हो....।"

मैं भला क्या जवाब देता। बात तो सच ही थी।

अचानक मेरे मस्तिष्क में जैसे कुछ कौंध गया। मारलो की नंगी पीठ सहलाते हुए मैंने पूछा, "क्या तुम भी मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

सुनते ही मारलो एकदम से चौंक पड़ी, फिर धीरे से बोली, "हाँ तैयार हूँ। मेरे लिए देवी का पद प्यार से ज्यादा कीमती नहीं है...पर यहाँ से भागा कैसे जायेगा।"

मारलो को मैंने सब कुछ समझा दिया, फिर बाद में सोचने लगा कि उसे लेकर जाऊँगा कहाँ? लोग इसे मेरे साथ देखकर क्या सोचेंगे। मारलो तो बिल्कुल जंगली थी—सभ्य समाज से अपरिचित एकदम पशु की तरह उसका प्रेम भी वासना में डूबा हुआ पशु जैसा ही था।

इसी प्रकार की बातें सोचते हुए चार दिन बीत गये। कोई निष्कर्ष नहीं निकला।

मारलो पहले से ज्यादा खुश थी।

निश्चित समय पर मारलो को लेकर मैं समुद्र-तट पर पहुँचा। अष्टमी का उदास पीला चाँद जंगलों के पीछे से निकल कर समुद्र के ऊपर आ गया था। रात का पहला प्रहर था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। सिर्फ समुद्र की गरजती हुई आवाज भर सुनाई पड़ रही थी। थोड़ी देर बाद ही सामने से आते हुए स्टीमर की सर्चलाइट की तीखी रोशनी दिखलायी पड़ी। संयोग ही कहिये—वह स्टीमर वही था, जिससे मैं कोलम्बो से वहाँ तक पहुँचा था। कप्तान भी वही था, जिसने मुस्कराकर हाथ हिलाते हुए मुझे विदा किया था। मैं मारलो की कलाई पकड़े हुए

खड़ा था। मैं जानता था कि मेरे स्टीमर पर चढ़ते ही मेरा वह हाथ हमेशा-हमेशा के लिए मारलो की कलाई छोड़ देगा, किन्तु उसी समय अचानक एक हृदय-विदारक घटना हो गयी, जिसकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

सहसा वातावरण एक मर्मान्तक चीख से काँप उठा। इसके साथ ही मारलो की कलाई भी मेरे हाथ से छूट गयी। वह धरती पर गिरकर तड़पने लगी। देखा तो जहर से बुझा हुआ एक घातक तीर मारलो के सीने में धँसा हुआ था।

मारलो बालू पर पड़ी मछली की तरह छटपटाती रही, फिर हमेशा के लिए खामोश हो गयी। अभी मैं कुछ समझता, इसके पहले ही एक और तीर सनसनाता हुआ मेरे सिर के ऊपर से गुजर गया। पलट कर देखा—दोनों हाथों में तीर-कमान लिये आदमखोर तांत्रिक औरतों का झुण्ड तेजी से मेरी ही ओर बढ़ता चला आ रहा था, लेकिन उनके पास पहुँचने से पहले ही मैं स्टीमर पर चढ़ चुका था....

●

३

भैरवी दीक्षा

पूरब का नीला आकाश धीरे-धीरे रक्ताभ होता जा रहा था। सूर्योदय होने ही वाला था। मयूराक्षी के श्मशान में गहरी नीरवता बिखरी हुई थी। चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। शायद रात में कई चिताएँ श्मशान में जली थीं, जिनकी राखों से धुएँ की पतली लकीरें निकल रही थीं अभी भी। कुछ ही दूर पर तीन-चार नरमुण्ड बिखरे हुए थे, जिन पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका लगा हुआ था और लाल फूल भी पड़े थे। तेल का दीपक और अगरबत्ती भी जलाई गई थी वहाँ। थोड़ा हट कर एक प्रौढ़ावस्था व्यक्ति का शव पीठ के बल जमीन पर टेढ़ा पड़ा था। उसके जटाजूट से बाल श्मशान की राख और धूल से सने थे। गले में हड्डियों की माला थी। बगल में एक लम्बा-सा लोहे का त्रिशूल पड़ा था, जिस पर ताजा खून लगा था। निश्चय ही कोई भयंकर अघोरी था वह व्यक्ति, इसमें संदेह नहीं। भय और आतंक फैला हुआ था उसके बदसूरत चेहरे पर। आँखों में भी भय समाया हुआ था। उसके टेढ़ हुए पैरों के पास देशी शराब की कई खाली बोतलें भी पड़ी थीं, जिनके बगल में कटे हुए कई नींबू भी बिखरे हुए थे। सब कुछ देखकर यही प्रतीत होता था कि जिसकी हत्या निर्ममतापूर्वक की गयी थी। इसमें सन्देह नहीं। फटा था पूरा पेट जिसमें से भलभला कर निकला हुआ खून चारों ओर फैलकर सूख गया था। अँतड़ियाँ भी निकल आई थीं बाहर, जिस पर भिनभिना रही थीं मक्खियाँ।

आखिर क्यों कत्ल किया गया था श्मशान में उस अज्ञात अघोर साधक का? क्या था कारण? इस प्रश्न के उत्तर में अघोर साधना की जो वीभत्स और रोमांचकारी कथा उभर कर सामने आई, उससे स्तब्ध और अवाक् होना स्वाभाविक था किसी के लिए भी।

अमावस्या की काली अंधेरी रात। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा। सन्नाटा ऐसा कि मन सिहर-सिहर उठे। लेकिन उस औघड़ को न अंधेरे की परवाह थी न सन्नाटे की। वह अघोर मंत्र का जाप करते हुए एक अधबुझी चिता की परिक्रमा कर रहा था। नाथ सम्प्रदाय के उस कनफटे अघोरी ने अपनी सिद्धियों से जान लिया था कि गाँव में एक युवक अकाल मृत्यु का ग्रास बनेगा। चूँकि उसे भैरवी सिद्ध करनी थी, इसलिए उसने युवक की मौत का डोला आने से पहले ही चितास्थली का अग्नि स्तंभन कर दिया था। यही कारण था कि वह चिता आधी जल कर बुझ गयी थी। चिता की भाँति शव भी अर्द्धदग्ध था।

चिता की सात बार परिक्रमा करने के बाद कनफटे अघोरी अघोरानंद ने अघोरनाद किया, फिर मुट्ठी में लिया हुआ कत्थई रंग का कोई चूर्ण चिता में फेंक दिया। इस तरह, जैसे वह किसी हवन कुण्ड में आहुति दे रहा हो। अधजले काष्ठ पर उस अभिमंत्रित चूर्ण का पड़ना था कि चिता भड़क उठी। चिता से उठने वाली विकराल लपटों ने श्मशान में मलगजी उजाला कर दिया।

चिता धधकते ही अघोरी ने अट्टहास किया। भयानक अट्टहास जैसे जंगल में कोई पागल हाथी चिंघाड़ रहा हो। फिर वह चिता के पास ही स्थित अपने आसन पर जा बैठा। तंत्र साधना की पहले से ही उसने तैयारी कर रखी थी—कनेर के फूल, मछली, शराब और न जाने क्या-क्या। कच्चे सूत से एक काला मुर्गा भी उसने बाँध रखा था। आसन पर जा विराजते ही अघोरी अघोरानन्द ने मदिरा उड़ेली और उसे एक ही साँस में गटागट पी गया। वह प्रसन्न था, उसके अनुष्ठान का प्रथम चरण सफल रहा था।

मधुपान करके अघोरी ने एक गंदी डकार ली। नरकपाल को एक तरफ रखा और धधकती चिता की जानिब दोनों हाथ उठाकर जोर-जोर से पुकारने लगा—"जाग शवेश्वर, अघोरी आया...जाग शवेश्वर अघोरी आया....।"

सहसा धधकती चिता में हलचल हुई और फिर ऐसा लगा, जैसे शामत आ गयी हो। चिता में हलचल होते ही पीपल के पेड़ पर बैठा मनहूस उल्लू अपनी कर्कश आवाज में चीखने लगा। घोसलों में सोये पंछी पंख फड़फड़ाते हुए उड़ गये। श्मशान में विचरने वाली दुरात्मायें हाहाकार करती हुईं यहाँ-वहाँ भागने लगीं। तभी चिंता में अधजले शव ने अँगड़ाई ली और दाँत किटकिटाता हुआ उठ खड़ा हुआ। बड़ा भयानक दृश्य था वह। धू-धू करके शव जल रहा था। मांस और चर्बी के जलने की असहनीय दुर्गंध चारों ओर फैल रही थी।

जैसे ही शव उठकर खड़ा हुआ, अघोरी ने सामने रखी शराब की हाँडी उठाकर उसकी ओर उछाल दी—"ले शवेश्वर पहले अपनी प्यास बुझा।"

"ला श्मशान पुत्र दे।" कहकर शव ने दोनों हाथ फैला दिये। हवा में उड़ती हुई हाँडी उसके हाथों में जा समायी। शव ने हाँडी मुँह से लगायी और पल भर में ही सारी मदिरा पी गया। फिर उसने चिता पर हाँडी पटक कर फोड़ दी और चिल्लाने लगा- "मांस...मांस...।"

अघोरी ने पहले मछली और फिर कच्चे सूत में बँधे काले मुर्गे को शवेश्वर की तरफ शराब की भाँति उछाल दिया।

मछली-मुर्गा खाकर शवेश्वर तृप्त हुआ और बोला—"अभय हो अघोरानन्द.... अभय।" उसकी आवाज ऐसी आ रही थी जैसे कोई बच्चा अंधे कुएँ के भीतर से बोल रहा-"आज की रात यह श्मशान तेरा हुआ। डाकिनी, शाकिनी, पिशाचिनी तथा रक्तपान करने वाली दुरात्माओं से तू अभय हुआ। निर्विघ्न होकर अपनी साधना कर।"

अघोरानन्द ने शवेश्वर को करबद्ध प्रणाम किया, जैसे वह उसका आभार व्यक्त कर रहा हो।

"अब मैं चला।" कह कर शव धड़ाम से चिता पर गिर पड़ा। कुछ अंगारे, कुछ सूखी लकड़ियाँ यहाँ-वहाँ उछलीं और फिर शव पुनः धू-धू करके जलने लगा। अघोरी प्रसन्न, उसने श्मशान प्रधान की कृपा, उसका अभयदान प्राप्त कर लिया था। श्मशान में विचरने वाली प्रेतात्माएँ अब उसके अभीष्ट में विघ्न डालने का दुस्साहस नहीं कर सकती थीं। अतएव, प्रसन्नता के अतिरेक में अघोरानन्द ने आसमान की ओर मुँह करके जोरदार ठहाका लगाया—"आज मेरी साधना पूरी होकर रहेगी...। मैं भैरवी सिद्ध करूँगा आज...।"

"सावधान अघोरानन्द।" तभी सिद्ध कर्णपिशाचिनी ने अघोरी के कान में सरगोशी की, "नक्षत्र अनुकूल नहीं है। लौट जा इस श्मशान से अन्यथा जिसे तू अपने खप्पर में बाँधने की सोच रहा है, वही तेरे प्राण हर लेगी।"

"चुप अशरीरी प्रेतात्मा।" अघोरी दहाड़ा—"क्या तू जानती नहीं, भूत-प्रेत मेरे दास हैं। दुष्टात्माएँ मेरी गुलामी करती हैं। मेरे अभीष्ट में विघ्न न डाल, वरना किसी बिरवे में कील दूँगा, फिर रोती रहेगी हजारों साल।"

"सावधान करना मेरा काम था, आगे तेरी इच्छा।" कह कर कर्णपिशाचिनी अदृश्य हो गयी।

अघोरी ने त्रिपुरारी की जयजयकार की और शराब की बोतल उठाकर मुँह से लगा ली। औघड़ ने दो घूँट शराब गले से नीचे उतारी ही थी कि उसके कानों में पायल की रुनझुन की आवाज पड़ी। पायल छनकाती एक नवयौवना धीरे-धीरे चलती हुई धधकती चिता के पास बैठे औघड़ के सामने आ खड़ी हुई। औघड़ उसे देखते ही लाल-लाल आँखें निकाल कर चिल्लाया—"इतनी देर से आयी है हरामजादी! लगता है, तुझे अघोरी के क्रोध का भय नहीं।"

"क्षमा महाराज।" लड़की विनम्रता से बोली—"देर से आने के लिए दोषी मैं नहीं, मेरी माँ है। उसी ने इतनी देर लगा दी।"

"रत्ना कहाँ है तेरी माँ?" औघड़ ने गुस्से में पूछा तो वह सहमकर बोली—"माँ तो मुझे छोड़ने आयी थी, श्मशान की सीमा से वापस लौट गयीं।"

"अच्छा हुआ वहीं से लौट गयी।" औघड़ ने बोतल मुँह से लगाकर लम्बा-सा घूँट भरा, फिर बोला—"नहीं तो डमरू वाले का कहर टूट पड़ता उस पर।

रत्ना डरी-सहमी-सी खड़ी थी। चिता की लाल रोशनी में उसके चेहरे पर भय के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। अघोरी ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी झोली से चिता-भस्मी निकाली और भैरवी चौक पूर दिया। फिर आदेशात्मक स्वर में बोला—"अनुष्ठान की शुभ बेला निकट ही है। निर्वस्त्र होकर इस चौक में बैठ जा।" औघड़ की बात सुनकर पल भर के लिए रत्ना का शरीर

काँप उठा। लेकिन वह सुनसान जगह में कर भी क्या कर सकती थी। औघड़ की आज्ञा मानने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। यदि वह श्मशान से भाग भी जाती तो माँ घर में घुसने न देती। लिहाजा, मजबूरन उसने वही किया जो अघोरी चाहता था। वह औघड़ के सामने पूरी तरह निर्वस्त्र खड़ी थी।

शराब के नशे में धुत औघड़ थोड़ी देर अपलक लड़की के निर्वस्त्र शरीर को घूरता रहा। फिर शराब के चंद घूँट गले में उतारने के बाद बोला—"बैठ जाओ कुछ तांत्रिक क्रियायें करनी हैं।"

आज्ञा पाते ही रत्ना चिता-भस्मी से पूरे गये चौक में बैठ गयी। औघड़ भी पद्मासन लगा कर बैठ गया और अघोर मंत्रों का जाप करने लगा। फिर उसने एक पात्र में बोतल से मदिरा उड़ेली और रत्ना को देते हुए बोला—"इसे पी लो भैरवी, यह महाकाल का प्रसाद है।"

रत्ना ने कभी मदिरा छुई तक नहीं थी। अतः वह हिचकिचाई, पर अघोरी के डर की वजह से मजबूरी में उसे पात्र खाली करना पड़ा।

शराब गले से नीचे उतरी, थोड़ी देर में डरी हुई हिरनी शेरनी बन गयी। मन-ही-मन उस शेर पर झपटने को तैयार हो गयी, जो उसका शिकार करना चाहता था।

"अब बस आखिरी क्रिया बची है।" औघड़ बोला—"मैं आह्वान के समय तुम्हारे साथ रमण करूँगा। उसके बाद अनुष्ठान समाप्त हो जायेगा। तुम्हारे अन्दर वे सारी शक्तियाँ आ जायेंगी, जो भैरवी में होती हैं।"

रत्ना ने न कोई विरोध किया, न कुछ बोली। उसे शांत देख अघोरी ने कहा—"आओ मुझे आनन्द के सागर के उस अतिरेक में ले जाओ, जहाँ पहुँच कर मानव सब कुछ भूल जाता है।"

जैसी आज्ञा महाराज। रत्ना चिता-भस्मी पर त्रिशूल के पास पसरती हुई बोली—"मैं आज आपको आनन्द के उस सागर में ले जाऊँगी, जहाँ से आप कभी लौट नहीं पायेंगे।"

"यही तो हम चाहते हैं।" औघड़ नशे में झूमते हुए बोला—"समय निकला जा रहा है, जल्दी कर।"

"आओ न महाराज! मैं तो तैयार हूँ।" रत्ना ने उसे खुला आमंत्रण दिया तो औघड़ आगे बढ़कर उसके ऊपर झुकने को हुआ, तभी कर्णपिशाचिनी ने पुनः चेतावनी दी, "सावधान श्मशान पुत्र" लेकिन अघोरी ने उसकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। वह रत्ना पर झुकता चला गया फिर....

❑ ❑ ❑ ❑

रत्ना के पिता चरणजीत सिंह प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। माँ चन्द्रकला पाँच दर्जा पास घरेलू महिला थी। गृहस्थी संभालने के साथ-साथ वह घर में सिलाई का काम भी करती थी।

रत्ना सात साल की हो चुकी थी। पिता उसे बहुत प्यार करते थे। उन्होंने उसका दाखिला कस्बे के उसी स्कूल में करा दिया था, जहाँ वह स्वयं अध्यापक थे। रत्ना का भाई राजेश मात्र चार साल का था। जब उसे निमोनिया हुआ। कुछ डॉक्टरों की कमी और कुछ लापरवाही से राजेश का निमोनिया बिगड़ गया।

काफी दवा-दारू के बाद भी जब राजेश दिन-पर-दिन सूखता चला गया तो चन्द्रकला को लगा कि उस पर किसी भूत-प्रेत का साया है। इसी वजह से वह ठीक नहीं हो पा रहा है। चरणजीत सिंह हालाँकि पत्नी की बात से सहमत नहीं थे, लेकिन चन्द्रकला ने उनकी एक न सुनी। वह झाड़-फूँक तथा टोना-टोटका करने वालों के पीछे भागने लगी। उसने वह सब कुछ किया, जो ऐसे लोगों ने बताया, लेकिन नतीजा कोई नहीं निकला।

उन्हीं दिनों कस्बे के निकट मयूराक्षी के श्मशान में एक औघड़ ने डेरा जमाया। जल्दी ही कस्बे भर में खबर फैल गयी कि श्मशान वाला औघड़ सिद्ध है। वह जिस पर हाथ रख देता है, उसके सिर से सारी बलायें टल जाती हैं।

चन्द्रकला को पता चला तो राजेश को लेकर वह भी औघड़ से मिली। ईश्वर जाने यह उस अघोरी के आशीर्वाद का प्रताप था या उसकी दी हुई जड़ी-बूटियों का असर कि कुछ ही दिनों में राजेश भला-चंगा हो गया था।

बेटे के ठीक हो जाने से अघोरानन्द के प्रति चन्द्रकला की अंधभक्ति बढ़ जाना स्वाभाविक था। वह उसे अपना भगवान् मानने लगी। यहाँ तक कि अघोरी के सामने चन्द्रकला की नजरों में पति की भी कोई इज्जत न रही।

रत्ना को अघोरी ने पहली बार तब देखा था जब वह उसके घर आया था। तब वह दस साल की थी और दुनियादारी की बहुत सारी बातें जानने-समझने लगी थी। उस वक्त अघोरी की उम्र पच्चीस-छब्बीस साल रही होगी। उलझी हुई बड़ी-बड़ी लटें, फैली हुई स्याह दाढ़ी, शरीर से वह गन्दा जरूर लगता था पर चेहरे पर अनोखा तेज था।

बात-बात में गाली बकता और चन्द्रकला को छोड़कर सबसे अभद्रता से पेश आता। माँ के कहने पर रत्ना ने अघोरी के पैर छुए थे, तो अट्टहास लगाते हुए उसने चन्द्रकला की ओर देखकर कहा-"तेरी बेटी बड़ी भाग्यशाली है। मैं इसे अपनी भैरवी बनाऊँगा। आज से यह मेरी हो गयी।"

अघोरानन्द की बात सुनकर चन्द्रकला खुश हो गयी। उसने हाथ जोड़कर कहा—"सब कुछ आपका ही है महाराज। मैं तो मात्र आपकी चरणदासी हूँ।"

जब यह बात रत्ना के पिता चरणजीत सिंह को पता चली तो वह आगबबूला हो गये। उन्होंने चन्द्रकला को फटकारा—"खबरदार, जो मेरी बेटी के बारे में ऐसा सोचा भी तो। जानती हो, क्या होती है भैरवी...कैसे बनायी जाती है?" उस दिन चरण सिंह चन्द्रकला पर बहुत बरसे थे। गुस्से से फुँफकारते हुए उन्होंने कहा था—

"मैंने तुझे न कभी रोका है, न रोकूँगा। तू भैरवी बन चाहे डाकिनी-पिशाचिनी। मैं कुछ नहीं कहूँगा पर मेरी बेटी के बारे में कभी ऐसा सोचना भी मत।"

पति का गुस्सा देख चन्द्रकला चुप्पी साध गयी। उसे शांत देख चरण सिंह ने समझा कि वह उसके गुस्से का कारण जान गयी होगी। काश! ऐसा हो जाता। चन्द्रकला पति से डर कर अघोरी से विमुख क्या होती उसने उसके कहने पर घर में तरह-तरह की तांत्रिक क्रियायें शुरू कर दीं। ऐसे काम वह पति की गैर मौजूदगी में करती थी। रत्ना और राजेश को वह धमकी देकर खामोश रखती थी।

अघोरी कस्बे में सिर्फ चन्द्रकला के घर जाता था। चन्द्रकला उसकी खूब सेवा करती थी। तरह-तरह के चमत्कार दिखाकर वह सबकी नजर में सिद्ध पुरुष बन बैठा था। अघोरी न जाने क्या-क्या ऊलजुलूल बकता, गालियाँ देता पर उसकी हरकतें किसी को बुरी नहीं लगती थीं।

अघोरानन्द चन्द्रकला के घर तब आता था, जब घर में चरण सिंह नहीं होते थे। इत्तिफाक से एक दिन अघोरी उसके घर में बैठा मोहल्ले की औरतों से गाली-गलौज कर रहा था, तभी चरण सिंह आ गये। उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगा। उन्होंने पहले पत्नी को डाँटा—"यह घर है, चण्डूखाना नहीं, जहाँ जो चाहे बकता रहे। बच्चे बड़े हो गये हैं, उन पर क्या असर पड़ेगा सोचा है कभी? तुम्हारी सनक के पीछे मैं अपने बच्चों को नहीं बिगाड़ूँगा।" फिर उन्होंने अघोरी को दुत्कारा—"पाखण्डी निकल जा यहाँ से। खबरदार, जो दोबारा मेरे घर में कदम रखा। साधु वो होता है जो तन से, मन से, विचारों से, खानपान से सात्विक होता है।"

चरण सिंह की बात सुनकर अघोरी की आँखें अंगारे की तरह दहकने लगीं। वह अपना त्रिशूल और खप्पर उठाकर क्रोध में उठा और दायाँ हाथ ऊपर उठाकर चीखा—"अघोरी जहाँ पैर रख देता है वहाँ वही होगा जो मैं चाहूँगा। रही बात तेरी, तू जल्दी ही इस घर की चौखट पर एड़ियाँ रगड़-रगड़ का मरेगा।"

अघोरी जाने लगा तो चन्द्रकला ने उसके पैर पकड़ लिये—"क्षमा महाराज, इनसे गलती हो गयी। इन्हें क्षमा कर दो।"

अघोरी ने चन्द्रकला की एक न सुनी। वह उसे ठोकर मारते हुए बाहर निकल गया। उस दिन के बाद अघोरी ने घर आना बंद कर दिया था। अलबत्ता चन्द्रकला उससे मिलने श्मशान जाती रहती थी।

लोगों को अघोरी के शाप की बात पता चली तो उन्होंने चरण सिंह को काफी समझाया कि वह वक्त रहते उनसे माफी माँग लें, परन्तु चरण सिंह नहीं माने। इसका नतीजा भी जल्दी ही सामने आ गया। हुआ वही, जो अघोरी ने कहा था। महीना गुजरते-गुजरते चरण सिंह बीमार रहने लगे। दवा-दारू भी खूब की गयी पर कोई लाभ न हुआ। जल्दी ही उन्होंने चारपाई पकड़ ली। वह एक बार चारपाई पर लेटे तो फिर लाश बनकर ही उतरे।

चरण सिंह क़ी मौत के बाद अघोरी का यश बढ़ गया। अघोरी का शाप पूरा होने के बाद कस्बे के लोग जहाँ उससे डरने लगे थे, वहीं उनके मन में उसके प्रति अप्रत्याशित रूप से श्रद्धा भी बढ़ गयी थी।

चरण सिंह की मृत्यु के बाद ही उनके घर की समृद्धि कम होने की बजाय बढ़ने लगी। लोग इसे अघोरानन्द अघोरी का वरदान मानते थे। केवल इतना ही नहीं, बल्कि मोहल्ले के लोगों में खासकर स्त्रियों ने तो बाबा की सोहबत में रहने के कारण रत्ना की माँ चन्द्रकला को भी देवी मान लिया था। वह उन्हें आशीर्वाद देकर कृतार्थ करने लगी थी। अपने स्वार्थ की खातिर कोई औरत कितना गिर सकती है और भक्ति-भाव की आड़ में कोई साधु किस हद तक जा सकता है, यह रत्ना ने जाना चौदह वर्ष की उम्र के बाद। उसी दिन उसे पता चला कि अघोरी और उसकी माँ बन्द कमरे में कौन-सा अनुष्ठान करते हैं। दरअसल, जब से रत्ना ने औरत-मर्द के शारीरिक सम्बन्धों के बारे में जाना था, तब उसे अपनी माँ और अघोरी पर शक होने लगा था। इसी हकीकत को जानने के लिए उसने एक कमरे के दरवाजे में छेद किया, जिसमें तांत्रिक क्रियायें होती थीं। यह काम रत्ना ने तब किया, जब न चन्द्रकला घर में थी, और न राजेश।

उसी रात जब चन्द्रकला और अघोरी तांत्रिक क्रियायें करने के नाम पर उस कमरे में बन्द थे तो आधी रात को रत्ना चुपचाप उठी। छेद से आँख लगाकर अन्दर झाँका। अन्दर का दृश्य देखकर रत्ना सन्न रह गयी। उसे उन दोनों से नफरत हो गयी।

अघोरी की मान्यता कस्बे में ही नहीं, बल्कि आसपास के इलाके में फैल गयी थी। लोग तरह-तरह की तांत्रिक क्रियाएँ कराने के लिए उसे मुर्गे और शराब की बोतलें दे जाते थे, लेकिन इन चीजों का इस्तेमाल होता था रत्ना के घर पर। रत्ना भी अपनी माँ और अघोरी की हकीकत जान चुकी थी। लेकिन दुःख इस बात का था कि इज्जत की वजह से यह बात किसी को बता नहीं सकती थी।

समय बड़ी तेजी से गुजर रहा था। चरण सिंह को मरे पाँच साल हो गये थे। रत्ना सोलह साल की हो चुकी थी। माँ की तरह सुन्दर तो वह थी ही, चढ़ते यौवन ने उसे और निखार दिया था। तभी चन्द्रकला ने उससे कहा—"रत्ना तुझे जवान करने के लिए मैंने अपनी जवानी होम कर दी। अब तुझे औघड़ बाबा की भैरवी बनना है। जिस दिन तुझे भैरवी की शक्तियाँ मिल जायेंगी, उस दिन हम सबका जन्म सफल हो जायेगा और सम्पन्नता हमारे कदम चूमने लगेगी।"

"मुझे किसी की भैरवी नहीं बनना।" रत्ना गुर्रायी—"तुम उस धूर्त के जाल में फँसी हो, अब मुझे भी फँसाना चाहती हो। कैसी माँ हो तुम, जो बेटी के बुरे-भले का ख्याल तक नहीं।"

"ख्याल है तभी तो कह रही हूँ।" चन्द्रकला बोली—"बाबा ने बताया है अभी से तांत्रिक क्रियायें शुरू करनी होंगी, तब कहीं साल-डेढ़ साल में तुम्हें भैरवी की शक्तियाँ प्राप्त होंगी।"

"मैंने कह दिया न कि मुझे इन सब लफड़ों में नहीं पड़ना। मुझे न भैरवी बनना है, न शक्तियाँ चाहिए। भगवान् ने मुझे जो शक्ति दी है वही काफी है।"

"तू बाबा के क्रोध को भी जानती है और अपने बाप की मौत को भी। तुझे भी भरी जवानी में एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरना है तो कर देना इन्कार, बाबा से।" माँ के शब्द रत्ना के दिल में तीर की तरह चुभे थे। लेकिन पिता की मौत याद आते ही वह डर गयी। उसने सोचा तो रास्ते नजर आये। पहली मौत दूसरा घर छोड़ना और तीसरा भैरवी बनना। अन्ततः वह इस नतीजे पर पहुँची कि चैन से जीना है तो उसे भैरवी बनाना ही पड़ेगा। ...और अघोरानन्द की भैरवी बनाने के लिए चन्द्रकला अमावस की उस रात रत्ना को श्मशान में छोड़ कर घर लौट आयी थी।

रत्ना ने जिस समय घर लौट कर दरवाजे पर दस्तक दी, रात्रि का तीसरा प्रहर बीतने ही वाला था। दस्तक होते ही चन्द्रकला की अन्दर से आवाज आई—"कौन?" शायद वह रात आँखों में ही काट रही थी।

कुछ पल तक रत्ना खामोश खड़ी रही। फिर आहिस्ता से बोली—"माँ दरवाजा खोलो मैं हूँ।"

बेटी की आवाज पहचानकर चन्द्रकला ने किवाड़ खोल दिया। रत्ना तेजी से भीतर दाखिल हुई और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। नाइट लैम्प की रोशनी में चन्द्रकला ने देखा कि रत्ना की साँस धौंकनी की तरह चल रही थी। कपड़े भी अस्त-व्यस्त थे और वह पसीने में डूबी हुई थी।

कुछ क्षणों तक चन्द्रकला अपनी पुत्री की आँखों में झाँकती रही। शायद उसे बेटी की साँसों में से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी, पर इस बारे में उसने कुछ नहीं पूछा—"रत्ना, औघड़ बाबा से दीक्षा प्राप्त कर ली?"

"हाँ माँ।" फूलती साँसों को काबू में करके रत्ना ने जवाब दिया। अचानक चन्द्रकला चौंकी। उसने देखा रत्ना के निचले वस्त्रों पर ताजा रक्त के धब्बे लगे थे।

"रत्ना!" चन्द्रकला ने पूछा—"तुम्हारे कपड़ों पर ये खून के दाग कैसे...?"

"माँ, यह खून मेरा नहीं है।" रत्ना अपनी माँ के प्रश्न का आशय समझ कर बोली—"मैं जैसी घर से गयी थी, वैसी ही वापस आयी हूँ।" इसके आगे एक शब्द भी नहीं कहा रत्ना ने और तेजी से अपने कमरे की तरफ भाग गयी। वह यह भी न देख सकी कि उसका उत्तर सुनकर उसकी माँ के अधरों पर एक अर्थपूर्ण मुस्कान फैल गयी थी।

●

४

तंत्र-मंत्र के नाम पर

क्या आप यह जानते हैं कि आप जिस वातावरण में रहते हैं, उस वातावरण में अनगिनत आत्माएँ चक्कर काटती रहती हैं और वे हमेशा आपसे सम्पर्क स्थापित कर अपना दु:ख-सुख, अपनी पीड़ा, वेदना, व्यथा आदि बतलाने के लिए व्याकुल रहा करती हैं।

लेकिन क्या उनके लिए यह सम्भव हो पाता है?

नहीं, क्योंकि आपकी और उनकी दुनिया के बीच एक ऐसा प्राकृतिक आवरण है, जिसका भेदन उन अतृप्त आत्माओं के लिए एक सीमा तक असम्भव है।

हमारे देश में प्रकृति के उस रहस्यमय आवरण का भेदन कर ऐसी अतृप्त और विवश आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के एकमात्र दो ही साधन हैं पहला है—योग और दूसरा है—तंत्र। योग में सूक्ष्मतम प्राण-शक्ति और तंत्र में सूक्ष्मतम मन-शक्ति काम करती है।

इन दोनों साधनों के द्वारा आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए विज्ञान को परलोक विज्ञान की संज्ञा दी गयी है।

आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले पश्चिमी देशों के लोग आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने में हिचकते थे। इसे कल्पना अथवा भ्रम ही समझा जाता था, लेकिन बाद में कुछ ऐसी विचित्र और अविश्वसनीय घटनाएँ घटीं, जिनका वैज्ञानिक निराकरण न होने पर लोगों को विवश होकर आत्माओं के अस्तित्व को मानना पड़ा।

फिर भी परलौकिक जगत् से सम्बन्धित रहस्य-चर्चा, अलौकिक घटनाओं को लेकर विश्वास और विज्ञान का अंतर्द्वन्द अभी चल रहा है। सच तो यह है कि आज जिस परलोक-विज्ञान की चर्चा पश्चिमी देशों में बड़े जोर-शोर से हो रही है, वह भारतीय परलोक-विज्ञान से परे बिल्कुल आधुनिक है। उसका आधार है, विज्ञान और आध्यात्मवाद का समन्वय। यही कारण है कि जब तक पश्चिम के लोग आध्यात्मवाद की परिधि में रहते हैं तब तक आत्मा की सत्ता स्वीकार करते हैं और जब उस परिधि को तोड़कर विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचते हैं तो आत्मा के अस्तित्व को तत्काल अस्वीकार कर देते हैं।

यहाँ यह कहना असंगत-सा होगा कि पश्चिमी देशों में जिस विज्ञान की उन्नति हो रही है, उसकी अपनी एक सीमा है, मगर आध्यात्म की नहीं, वह

असीम है। एक वैज्ञानिक तब तक वैज्ञानिक है, जब तक कि वह अध्यात्म की चर्चा नहीं करता, लेकिन एक अध्यात्मवादी के लिए यह सिद्धान्त लागू नहीं होता, अन्य तमाम विषयों की तरह विज्ञान भी उसके लिए एक महत्वपूर्ण विषय होता है और उसे वह अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से देखता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि विज्ञान और अध्यात्म की खिचड़ी से जिस नये विषय का जन्म होगा वह नि:सन्देह विवादास्पद और द्वन्द्वात्मक होगा, उससे किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता, वह हमेशा विश्वास एवं अविश्वास के बीच झूलता रहेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि यही हालत पश्चिम के परलोक विज्ञान की है।

सन् १९४७।

न्यूयॉर्क में एक विचित्र और अविश्वसनीय घटना घटी। न्यूयॉर्क के एक मेथोडिस्ट के घर में (काक्स) परिवार की दो नवयुवतियों को केन्द्र बनाकर रहस्यमय ढंग से लगातार कई घण्टों तक भड़–भड़ की आवाज होती रही, उस रहस्यमयी और अलौकिक आवाज को सुनने के लिए उस विशाल भवन के चारों तरफ जनता की भारी भीड़ इकट्ठी हो गयी, उस आवाज का कारण क्या था? यह किसी की समझ में नहीं आया। बड़े–बड़े वैज्ञानिकों का माथा चकरा गया, वे हतप्रभ रह गये। कहने की आवश्यकता नहीं, इसी अलौकिक और रहस्यमयी घटना के गर्भ से पश्चिम में आधुनिक परलोक–विज्ञान का जन्म हुआ और हिचकिचाते हुए आत्मा के अस्तित्व को धीरे–धीरे वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया। परिणामस्वरूप परलोक का रहस्य विषय वैज्ञानिक शोध और अनुसंधान का भी विषय बना। उस रहस्यमयी घटना के बाद सन् १८७३ में आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से लंदन में ब्रिटिश नेशनल एसोसिएशन ऑफ स्पिरिटिष्ट्स की स्थापना हुई और प्रख्यात पत्रकार मि० स्टीज कई वर्षों तक आत्माओं से सम्पर्क करते रहे, उनकी आशातीत उपलब्धियों के आधार पर एक ऐसी संस्था की स्थापना हुई, जिससे प्रेत–बैठक यानि 'सिचांस' का आयोजन होने लगा और उस सिचांस में यिसेप पीपर जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रेतात्माओं से सम्बन्धित तरह–तरह के क्रिया–कलाप दिखाने लगे।

इसके बाद अमेरिका में सन् १८८८ में सर विलियम वैरेट और एडवर्ड गोर्न आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने साइकिकल रिसर्च सोसाइटी की स्थापना की। हिल्सप और वयआसरे आदि वैज्ञानिक इस दुनिया से परे की आत्माओं और अदृश्य शक्ति में आस्था और विश्वास करने लगे।

१९५० में जब मैंने प्रेत विद्या पर शोध–कार्य शुरू किया तो योग और तंत्र इन दोनों साधनों के समान सिद्धान्तों के आधार पर आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की एक नयी और पूर्ण मौलिक पद्धति की रचना की, प्राण की अपनी एक शक्ति है

और मन की भी अपनी स्वतन्त्र शक्ति है। इन दोनों शक्तियों को यदि शरीर के एक विशेष केन्द्र पर आपस में मिला दिया जाये, तो सर्वथा एक नयी शक्ति पैदा हो जाती है। उन दोनों के संयोग से, जिसे गति-शक्ति, यानि फोर्स कहा जा सकता है। उसमें एक विशेष प्रकार का चुम्बकीय आकर्षण होता है, जो साधक के आसपास के वातावरण में अन्य रूप से विचरण करने वाली अतृप्त आत्माओं को अपनी ओर खींच कर अपार्थिव से पार्थिव जगत् में ले जाती है, इस पद्धति से आकर्षित हुई आत्माएँ कभी-कभी कुछ समय के लिए अपने वासना-बल से अपने पूरे पार्थिव शरीर का भी निर्माण कर प्रकट हो जाया करती हैं, लेकिन ऐसा बहुत ही कम होता है, प्रायः इस पद्धति से आत्माओं को साधक अपने सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही देखता है और उनसे वार्तालाप भी करता है।

इस सन्दर्भ में आपको मैं एक ऐसे दुष्टचरित्र तांत्रिक की लोमहर्षक कथा लिपिबद्ध कर सुनाने जा रहा हूँ, जिसने अपनी किसी तांत्रिक सिद्धि के लिए मातृत्व की कामना से आई हुई एक नवयुवती के साथ बलात्कार ही नहीं किया, बल्कि उसकी बलि देकर उसकी अतृप्त आत्मा को प्रेत लोक में भटकने के लिए छोड़ दिया। तांत्रिक साधना के नाम पर कितना घृणित और जघन्य अपराध था वह, जिसका कोई उदाहरण ही नहीं।

❑ ❑ ❑ ❑

लगभग १५-१६ वर्ष पूर्व मुझे एक अति आवश्यक कार्य से शिवसागर (असम) जाना पड़ा था, मेरे एक मारवाड़ी मित्र थे। नाम था मोहन बाबू।

मोहन बाबू का शिवसागर और जोरहाट में प्लाइउड का बहुत बड़ा कारोबार था। वे बहुत ही धनी और सम्पन्न व्यक्ति थे। मैं उन्हीं की कोठी पर ठहरा हुआ था। एक दिन मैं सायंकाल जब मोहन बाबू के साथ बैठकर चाय पी रहा था, तभी उनके मित्र सुखेन्दु घोषाल वहाँ आ गये। सुखेन्दु घोषाल शिवसागर कोतवाली में इन्स्पेक्टर थे। वे उस समय काफी परेशान और थके-थके लग रहे थे। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि आज सबेरे ब्रह्मपुत्र नदी में बहती हुई एक युवती की लाश मिली थी, बिल्कुल नंगी लाश, उसे देखने से पता चलता था कि काफी दूर से बहती हुई आयी थी। वहाँ के मछुवारों ने लाश देखकर सोचा कि शहर के मनचले बाबू लोग बाजारू औरत लाये होंगे और मौज-मस्ती के बाद मारकर उसे नदी में फेंक दिये होंगे। उन्होंने लाश की सूचना थाने में दी और उसे कोतवाली में लाया गया और जब उसका पोस्टमॉर्टम हुआ तो पता चला कि वह काफी मात्रा में शराब पिये हुए थी, उसके साथ अमानुषिक रूप से संभोग भी किया गया था। उसके बाद गला घोंटकर उसे मार डाला गया था।

घोषाल महाशय से यह सुनकर न जाने क्यों अस्थिर हो उठा मैं?

"क्या वास्तव में वह कोई बाजारू औरत थी?" घोषाल महाशय से पूछा मैंने।

सिगरेट सुलगाते हुए घोषाल महाशय ने जवाब दिया, "नहीं, ऐसा नहीं लगा मुझे! निश्चय ही किसी संभ्रान्त परिवार की बहू–बेटी रही होगी वह!"

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर लाश देखने की प्रबल इच्छा जागृत हो गयी मेरे मन में और उसी समय घोषाल महाशय के साथ मैं कोतवाली पहुँच गया। गेट के बाहर एक सफेद चादर में लिपटी हुई पड़ी थी लाश। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। थोड़ी–थोड़ी दुर्गन्ध भी फैल रही थी वातावरण में। पुलिस के कर्मचारी लाश के अन्तिम संस्कार की तैयारी कर रहे थे।

घोषाल महाशय ने बतलाया कि अभी तक लाश की शिनाख्त नहीं हुई। कोई दावेदार भी नहीं आया, लोग इसे लावारिस ही समझ रहे हैं।

मैंने लाश को देखना चाहा। पुलिस के एक आदमी ने धीरे से लाश पर से कपड़ा हटा दिया। लाश फूल कर विकृत–सी हो गयी थी, मगर युवती के सौन्दर्य पर अभी तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। आँखें थोड़ी–सी खुली थीं। चेहरे पर कातरता और याचना के भाव स्पष्ट थे। ऐसा लगा मानो युवती गहरी नींद में सो रही हो। घोषाल महाशय का अनुमान सही था। युवती बाजारू नहीं थी। पेशेवर भी नहीं, वह किसी भले घर की लग रही थी।

फिर उसके साथ ऐसा घृणित और अमानुषिक व्यवहार क्यों हुआ? किसलिए हुआ? यह सब सोचकर विषण्ण हो गया मेरा मन।

रात में नींद नहीं आयी। बार–बार उसी युवती का चेहरा आँखों के सामने आ जाता था।

तीसरे पहर थोड़ी–सी झपकी लगी और उसी अवस्था में देखा कि वही युवती मेरे सामने खड़ी है। उसका चेहरा घोर विषाद में डूबा हुआ है। वह कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रही है। कुछ कहने के लिए उसके होंठ फड़फड़ा रहे हैं, लेकिन उससे बोला नहीं जा रहा है।

"तुम तो मर चुकी हो, यहाँ कैसे आई?" मैंने धीरे से पूछा।

युवती ने जवाब नहीं दिया। बस, मेरी ओर कातर भाव से पहले की तरह देखती रही। फिर एकाएक पलटी और भागने लगी। पहले तो मैं भौचक रहा, फिर मैं भी उसके पीछे–पीछे दौड़ने लगा। काफी दूर जाने के बाद मुझे ब्रह्मपुत्र के किनारे थोड़ा ऊपर एक मन्दिर दिखलाई दिया। काफी पुराना था वह मन्दिर। उसके चारों तरफ आम, जामुन और पाकड़ के हरे–भरे पेड़ थे। वहाँ पहुँचते ही युवती अचानक गायब हो गयी और उसी के साथ मेरी नींद भी टूट गयी।

भोर का सपना सच होता है, क्या वह सब जो मैंने देखा था वह सच था?

जब मेरे सपने की घटना मोहन बाबू को मालूम हुई तो उन्होंने बतलाया कि चंदा से लगभग १०-१२ मील दूर ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर काली का एक पुराना मन्दिर अवश्य है। मन्दिर में अष्टभुजी काली की सिद्धमूर्ति स्थापित है। बड़ी ही जागृत मूर्ति है वह, सुना है कि पहले काफी दूर-दूर से तांत्रिक लोग सिद्धि के लिए वहाँ आते थे और यह भी सुना है कि वे देवी को प्रसन्न करने और सिद्धि प्राप्त करने के लिए नरबलि भी देते थे।

यह सुनकर अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। उस युवती के साथ निश्चय ही उस काली मन्दिर में कोई भयानक तांत्रिक घटना घटी होगी। सम्भव है किसी अघोरी तांत्रिक ने अपनी किसी तांत्रिक साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए उस युवती का प्रयोग किया हो? काफी देर तक ऐसी तमाम सम्भावनाओं पर सोचता रहा मैं और फिर बिना किसी को कुछ बतलाये काली मन्दिर के लिए चल पड़ा, ऐसा लगा कोई अज्ञात शक्ति खींच रही है उस ओर मुझे।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो दुपहरी ढल चुकी थी, सूर्य की रश्मियाँ अरुणाचल के स्याह पहाड़ों के पीछे से झाँकने लगी थीं। सपने में जैसा देखा था, वैसा ही मिला मुझे। हाँ, नदी के ऊपर था वह प्राचीन मन्दिर। चारों तरफ आम, जामुन, नीम और पाकड़ के दर्जनों हरे-भरे पेड़ थे। एक विचित्र गहरी खामोशी छाई हुई थी वहाँ, चारों ओर साँय-साँय हो रहा था, एक अबूझ-सी अनुभूति हुई मेरे मन में वहाँ के निस्तब्ध वातावरण से।

उस उजाड़ मरघट जैसे बीहड़ और धूसर इलाके में दूर-दूर तक न मुझे कोई गाँव दिखाई पड़ा और न कोई आदमी। बह्मपुत्र की प्रखर धारा वहाँ से बाईं ओर घूम गयी थी जिसके उस पार घोर जंगल का सिलसिला था। सुना था उस जंगल में असम के मदमस्त विशाल हाथी पाये जाते हैं।

मैं अब-अब धीरे-धीरे चलकर मन्दिर के करीब पहुँचा। मन्दिर के चारों ओर ऊँचा चबूतरा था, जिस पर चढ़कर मन्दिर में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़फड़ाते चमगादड़ कानों को छूते हुए निकल गये। थोड़ी-सी भय की अनुभूति हुई। भीतर अन्धेरा था मगर सब कुछ साफ दिख गया मुझे। दीवार से लगकर पँचमुंडी आसन पर काले पत्थर की बनी अष्टभुजी काली की भयानक और विकराल प्रतिमा खड़ी थी। मूर्ति बड़ी ही भव्य और अजीब लगी मुझे।

पँचमुंडी के सामने एक बड़ा-सा हवनकण्ड था, जिसके पास ही देशी शराब की खाली बोतलें आड़ी-तिरछी पड़ी हुईं थी, जिन्हें देखकर ऐसा लगा कि वहाँ तंत्र-मंत्र के नाम पर किसी ने जमकर खूब शराब पी होगी।

अचानक चौंक पड़ा मैं।

शराब की बोतलों के आसपास काँच की लाल चूड़ियों के दर्जनों टुकड़े बिखरे हुए थे, उसके अलावा सिन्दूर लगे कुछ मुरझाये सूखे जवा के फूल भी थे वहाँ।

ऐसे मन्दिरों में शराब की बोतलें और मुरझाये सिन्दूर लगे फूलों का मिलना स्वाभाविक ही था, मगर लाल चूड़ियों के टुकड़े?

साँझ की हल्की-हल्की स्याह कालिमा-सी फैलने लगी थी। अचानक आकाश में बादल घिरने और झूमने लगे थे। ऊधम हवा की लय पर आम, जामुन और पाकड़ के पेड़, फिर देखते-ही-देखते बादलों से काला पड़ गया आसमान, गहन निश्वास जैसी हवा हाहाकार करती झाड़ियों और झुरमुटों को कँपाए दे रही थी।

कुछ ही देर बाद साँझ की स्याह गहन अंधकार में बदल गयी और चारों तरफ एक अजीब-सा सन्नाटा एक अबूझ-सी खिन्नता-भरी निविड़ता छा गयी। सोचने लगा, कैसे वापस जाऊँगा मैं इस घोर रात्रि में और इस भयानक मौसम में? यहाँ कहाँ मिलेगा मुझे त्राण? और तभी झर-झर कर बरसने लगा आसमान। ऊधम हवा का तूफानी विलाप भी गूँज उठा, विवश होकर मन्दिर में ही शरण लेनी पड़ी मुझे। उसी समय एक छाया वहाँ हिलती-डुलती नजर आई। पहले मैंने मन का भ्रम समझा। मगर बाद में छाया धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी और उसी समय आकाश में बिजली चमकी। हजारों मैग्नीशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया सारा विस्तार, उसी तड़ित प्रकाश में मैंने अपने सामने एक सुन्दर नवयुवती को खड़ी देखा, वह मेरी ओर अपलक निहार रही थी।

अरे! यह तो वही युवती है, जिसकी लाश कोतवाली में देखी थी और जिसे देखा था, सपने में भी। सारा शरीर सिहर उठा मेरा। हृदय के भीतर कुछ खाली-सा प्रतीत हुआ, मैं आगे कुछ सोचूँ कि तभी वह बोल पड़ी, "मेरा नाम काकुली है, काकुली सान्याल। आपके यहाँ आने से मेरे मन को और मेरी आत्मा को बहुत शान्ति मिली है।"

समझते देर नहीं लगी मुझे कि वह उसी मृत युवती की आत्मा थी, जिसने शायद अपनी व्यथा-कथा सुनाने के लिए कुछ समय के लिए पूर्व का अपना शरीर ग्रहण कर लिया था। भय और आतंक के कारण पहले तो मुझसे कुछ बोला न गया, लेकिन बाद में सम्भाला मैंने अपने आपको और कहा, "काकुली! मैं जानता हूँ, तुम्हारी ही अदृश्य प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं यहाँ आया हूँ और यह भी जानता हूँ कि तुम भी इस भयानक बरसाती रात में अपनी वह मर्मस्पर्शी घटना सुनाने के लिए यहाँ आयी हो जिसके कारण तुमको अकालग्रस्त होना पड़ा।"

मेरी बात सुनकर काकुली वहीं सर पर हाथ रखकर बैठ गयी और हिचक-हिचक कर रोने लगी।

"काकुली, इस तरह रोने से मन अवश्य हल्का हो जायेगा, मगर मन की व्यथा दूर नहीं होगी, तुम निःसंकोच बतला दो मुझे, क्या हुआ था? कौन-सी घटना घटी थी तुम्हारे साथ, जिसके फलस्वरूप तुमको भटकना पड़ रहा है इस भयानक प्रेत-योनि में?"

काकुली थोड़ी आश्वस्त हुई, फिर धीरे-धीरे रुक-रुक कर उसने मुझे अपनी जो दारुण और वेदना में डूबी हुई कथा सुनाई, उससे मेरा हृदय विचलित हो उठा।

❑ ❑ ❑ ❑

शिवसागर से करीब २०-२२ कि०मी० दूर ब्रह्मपुत्र के उस पार एक गाँव है आमीबाड़ी। उसी गाँव के एक सम्पन्न परिवार में काकुली का विवाह अभयचन्द्र सान्याल के साथ हुआ था। काकुली अति सुन्दर आकर्षक इकहरे बदन की युवती थी। उसके सुगठित शरीर का रंग भी गुलाबी था, ऐसा लगता था, मानो बंगाल की सारी लावण्यता उसमें सिमट आई हो, जो कोई भी उसके सौन्दर्य को देखता, बस अपलक देखता ही रह जाता। जब काकुली का विवाह हुआ था, उसकी आयु १६ साल की थी, विवाह के धीरे-धीरे १२ साल बीत गये, लेकिन उसे कोई सन्तान नहीं हुई, फलस्वरूप काकुली अपने घर में मानसिक रूप से सामान्य नहीं रह पाती थी। हर समय उसके मन को विचित्र अपराध-बोध कचोटता रहता था। उसकी आत्मा की सुख-शान्ति छिन गयी थी। पड़ोस की औरतें उसे देखकर मुँह फेर लिया करती थीं, क्योंकि वह बन्ध्या थी। यह बात नहीं थी कि काकुली ने अपना चेकअप डॉक्टरों से न करवाया हो, सभी डॉक्टरों ने एक स्वर में उसे सन्तानयोग्य बतलाया था, फिर क्या कारण था? क्या कोई दैवी प्रकोप या किसी प्रकार की भूत-प्रेत बाधा थी, जो उसकी गोद नहीं भरने देती थी? काकुली यही सब सोचती रहती थी हर समय।

अभयचन्द्र अपने माता-पिता के इकलौते लड़के थे इसलिए उनकी माँ कल्याणी देवी बराबर उसे मुँहजली, पापिनी, राक्षसी और बाँझ कह-कह कर गाली दिया करती थी। काकुली चुपचाप सिर झुकाये सब सहती रहती थी। माँ न बनने का उसे कितना मानसिक क्लेश था, यह वही जानती थी, लेकिन वह किसी से कुछ कहने का साहस नहीं कर पाती थी, सास-ससुर उसे घर से निकाल देते, तो वह कहाँ जाती? मैके में तो कोई था ही नहीं। बचपन में ही वह अनाथ हो गयी थी। दूर के मामा ने किसी प्रकार पाल-पोस कर उसका विवाह कर दिया था, अब वे भी नहीं रहे इस संसार में। कोई ऐसी जगह भी नहीं थी, जहाँ जाकर वह दो-चार दिन रह सकती, इसलिए काकुली पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह पड़ी रहती थी घर में।

जब डॉक्टरों ने साफ कह दिया कि वह पूर्ण रूप से माँ बनने योग्य है, तो काकुली ने झाड़-फूँक और टोना-टोटका का सहारा लिया। कई जाने-माने ओझा और तांत्रिक को भी दिखाया और जिसने जो कहा वह किया काकुली ने, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ, सभी ने उसे जी भरकर लूटा-खसोटा, गनीमत यह थी कि उसकी इज्जत अभी तक बची थी।

❑ ❑ ❑ ❑

उस दिन आश्विन नवरात्र की अष्टमी थी। हर साल की तरह काकुली ब्रह्मपुत्र के तट पर दुर्गापूजा देखने गयी थी। उस दुर्गापूजा में बहुत दूर-दूर से लोग सम्मिलित

होने के लिए आते थे। वहाँ काफी धूमधाम से दुर्गोत्सव होता था। तीन दिन के लिए ब्रह्मपुत्र के तट पर एक छोटा-सा नगर ही बस जाता था। तरह-तरह के साधु-संन्यासी और तांत्रिक भी वहाँ इकट्ठे होते थे।

काकुली अपनी सहेली बाटुली के साथ मेले में इधर-उधर घूमने के बाद जब नदी के किनारे पहुँची, तो अचानक उसकी नजर जटा-जूटधारी एक युवा तांत्रिक संन्यासी पर पड़ी। संन्यासी का व्यक्तित्व काफी आकर्षक था। काकुली ने बाटुली को बुला कर दिखाया। बाटुली बचपन की सहेली थी। उसका भी विवाह आमीबाड़ी में ही हुआ था। काकुली अपने मन की बात बतला दिया करती थी बाटुली को, बाटुली भी उससे कुछ छिपाती नहीं थी।

संन्यासी का आकर्षक व्यक्तित्व देख कर काकुली और बाटुली दोनों प्रभावित हुए बिना न रहीं। दोनों ने समझ लिया कि वह कोई सिद्ध तांत्रिक संन्यासी है। माँ दुर्गा की साधना के लिए ही वहाँ आया हुआ है। बाटुली ने काकुली को सलाह दी कि यह संन्यासी निश्चय ही बहुत बड़ा तंत्र साधक लगता है। अवश्य तुम्हारी मनोकामना पूरी करेगा।

काकुली संन्यासी के करीब जाकर खड़ी हो गयी। संन्यासी पद्मासन की मुद्रा में आँखें बंद किये बैठा था। कुछ देर बाद उसने अपनी आँखें धीरे-धीरे खोलीं। काकुली ने बड़े भक्ति-भाव से पैर छू कर संन्यासी को प्रणाम किया फिर बाटुली के कहने पर उसने अपना परिचय देते हुए अपनी मनोकामना व्यक्त की। संन्यासी ने आशीर्वाद दिया शुभमस्तु! मनोकामना पूर्ण होगी। काकुली और बाटुली का सिर श्रद्धा से झुक गया।

''लेकिन अमावस्या की रात्रि में संतानोत्पत्ति के लिए एक विशेष प्रकार की तांत्रिक क्रिया करनी होगी और तुम्हें उपस्थित होना होगा''—काकुली की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए संन्यासी ने कहा।

काकुली तुरन्त तैयार हो गयी। ब्रह्मपुत्र के तट पर अष्टभुजी काली मन्दिर में वह संन्यासी ठहरा हुआ था। उसी स्थान पर काली माँ को साक्षी देकर उस विशेष तांत्रिक क्रिया को करने के लिए समय निश्चित किया गया। काकुली को लाल रंग की रेशमी साड़ी, चोली और लाल रंग की चूड़ी पहन कर वहाँ आना था। क्रिया में प्रयुक्त होने वाली तांत्रिक सामग्री की व्यवस्था करने का आश्वासन स्वयं दे दिया था उस संन्यासी ने।

काकुली विभोर हो उठी। माँ दुर्गा की कृपा ही समझी उसने। एक सिद्ध तांत्रिक योगी स्वयं सामग्रियों की व्यवस्था कर अपने हाथों से विशेष तांत्रिक क्रिया सम्पन्न करेगा, इससे अधिक और क्या चाहिए? क्रिया कदापि विफल नहीं हो सकती, निश्चय ही एक साल के भीतर उसकी गोद भर जायेगी। फिर सास-ससुर

और पास-पड़ोस की औरतें उसे बाँझ कह कर ताना नहीं देंगी, पति-पुत्र के साथ फिर वह सुखमय जीवन व्यतीत करेगी। काकुली भविष्य की कल्पना करते-करते विभोर हो उठी।

अगली अमावस्या दीपावली की महानिशा थी। दिनभर बेचैन रही काकुली, रह-रह कर प्रसन्नता से आह्लादित हो उठती थी वह। धीरे-धीरे साँझ की कालिमा फैलने लगी, फिर गहरा काला अंधकार छा गया धरती पर, जल्दी-जल्दी स्नान कर काकुली ने लाल रेशमी साड़ी और चोली पहनी, लाल सिन्दूर से माँग भरी, गोल टीका लगाया और फिर लाल चूड़ियाँ पहनीं हाथों में, कहीं कोई गलती न हो, इसका बराबर ध्यान रखा।

ठीक समय पर बाटुली उसे ले जाने के लिए आ गयी। अमावस की उस काली अंधेरी रात में डरते-सहमते किसी तरह तीन कि०मी० का रास्ता तय करके वे दोनों काली मन्दिर पहुँचीं, वातावरण में गहरी खामोशी छायी हुई थी। ब्रह्मपुत्र की प्रखर धारा की केवल गर्जना ही सुनायी पड़ रही थी वहाँ।

वह युवा तांत्रिक संन्यासी काकुली की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। मन्दिर के भीतर काली की भयानक प्रतिमा के सामने ताँबे का घट रखा हुआ था। उस पर घी का दीपक प्रज्ज्वलित था, हवन-कुण्ड में अग्नि भी प्रज्ज्वलित थी, जिसमें से चन्दन का सुवासित धूम्र निकल-निकल कर मन्दिर के वातावरण को सुगंधित कर रहा था। हवन कुण्ड के समीप देशी शराब की बोतलें और थाली में जवा के फूल, अक्षत और पूजन की अन्य वस्तुएँ भी रखी हुई थीं। संन्यासी ने पूर्ण व्यवस्था कर रखी थी, अपनी विशेष तांत्रिक क्रिया की, जिसे देख कर काकुली का हृदय और अधिक श्रद्धा-भक्ति से भर गया। उसने झुक कर संन्यासी को प्रणाम किया और उसके संकेत पर वहाँ एक आसन पर बैठ गयी वह। बाटुली बाहर ही खड़ी रह गयी थी, उसे भीतर आने का आदेश नहीं मिला था।

संन्यासी ने जलती हुई दृष्टि से एक बार काकुली के सर्वांग का निरीक्षण किया और फिर अपनी झोली से दो नर-कपाल निकाले और बोतल खोल कर उन दोनों में शराब उड़ेली। नर-कपालों को देख कर एक बार काकुली सिहर उठी, फिर उसने संन्यासी को देखा, वह उस समय ध्यानमग्न था। काकुली को लगा कि उस सिद्ध तांत्रिक योगी के मस्तक से ज्योति निकल कर मन्दिर में फैल रही है और उसके शरीर का गोरा अंग दीपक की रोशनी से अधिक प्रकाशमय हो उठा है। संन्यासी ध्यानमग्न होकर कोई मंत्र बुदबुदा रहा था, अचानक उसके शरीर में कम्पन हुआ और उसने आँखें खोलीं। किसी रहस्यमय तांत्रिक मंत्र का उच्चारण करते हुए संन्यासी ने शराब में कपूर डाल कर उसे जलाया और फिर संकेत से उसने काकुली से हाथ फैलाने को कहा, काकुली ने संकोच से हाथ फैलाया, गोरा, कोमल हाथ।

युवा तांत्रिक संन्यासी की तीक्ष्ण दृष्टि काकुली के सुडौल और पुष्ट स्तनों पर दौड़ गयी। फिर उसने मदिरा-भरा एक नर-कपाल उठाया और उसे काकुली की ओर बढ़ाते हुए उसे पी जाने के लिए संकेत किया।

काकुली हिचकिचाई और मुँह फेर लिया दूसरी ओर। उसे आशा नहीं थी कि उसके सामने ऐसी भी कोई समस्या उठ खड़ी होगी। उसने संकोच से संन्यासी की ओर देखा। संन्यासी की आँखें जैसे जल रही थीं उस समय। फिर उस रक्तचक्षु की उपेक्षा करने का साहस गँवा बैठी वह, डरते-डरते नर-कपाल को होंठों से लगाया और धीरे-धीरे पी गयी पूरी मदिरा, सारा शरीर सनसना उठा उसका और उसी के साथ सारे रोमों में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना भी मिल गयी, लेकिन कुछ ही देर बाद उसकी देह शिथिल होने लगी।

उस रहस्यमय तांत्रिक ने हवन करना शुरू कर दिया था और थोड़ी देर बाद जब हवन समाप्त हुआ, तो उसने हवन-कुण्ड से थोड़ी भस्म निकाल कर अपनी सारी देह में रगड़ी और दूसरे नर-कपाल की सारी की सारी मदिरा एक ही साँस में पी गया गटगट कर, उसके बाद फिर उसने दोनों नर-कपालों को मदिरा से भरा। एक तो स्वयं फिर पी गया और दूसरे नर-कपाल की मदिरा उसने काकुली की ओर बढ़ा दी। असहाय दृष्टि से कातर काकुली ने उसकी ओर देखा। उसे घबराई देख कर संन्यासी बोला, ''संकोच मत कर। मैं अब तेरे शरीर में माँ कामाख्या के पीठासन का निर्माण करूँगा। शीघ्र तू शरीर के सभी वस्त्र उतार कर पूर्ण नग्न हो जा।''

काकुली यह सुन कर स्तम्भित हो गयी। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि एक पर-पुरुष के सामने निर्वसना भी होना पड़ेगा। उसका सुन्दर और गोरा चेहरा संकोच और लज्जा से लाल हो उठा। पाषाणवत् बैठी रही वह। संन्यासी गरजा, ''तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रही है? तेरा इतना साहस? शीघ्र कर।''

काकुली समझ गयी कि संन्यासी की आज्ञा अथवा आदेश का उल्लंघन करना अब असम्भव है, लेकिन उस समय उसके भीतर जरा-सी भी हिलने-डुलने की शक्ति नहीं थी। शराब का नशा उस पर धीरे-धीरे छाने लगा था।

संन्यासी ने स्वयं थोड़ा आगे बढ़ कर नर-कपाल को उठा काकुली को अपने हाथों से पिलाया और फिर धीरे-धीरे उसके शरीर से सभी वस्त्रों को उतार कर उसे पूर्ण नग्न कर दिया। काकुली विरोध न कर सकी। दूसरे ही क्षण संन्यासी की गोद में लुढ़क गयी वह। उस समय यौवन से भरपूर उसके गुलाबी शरीर का अंग-प्रत्यंग दीपक के हल्के प्रकाश में थिरक रहा था। सहसा काकुली सिहर उठी, उसे विचित्र अनुभूति हुई। बार-बार रोमांचित हो उठती थी वह। उत्तेजना बढ़ती ही जा रही थी, फिर भी उसने आपत्ति की। लेकिन संन्यासी उन्मत्त हो कर वासना की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उसने काकुली को पूरी तरह से दबोच लिया। काकुली अवश हो गयी और उसने आँखें मूँद लीं।

तांत्रिक साधना के नाम पर वासना की वह तांडव लीला पूरे चार घंटे तक होती रही और अंत में उस दुष्चरित्र तांत्रिक संन्यासी की वासना की अग्नि में एक भोली-भाली रमणी का जीवन उत्सर्ग हो गया, जिसकी एकमात्र साक्षी थी बाटुली जो अंतिम दृश्य देख कर एकबारगी चीख उठी थी और जिसे सुनकर जंगल में समवेत स्वर में रोने लगे थे सियार भी।

उस काम-लीला का अंतिम दृश्य बड़ा ही भयानक और वीभत्स था। बाटुली ने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा सब कुछ वहाँ देखने को मिलेगा। चीख कर बेहोश हो गयी वह।

''फिर क्या हुआ ?'' हौले से पूछा मैंने। एक लम्बी साँस लेकर बुझे स्वर में बोली काकुली, ''होगा क्या ? जो होना था, वही हुआ, मेरी लाश उठा कर नदी में फेंक दी उस छली संन्यासी ने और बाटुली को अपने साथ ले गया।''

''क्या बाटुली अभी भी उस संन्यासी के साथ है ?''

''हाँ, उसे अपनी भैरवी बना कर रख लिया है अपने पास।''

''क्या तुम यह बतला सकती हो कि दोनों इस समय कहाँ होंगे ?''

''कामाख्या पीठ में ... दोनों कामाख्या में रह रहे हैं।''

''अब तुम क्या चाहती हो'' थोड़ा रुक कर पूछा मैंने काकुली से।

''अपनी मुक्ति ! प्रेत योनि से मुक्ति। बहुत कष्ट है मुझे, शांति जरा-सी भी नहीं है, इस पाप योनि में।'' शायद काकुली काफी कुछ और बतलाती कि तभी श्यामल आकाश का वक्ष जलाती हुई बिजली चमकी और वातावरण को मथती हुई विद्युत वाणी गरज कर शांत हो गयी और उसी के तुमुल रव में डूब गये शब्द काकुली के। सहसा बरसाती हवा का एक झोंका आया और ठंडी हवा मन्दिर के भीतर फैल गयी। काकुली, मैंने पुकारा। मगर काकुली नहीं थी वहाँ अब। उसका क्षणिक पार्थिव अस्तित्व उसी हवा के तेज झोंके में विलीन हो चुका था। भय-विस्मय के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन, फिर एक पल भी ठहरा न गया मुझसे उस मन्दिर में। दिशाहीन, लक्ष्यहीन काले अंधकार के बीच दौड़ता हुआ भागा मैं वहाँ से। थोड़ी देर बाद लगा कि अब दौड़ा न जाएगा। यहीं इस अनजाने प्रांत में ही हो जाएगी मेरी जल-समाधि और अंत में हुआ भी यही, एक जगह अचानक ठोकर लगी और गिर पड़ा मैं मुँह के बल।

जब मैंने घोषाल महाशय को काकुली की आत्मा के मिलने और काकुली की रहस्यमय मृत्यु की दारुण कथा सुनायी, तो उन्हें सहसा विश्वास नहीं हुआ, मगर जब पुलिस ने पता लगाया और गहरी जाँच-पड़ताल हुई तो सारी सत्यता और सारी वास्तविकता सामने आ गयी।

काकुली के अचानक गायब हो जाने पर किसी ने उसकी खोज-खबर नहीं ली। उसके सास-ससुर को एक प्रकार से प्रसन्नता ही हुई। उन लोगों ने सोचा चलो बला टली। बाँझ बहू से पिण्ड छूटा, वे काकुली के गायब होने के ४-५ दिन बाद पास के गाँव में जा कर अभयचन्द्र के लिए बहू भी देख आये थे। इतना ही नहीं, विवाह की तिथि निश्चित कर लिया था उन्होंने। बाटुली के सम्बन्ध में पता चला कि ससुराल में सिर्फ सास थी, हर समय खाट पर पड़ी सिर्फ सोती ही रहती थी। बाटुली का पति जिसका नाम कुण्डू था, कलकत्ता में किसी जूट मिल में नौकरी करता था। साल में एक बार गाँव आता था वह। पूरे तीन महीने के अथक परिश्रम के बाद घोषाल महाशय को सफलता मिली इस मर्डर केस में। कामाख्या पीठ के आश्रम में गुप्त रूप से रह रहा था वह तांत्रिक संन्यासी। उसने बाटुली को भी दीक्षा देकर तांत्रिक भैरवी बना दिया था। जब पुलिस उस आश्रम में पहुँची तो वह भी वहाँ मिल गयी पुलिस को। मुकदमे के समय बाटुली सरकारी गवाह बन गयी और अंत में फैसला होने पर उसे तो मुक्त कर दिया गया; लेकिन तांत्रिक संन्यासी महाशय को आजीवन कारावास का दण्ड मिला।

●

५

मिस्र की तांत्रिक भैरवी

जब मैं काहिरा एयरपोर्ट पर प्लेन से उतरा उस समय शाम के सात बजे थे। बाहर निकल कर टैक्सी ली और सलीम के बताये हुए पते पर होटल हकसार में पहुँचा तो वह अपने कमरे में पड़ा हुआ था। कमरे में जल रहे हल्के गुलाबी रंग के बल्ब की रोशनी में उसका जर्द चेहरा देख कर मैं एकदम स्तब्ध रह गया। उसकी आँखें भीतर की ओर धँसी हुई थीं और गालों की हड्डियाँ उभर आयी थीं।

सलीम मेरा दोस्त था। हाईस्कूल से लेकर एम०ए० तक हम दोनों एक साथ पढ़े थे। एम०ए० में दोनों ने एक ही विषय लिया था—पुरातत्व और संस्कृति।

सलीम रिसर्च करना चाहता था। उसे काहिरा विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति मिल गयी थी। उसे समूचे संसार में मिस्र के इतिहास में सबसे अधिक रुचि थी। वह प्रायः प्राचीन मिस्रियों की आध्यात्मिक शक्ति और उनके तांत्रिक विचारों पर चिंतन-मनन करता था। कभी इस विषय पर उसकी बहस छिड़ जाती थी तो मैं भी मिस्र के फराउनो के अजीबोगरीब कारनामों और कठोर शासन-पद्धतियों पर विचार करता हुआ कल्पना के सहारे हजारों वर्ष पूर्व अतीत के संसार में चला जाता। मिस्रियों की आध्यत्मिक शक्ति और तांत्रिक चमत्कारों का रहस्य, यही विषय चुना सलीम ने, रिसर्च के लिए रवाना हो गया। प्लेन की सीढ़ियाँ चढ़ते समय उसने वादा किया था कि वह हर महीने दो चिट्ठियाँ अवश्य लिखा करेगा, मगर तीन साल के लम्बे अरसे में सिर्फ एक चिट्ठी आयी जिसमें उसने जल्दी से जल्दी काहिरा पहुँचने का आग्रह किया था। चिट्ठी के साथ ही उसने प्लेन से आने के लिए खर्च भी भेज दिया था।

मैं उन दिनों भारतीय पुरातत्व विभाग में एक उच्च पद पर कार्यरत था। सलीम की चिट्ठी पाते ही मैंने छुट्टी ली और तुरन्त प्लेन से काहिरा के लिए रवाना हो गया। उसके इस आकस्मिक बुलावे के कारण मन में कौतूहल अवश्य था किन्तु यह तो कल्पना भी नहीं की थी कि वह इस स्थिति में होगा। सलीम की आँखें मुँदी हुई थीं। मैंने आहिस्ते से उसके पास बैठ कर बुलाया, "सलीम .... सलीम।"

मेरी आवाज सुनकर सलीम की बंद आँखें धीरे-धीरे खुलीं और मेरी ओर घूम गयीं।

मैं एकदम घबरा गया। सलीम की आँखें कतई सहज नहीं थीं। असीम गहराई और शून्यता के बावजूद उनमें एक विचित्र प्रकार की चमक थी। उनकी आँखों से

आँखें मिलते ही मैं सहसा सिहर उठा। सलीम की चमकती आँखों में विचित्र वेशभूषा और शक्ल वाली एक औरत की परछाईं दिखायी दे रही थी।

किस औरत की थी वह परछाईं? समझ न सका मैं।

जब मैंने सलीम से पूछा कि तुम्हारी हालत ऐसी कैसे हो गयी तो उसने कराहते हुए कहा कि, ''अपने बारे में यही सब बतलाने के लिए तो तुमको हिन्दुस्तान से इतनी दूर बुलाया है यार! जरा सब्र करो ......।''

सलीम आगे कुछ और बोलता तभी कमरे में अधेड़ उम्र का पतला-दुबला मरियल-सा एक आदमी आ गया। लगता था वह जैसे क्षय रोग से ग्रस्त हो। उसके पीले आभाहीन चेहरे से मनहूसियत बरस रही थी। फीकी नीरस आँखें तेजी से झपक रहीं थीं और बदरंग बालों पर बेशुमार गर्द जमी हुई थी। उसने सलीम से अरबी भाषा में कुछ बातें कीं फिर बिना रुके तुरन्त कमरे के बाहर निकल गया।

बाद में मालूम हुआ कि उसका नाम नूत था। वह मिस्र के एक बहुत बड़े तांत्रिक देवता का पुजारी था।

नूत के चले जाने के बाद सलीम बिस्तर से उठ कर और धीरे-धीरे चलता हुआ कमरे के कोने में रखी एक बड़ी-सी आलमारी के करीब पहुँचा। आहिस्ते से आलमारी खोल कर उसने एक मूर्ति निकाली। लगभग एक फुट लम्बी वह मूर्ति स्फटिक जैसे किसी चमकीले पत्थर की थी। किसी निर्वसन स्त्री की थी वह मूर्ति। उसके कंधों के करीब दो फैले हुए पंख थे।

उस मूर्ति को मैंने करीब से देखा तो चौंक पड़ा, कुछ समय पहले बिल्कुल वही शक्ल मैंने सलीम की चमकती हुई आँखों में देखी थी।

सलीम ने उस मूर्ति को मेरे हाथों में देते हुए कहा, ''पिछले तीन सालों से मेरी जिन्दगी इसी 'बुत' के साथ जुड़ी हुई है, शर्माजी। पता नहीं कब इससे मेरा पीछा छूटेगा?''

इतना कह कर उसने एक लम्बी साँस ली। थोड़ा रुक कर फिर बोला, ''काश! मैं यहाँ न आया होता और मिस्री तंत्र-मंत्र के चमत्कारों और उनसे सम्बन्धित आध्यात्मिक देवी-देवताओं के चक्कर में न पड़ा होता तो आज मेरी यह दुर्दशा न होती। जिस बुत को तुम दख रहे हो यह करीब एक हजार साल पुरानी अस्सार नामक तांत्रिक देवी का बुत है। मगर उस तांत्रिक देवी की आत्मा से इसका सम्बन्ध पिछले एक हजार साल से जुड़ा हुआ है और इस बुत के जरिये वह मुझे एकदम अपने चंगुल में फँसाये हुए है। मैं अगर इस रहस्य को जानता होता शर्माजी तो कभी भी इस बुत को न खरीदता। बाद में मैंने इस बुत को अपने से अलग करने की लाख कोशिश की मगर बराबर नाकामयाब रहा।''

दूसरे दिन सबेरे सलीम मुझे एक मकान में ले गया जिसे उसने काफी लम्बे अरसे से किराये पर ले रखा था। वह मकान शहर के बाहर बिल्कुल सुनसान जगह

पर था। एक ओर खजूर का जंगल था और पीछे की ओर काफी दूर तक फैली हुई घाटी थी।

जब सलीम के साथ वहाँ पहुँचा तो नूत पहले ही से मौजूद था। बातों के सिलसिले में सलीम ने बतलाया, ''नूत बड़े काम का आदमी है और अपनी खोज के सिलसिले में उससे काफी मदद मिली है। उसके जरिये मुझे कुछ ऐसी प्राचीन दुर्लभ चीजें भी मिली हैं जिनसे मिस्र की हजारों साल पहले की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। उसी के कहने पर मैंने अस्सार देवी के बुत को खरीदा था।''

मकान की ऊपरी मंजिल पर पहुँच कर सलीम ने एक लम्बा-चौड़ा कमरा खोला। उस कमरे के दरवाजे पर भारी-भारी सुनहरे रूपहले कीमती पर्दे लटक रहे थे और अन्दर बड़ी अजीब-सी भीनी-भीनी खुशबू फैली थी। भीतर घुसते ही मेरी दृष्टि कमरे के बीच में रखे दो ताबूतों पर पड़ी। सलीम ने एक ताबूत का ढक्कन उठाया। मैं एकदम स्तब्ध रह गया। उस ताबूत में एक सुन्दर युवक की लाश पड़ी हुई थी। मसाला लगी वह लाश बिल्कुल जीवित-सी लगती थी। उसके सुन्दर तेज-पूर्ण चेहरे को मौत का भयानक प्रभाव भी बिगाड़ नहीं सका था मगर वहाँ एक क्षीण-सी उदासी अवश्य झलक रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से गजब का दर्द और विवशता टपक रही थी। सलीम ने बतलाया कि यह लाश एक हजार वर्ष पुरानी है। इसके बाद उसने दूसरे ताबूत का ढक्कन उठाया। उस ताबूत में एक ऐसी युवती चिरनिद्रा में निमग्न थी जिसे सौन्दर्य और यौवन की साकार प्रतिमा कहना ही उचित होगा। उसके रूप की चमक से मेरी आँखें झुक गयीं। वह भी एक हजार वर्ष पुरानी लाश थी मगर उस अपरूपा युवती का चेहरा बिल्कुल अजीब-सा लगता था। उसका चेहरा अभी भी दमक रहा था। ऐसा लगता था मानो वह गहरी नींद से कभी भी जाग उठेगी और उसकी बड़ी-बड़ी बंद आँखें खुल जायेंगी। वह प्राचीन मिस्री वस्त्र रेशमी और मखमली पोशाक पहने थी। उसके सिर पर सोने का मुकुट था जिसमें बाज पक्षी की मूर्ति बनी थी। मुकुट के नीचे काजल जैसे काले चमकीले केशों की लटें दमकते-चमकते मुखड़े के चारों ओर घेरा बनाती हुई उसके पुष्ट उन्नत उरोंजों पर इस प्रकार पड़ी थीं जैसे पूनम के चाँद के इर्द-गिर्द काली घटा। वह परी बिस्तर पर बड़ी शान से पड़ी हुई थी।

''जानते हो यह किसकी ममी है ?'' सलीम ने मेरी ओर देखते हुए पूछा।

मैंने सिर हिला कर कहा, ''नहीं, किसकी है ?''

''यह अस्सार की ममी है और जिस युवक की ममी तुम पहले देख चुके हो, वह अस्सार के प्रेमी की लाश है।'' पल भर रुक कर वह सहमी-सहमी दृष्टि से अस्सार की ममी की ओर देखता रहा फिर बोला, ''इन दोनों की जिन्दगी की पूरी कहानी भी मुझे एक पेड़ की छाल पर लिखी हुई मिल गयी है जिसे मैंने मृत

भाषाओं के एक विद्वान् के पास भेज दिया है। आशा है उससे भी प्राचीन मिस्त्री सभ्यता और संस्कृति पर काफी ठोस रोशनी पड़ेगी।''

साँझ की स्याह चादर धीरे-धीरे फैलने लगी थी। मैं काफी थक गया था और अब थोड़ा आराम करने की सख्त जरूरत महसूस कर रहा था। जब चलने को उद्यत हुआ तो सलीम ने मेरा हाथ थाम कर अनुरोध-भरे स्वर में कहा, ''आज रात तुमको मेरे साथ यहीं रहना होगा।''

''क्यों ? होटल वापस नहीं चलोगे ?''

''नहीं, मैं हर महीने की एक रात इसी मकान में गुजारता हूँ। क्यों और किसलिए वह तुमको आज खुद ही मालूम हो जाएगा।''

काली स्याह रात गहरी हो गयी थी। जिस कमरे में ताबूत रखे थे उसी के बगल वाले कमरे में अकेले बिस्तर पर पड़ा मैं करवटें बदल रहा था। सलीम ने अपने सोने की व्यवस्था ताबूत वाले कमरे में ही की थी।

एकाएक किसी बाजे की एक विचित्र उदास-सी आवाज सुनायी पड़ी। मैं चौंक पड़ा। उस बाजे में कुछ ऐसा मनहूस शैतानी असर था कि मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। मुझे ऐसा लगा मानो मैं मौत की घाटी में पहुँच गया होऊँ। मैं उठ कर बैठ गया। उस बाजे के स्वर में निश्चय ही सम्मोहन भरा था, जिसका असर धीरे-धीरे मेरे मन-मस्तिष्क पर पड़ रहा था। मैं उसी के वशीभूत हो कर अँधेरे में ताबूत वाले कमरे की ओर चल पड़ा। मगर वहाँ का दृश्य देख कर मैं सहसा स्तब्ध रह गया। भय और विस्मय के मिले-जुले भाव से मैं एकदम से काँपने लगा और सारे शरीर में रोमांच हो आया।

सलीम पीठ के बल पड़ा हुआ था। शायद वह बेहोश था। उसकी गर्दन के पास से ख़ून की एक पतली-सी धारा निकल कर बह रही थी। अस्सार की लाश उस पर झुकी हुई थी। वह कभी बेतहाशा सलीम को चूमने लगती तो कभी उसकी गर्दन से बह रहे खून को चाटने लगती। उसके हाथ में पत्थर का एक प्याला और पत्थर की ही एक छुरी थी जिस पर ताजे खून का कतरा लगा हुआ था।

मैं उस भयानक दृश्य को अधिक देर तक नहीं देख सका, अतः दूसरे ही क्षण भाग कर अपने कमरे में आया और बिस्तर में दुबक गया। मेरी साँसें फूल रही थीं। उस समय मैं बेहद डर गया था।

दूसरे दिन सबेरे जब सलीम की हुलिया देखा तो मैं सहम गया। उसकी आँखें हद से ज्यादा धँसी हुई थीं और चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था। वह काफी कमजोर दिख रहा था। लगता था जैसे उसके शरीर में एक बूँद भी खून बाकी न हो।

सामना होते ही वह मुझसे लिपट गया और फूट-फूट कर रोने लगा। उसी हालत में उसने मुझे बतलाया, ''हर महीने की कल जैसी रात में अस्सार की

भटकती हुई आत्मा रूहानी दुनिया से आने वाले बाजे की मनहूस आवाज के सहारे अपनी लाश में प्रवेश करके जीवित हो उठती है। पहले तो वह अपने प्रेमी के साथ सहवास करती है उसके बाद मेरे गले की रग काट कर खून पीती है।''

फिर हकलाते हुए सलीम ने कहा, '' पिछले तीन साल से बराबर यही हो रहा है। मेरी जिन्दगी खतरे में है। कभी किसी भी क्षण मेरी मौत हो सकती है। मैं लाचार और विवश हूँ। मुझे तुम सहारा दो, मेरी मदद करो, इसलिए मैंने तुमको यहाँ बुलाया है। ''

''मगर, सलीम! भला मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ?''

''ऐसा मत कहो दोस्त!'' सलीम गिड़गिड़ा कर बोला, ''तुम तिब्बत से कई तांत्रिक विद्याएँ हासिल करके आये हो। तुम उनके जरिये इस जालिम से मुझे छुटकारा दिला सकते हो।''

बात सच थी। सलीम की जिन्दगी खतरे में थी। वह लगातार मौत से संघर्ष कर रहा था। वह एक हजार वर्ष पुरानी ममी की अतृप्त वासना का शिकार बन चुका था।

भारतीय तंत्र की तरह मिस्री तंत्र भी काफी प्राचीन है। उसके भी कई साधना-मार्ग हैं। उसकी कुछ साधना-पद्धतियाँ तो इतनी तामसिक और भयंकर हैं कि लोग सुन कर ही थर्रा उठते हैं। विभिन्न देशों की तांत्रिक साधना का तुलनात्मक अध्ययन करते समय मुझे मिस्री तंत्र-साहित्य को भी पढ़ने का मौका मिला था। अरबी तंत्र-साधना का एक सम्प्रदाय है 'सीजश'। सीजश हमारे यहाँ के अघोर सम्प्रदाय अथवा कापालिक सम्प्रदाय से मिलता-जुलता है। उस सम्प्रदाय का सबसे बड़ा पूज्य देवता टूयाज है जिसे भयंकर तांत्रिक देवता माना जाता है। टूयाज को वहाँ वही स्थान प्राप्त है जो हमारे यहाँ कालभैरव अथवा कपालभैरव को प्राप्त है। मिस्र में एक हजार वर्ष पूर्व टूयाज को सर्वोत्तम सम्मानित स्थान प्राप्त था। मांसमदिरा, पशुबलि, नरबलि आदि से पूजा जाने वाला टूयाज प्रकृति का धनी समझा जाता था। अच्छे-भले घर की जवान लड़कियाँ टूयाज के साथ विवाह करके एक प्रकार से देवदासी अथवा तांत्रिक भैरवी का जीवन बितातीं थीं। फिर उनका काम होता था टूयाज की सेवा और तांत्रिक साधना करना।

मैंने अनुमान लगाया कि हो सकता है कि अस्सार भी टूयाज देवता की तांत्रिक भैरवी रही हो। मैंने इस दिशा में खोज की तो अनुमान सत्य ही निकला, फिर नूत को पकड़ा। वह टूयाज देवता के ही मन्दिर का पुजारी निकला। मन्दिर शहर के बाहर काफी दूर घोर जंगली और पहाड़ी इलाके में था। काफी पुराना वह मन्दिर शिल्प-कला का अद्भुत नमूना था। नूत मुझे वहाँ ले गया।

मन्दिर के विशाल प्रांगण में टूयाज की करीब १२ फुट ऊँची दानवाकृति मूर्ति स्थापित थी। मन्दिर का अपना संग्रहालय भी था जिसमें वास्तुकला की तमाम अद्भुत

और प्राचीन वस्तुओं के अतिरिक्त पाँच सौ वर्ष से लेकर दो-दो, तीन-तीन हजार वर्ष पुरानी ममी भी सुरक्षित रखी हुई थी। मुख्य पुजारी होने के कारण नूत का पूरा अधिकार था मगर उसने अपने अधिकार का नाजायज फायदा उठा कर सलीम के हाथ भारी दामों में अस्सार और उसके प्रेमी की ममी के साथ उस पत्थर के बुत को भी बेच दिया था। सलीम ने बतलाया कि वह जानता होता कि दोनों ममी और बुत अभिशप्त हैं तो वह कभी भी उन्हें न खरीदता।

मैं उसी हफ्ते मृत भाषाशास्त्री से मिला। वह दमिश्क में रहता था। जब मैंने उससे अस्सार की जीवन-कथा लेकर पढ़ी तो एकदम स्तब्ध रह गया। मन में जो थोड़ा-बहुत भ्रम था वह भी दूर हो गया। मेरी खोज सफल रही।

एक हजार वर्ष पहले फराउनों में 'हत' नाम का एक महान् राजा हुआ था। वह धर्म का कट्टर अनुयायी था। अस्सार उसी हत की इकलौती लड़की थी। अपने पिता की तरह वह भी टूयाज की भक्त और कट्टर धार्मिक थी। अस्सार का सौन्दर्य और यौवन पूरे मिस्र में चर्चा का विषय बना हुआ था। कितने ही राजकुमार उससे शादी करने के लिए आतुर थे। अस्सार के रूप-यौवन ने न जाने कितने लोगों को पागल बना रखा था।

लेकिन राजकुमारी अस्सार का ढंग कुछ और ही था। वह पुरुषों को घृणा से देखती थी। अपने प्रेमियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत निर्दयतापूर्ण था। उसका अधिकांश समय पूजा-पाठ में ही बीतता था। धर्म में अटूट आस्था होने के कारण अस्सार सोलह वर्ष की ही कमनीय उम्र में देवता टूयाज के मन्दिर की देवदासी बन गयी। उसने धार्मिक रीति से कसम खाकर घोषणा कर दी कि वह अब धर्म और कानून के अनुसार किसी पुरुष की नहीं हो सकती।

कुछ ही दिनों में अस्सार ने इतनी धार्मिक उन्नति कर ली कि सारे मिस्र में उसकी महानता की धाक जम गयी। उसकी वाणी में इतना प्रभाव पैदा हो गया कि वह जो भी कुछ मुँह से कह देती, पूरा हो जाता। धीरे-धीरे अस्सार को एक देवी का स्थान प्राप्त हो गया। इसके बाद उसने अपने देश की तांत्रिक पद्धति के अनुसार देवता टूयाज के प्रतिनिधि जिसे उनका अवतार समझा जाता था, के साथ शारीरिक सम्पर्क स्थापित कर पूर्ण रूप से तांत्रिक भैरवी का पद प्राप्त कर लिया।

अब अस्सार देवी से तांत्रिक भैरवी बन गयी। चार वर्ष तक वह कठिन साधनामय जीवन व्यतीत करती रही। इस अवधि में भयंकर से भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान पूरे किये उसने लेकिन उन्हीं दिनों देवता टूयाज ने उसकी एक कड़ी परीक्षा ली और एक ऐसी घटना घटी कि अस्सार के कदम डगमगा गये। अपने आध्यात्मिक मार्ग से विचलित हो गयी वह।

टूयाज का प्रतिनिधि बन कर मन्दिर में एक युवक आया। उस युवक का नाम था नार्मर, उसका नख-शिख इतना तीखा और मनमोहक था कि लगता मानो किसी यूनानी देवता की मूर्ति को तराश कर इन्सान की शक्ल दे दी गयी हो। नार्मर असाधारण सुन्दर और आकर्षक युवक था। उसकी भुजाएँ बलिष्ठ और छाती चौड़ी थी। जब वह मन्दिर में देवता टूयाज का भजन गाता तो उसके मीठे मधुर स्वर और उसकी तन्मयता से अस्सार एकदम उन्मत्त हो जाती। उसके दिल की धड़कन बढ़ जाती।

धीरे-धीरे अस्सार को अनुभव होने लगा कि वह अपना पवित्र हृदय नार्मर को भेंट कर चुकी है। वह अब प्राय: प्रेम का रंगीन सपना देखने लगी थी। उसके मन में नार्मर को पाने के लिए पाप की भावनाएँ पैदा होने लगीं। वह नार्मर की बलिष्ठ भुजाओं के बीच कैद होने के लिए पागल हो उठी।

उसने नार्मर से बचने का काफी प्रयास किया मगर उसके मनोहर व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि उसके सामने अस्सार जैसी कठोर और दृढ़ स्वभाव की युवती को झुकना पड़ा। अंतत: उसने एक रात अपनी धार्मिक कसम और आध्यात्मिक नियमों को सहसा तोड़ कर अपने आपको नार्मर के आगे समर्पण कर दिया। अस्सार को पहली बार पुरुषत्व की कीमत मालूम पड़ी और नारी-जीवन में उसने पहली बार उसका महत्व समझा।

लेकिन अस्सार का अनुचित सम्बन्ध अधिक दिनों तक नहीं रह सका। नार्मर उसे छोड़ कर चला गया। अस्सार को अपनी इस असफलता पर बहुत दु:ख हुआ। वह फिर टूयाज के मन्दिर में पहुँची और फिर से देवदासी बन कर तांत्रिक भैरवी का पद प्राप्त करने का प्रयास करने लगी पर अब वह तांत्रिक भैरवी नहीं बन सकती थी। देवता टूयाज और उनके नियमों के अनुसार राजकुमारी अस्सार के लिए अब यह आवश्यक था कि वह अपने प्रेमी का रक्तपान करे तभी वह फिर से तांत्रिक भैरवी का पद प्राप्त कर सकती थी।

अत: एक दिन अस्सार अपने प्रेमी को फुसला कर मन्दिर में ले आयी और किसी बहाने से उसके गले की रग काट कर उसने उसका खून पी लिया।

इस कुर्बानी से अस्सार को तांत्रिक भैरवी का पद तो फिर से प्राप्त हो गया मगर नार्मर की मौत ने उसका दिल तोड़ दिया। उसे पुरुषत्व और उसकी सुखद अनुभूति का चस्का लग चुका था। वह इस सुख के लिए बराबर बेचैन रहने लगी। रात होते ही उसका तन-मन पुरुष-संसर्ग के लिए पागल हो उठता। आखिर उसने यह नीति अपनायी कि प्रति वर्ष एक नया प्रेमी खोजती और कुछ समय उसके साथ भोग-विलास कर अपने तन-मन की प्यास बुझाने के बाद नार्मर की तरह उसका भी खून पी कर वह पुन: देवता टूयाज की कृपा और प्रसन्नता प्राप्त कर लेती।

इन कुर्बानियों से देवता टूयाज उससे बहुत प्रसन्न हो गये फलस्वरूप राजकुमारी अस्सार की आध्यात्मिक शक्ति इतनी बढ़ गयी कि उसकी भी पूजा होने लगी। उसने टूयाज को वचन दिया कि वह हमेशा ऐसी ही कुर्बानी करती रहेगी। अपने जीवनकाल में वह अपनी इस प्रतिज्ञा को नियमित रूप से निभाती रही। चालीस वर्ष की आयु तक अस्सार ने कितने युवकों का दैहिक सुख प्राप्त करने के बाद उनके गले की नस काट कर खून पी कर उनकी कुर्बानी की, इसका पूरा ब्यौरा उस दस्तावेज में दिया गया था। अंत में लिखा था कि मरने के बाद भी अस्सार का रक्तपान और युवकों की कुर्बानी बराबर चलती रहेगी। आध्यात्मिक शक्ति के बल पर उसकी आत्मा हर महीने अपनी मृत काया में प्रवेश करके जीवित हो उठेगी और देवता टूयाज को प्रसन्न रखने के लिए अपने प्रेमी का रक्तदान करेगी और अपने वासना की प्यास बुझायेगी।

मिस्र के धार्मिक नियम के अनुसार अस्सार और उसके प्रथम प्रेमी नार्मर के लाश की ममी बना कर देवता टूयाज के मन्दिर में रख दिया गया था। दस्तावेज के अनुसार हर महीने पहले चाँद के रोज अस्सार की प्यासी आत्मा अपनी ममी में प्रवेश कर जाती और उसी के साथ नार्मर भी जीवित हो उठता। दोनों सहवास करते। उसके बाद अपनी आध्यात्मिक शक्ति बनाये रखने के लिए अस्सार किसी युवक का खून पीने के लिए निकल पड़ती।

यह बात किसी तरह नूत को मालूम हो गयी। उसने यह भी सुन रखा था कि ऐसी आत्मा प्रसन्न हो जाए तो इन्सान को अपार अलौकिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। अत: वह अस्सार की आत्मा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा।

एक रात अस्सार की आत्मा ने नूत से सपने में कहा कि अगर वह स्थायी रूप से खून पीने के लिए किसी युवक का इंतजाम कर दे तो वह उसे ऐसी अलौकिक शक्ति दे देगी जिसकी उसको चाह है। नूत इस काम को आसानी से पूरा कर सके इसके लिए उसने यह भी बता दिया कि काभ नामक गुफा में उसी की शक्ल का एक बुत है। वह बुत जिस युवक के पास होगा उसी के साथ उसकी आत्मा का स्थायी सम्बन्ध जुड़ जाएगा।

कुछ दिनों में नूत ने उस बुत को बड़ी आसानी से हासिल कर लिया। फिर वह किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करने लगा जिसे वह बुत देकर उससे अस्सार की आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करा सके।

उन्हीं दिनों उसकी मुलाकात सलीम से हो गयी। सलीम मिस्री सभ्यता, संस्कृति और धर्म-साधना की गहरी जानकारी के लिए पागल तो था ही, उसने तुरन्त मुँहमाँगी कीमत देकर वह बुत खरीद लिया। एक रात में स्वप्न में अस्सार की आत्मा ने उससे अपनी ममी भी खरीद लेने को कहा। सलीम ने तुरन्त उन दोनों की ममी भी खरीद ली। फिर क्या था, शुरू हो गया एक तांत्रिक भैरवी द्वारा नरमेध यज्ञ।

दस्तावेज से सारी कथा मालूम होने के बाद मेरा पहला काम था नूत को अपने वश में करना और काभ गुफा का रहस्य जानना। सोच-विचार कर मैंने एक दिन नूत को खूब शराब पिलायी। आखिर नशे के झोंके में उसने बहुत सारी बातें बतलायीं ही, साथ ही गुफा के बारे में बहुत सारे रहस्य उगल दिये। दूसरे दिन ही मैंने दोनों ममी नूत के हवाले कर दी। मगर बुत को सलीम से लेकर अपने पास ही रखा। वैसे इसके बारे में मैंने उसे कुछ भी बतलाया नहीं था।

अब यहीं से शुरू होती है एक विलक्षण और रोमांचकारी कथा। चाँद की पहली तारीख को नूत ने मुझे काभ गुफा में ले जाने का वायदा किया था। मैं अपनी तांत्रिक क्रिया की तैयारी में जुट गया और ऊँट की हड्डी की माला, सुअर का मांस और दो बोतल अच्छी शराब का इंतजाम कर लिया।

आखिर चाँद की पहली तारीख आ गयी। वह फागुन महीने की चाँदनी रात थी मगर बेहद उदास। ढलते चाँद के चमकते मुखड़े पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सितारों की ज्योति मन्द पड़ी थी और चाँदनी किसी सुन्दर विधवा की तरह उदास थी। उसी उदासी में सारा जंगल कफन ओढ़े पड़ा था। ठंडी रेत को छूती हुई बहने वाली हवा चलती तो लगता कि उसके साथ प्रेतात्माएँ उड़ रही हैं। नील नदी की उन्मत्त लहरें मिस्र के इतिहास को मेरे सामने दुहराती हुई बह रही थीं।

घने जंगलों और सुनसान घाटी को पार करने के बाद नूत एक दरार के सामने रुक गया। उस समय शायद रात के दो बजे थे। वह दरार काभ गुफा का द्वार थी। उसके सामने चार जंगली आदमी हाथों में मशाल लिये खड़े थे। शायद वे नूत का ही इन्तजार कर रहे थे।

नूत मुझे साथ में लिये हुए गुफा में दाखिल हुआ। आगे-आगे नपे-तुले कदमों से वे चारों आदमी चल रहे थे। गुफा में काफी लम्बा और नीचा रास्ता था जिसके जरिये हम किसी तहखाने में उतरे थे। आखिर एक स्थान पर पहुँच कर हम रुक गये। वह जगह इतनी अंधकारपूर्ण थी कि मशाल की रोशनी भी काम नहीं दे सकती थी। मैंने चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखने की कोशिश की मगर कुछ दिखलायी नहीं पड़ा।

वहाँ किसी अज्ञात स्थान से मद्धिम स्वर में बाजे की आवाज आ रही थी। वह बाजा बिल्कुल वैसा ही था जैसा सलीम के मकान में उस रात मैंने सुना था। उस आवाज से मैं भयभीत हो गया और किसी अज्ञात आशंका से मेरा दिल धड़कने लगा। एकाएक अंधेरे में एक गुप्त दरवाजा खुला। वे चारों मशालची मुझे और नूत को लेकर एक लम्बे-चौड़े सुसज्जित कमरे में पहुँच गये। उस कमरे में जैतून के तेल के कई चिराग जल रहे थे। वहाँ चारों ओर संगमरमर के पत्थर के चबूतरे बने हुए थे जिन पर करीने से कई ताबूत रखे हुए थे। जगह-जगह सुनहली अँगीठियों में राल, लोहबान

और चन्दन सुलग रहा था। कमरे में एक अजीब-सी खिन्नता-भरी उदासी छाई हुई थी। वहाँ बहुत सारे जंगली किस्म के लोग एक सोने के ताबूत को घेरे हुए कोई मंत्र पढ़ रहे थे। मुझे देखते ही उन सबने किसी विचित्र भाषा में उच्च स्वर में कोई नारा-सा लगाया, मैं कुछ समझ नहीं सका। आखिर नूत ने मुझे ले जाकर उस ताबूत के पास खड़ा कर दिया। उसी समय अचानक वह मनहूस बाजा काफी जोर से बजने लगा। वह बाजा कहाँ बज रहा था इसके बारे में मुझे कुछ न मालूम हो सका।

सहसा एक व्यक्ति ने उस ताबूत का ढक्कन खोल दिया। मैंने देखा, भीतर अस्सार और उसके प्रथम प्रेमी की ममी परस्पर लिपटी हुई एक खास अन्दाज में पड़ी थी। नूत आगे बढ़ा, उसने किसी खास भाषा में कोई मंत्र पढ़ कर दोनों की ममी पर चावल के दाने छिड़के। चावल के दानों के पड़ते ही अस्सार की ममी के दोनों हाथ ऊपर उठे, फिर धीरे-धीरे अँगड़ाई लेती हुई वह उठ कर बैठ गयी।

लाश को इस प्रकार उठकर बैठते देखकर मेरे शरीर का सारा खून एकबारगी सूखता प्रतीत हुआ। मैं काँप उठा, मेरे दिल की धड़कन बन्द-सी होने लगी। अस्सार की लाश आश्चर्यजनक ढंग से जीवित थी। उठने के बाद उसने भरपूर नजरों से चारों तरफ देखा फिर ताबूत के बाहर निकल आयी। उसकी चाल-ढाल और हाव-भाव देख कर कोई यह कह नहीं सकता था कि वह कभी लाश थी।

वह धीरे-धीरे चलते हुए मेरे करीब आ गयी और अपनी स्याह नजरों से घूरती हुई मेरी ओर देखने लगी। मैंने चीखना चाहा पर मुँह से आवाज ही नहीं निकली फिर तुरन्त ही मैंने अपने आपको सम्भाल लिया और शराब की दोनों बोतलें उसके आगे कर दीं।

अस्सार की लाश एक बार मुस्कराई और फिर गट् गट् कर दोनों बोतल की शराब पी गयी फिर एक व्यक्ति आगे बढ़ा। उसके सिर पर बाज के पंख का मुकुट था और शायद वही गुफा का मालिक भी था। उसने अस्सार की लाश पर से एक के बाद एक सारे कीमती कपड़ों को उतार डाला। अब मेरे सामने वह लाश बिल्कुल निर्वसन खड़ी थी। उसका जवान खूबसूरत जिस्म देख कर मेरा लहू एकदम गर्म हो उठा। उसी समय सहसा उसने मुझे अपने आगोश में कैद कर लिया और बेतहाशा मुझे चूमने लगी। मैं उत्तेजना से काँप रहा था फिर भी मैंने अनुभव किया कि वह जीवित अवश्य थी। मगर उसके शरीर में मानवीय गर्मी नहीं थी और न उसमें साँसों की धड़कन ही थी।

उसके सारे शरीर से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध निकल रही थी जिसके प्रभाव से कभी-कभी मैं चेतनाशून्य-सा हो जाता था। वह सहवास के लिए बिल्कुल व्याकुल थी पर वह जब भी ऐसी कोई चेष्टा करती, उसे टाल देता था।

काफी देर तक ऐसी स्थिति बनी रही। नूत चुपचाप मेरे निकट ही खड़ा सारी हरकतें देख रहा था। मैंने उसे इशारा करके सुअर का मांस लाने का आदेश दिया।

मांस देखते ही अस्सार की लाश उस पर टूट पड़ी और देखते ही देखते उसने सारा मांस खा डाला। मैं सफलता की आधी मंजिल पार कर चुका था। जैसे ही उसने मांस खत्म किया, त्यों ही मैंने ऊँट की हड्डियों की माला उसके गले में डाल दी। इसके साथ ही वह लाश एकदम चीख पड़ी। उसका शरीर सहसा काला पड़ने लगा और वह जमीन पर गिर कर कटे बकरे की तरह छटपटाने लगी।

मेरा भयंकर तांत्रिक प्रयोग सफल रहा। उस लाश से अस्सार की अतृप्त आत्मा का नाता हमेशा के लिए टूट चुका था। थोड़ी देर बाद लाश शांत हो गयी। फिर सबेरा होने के पहले ही उसे दफना भी दिया गया।

जब मैं गुफा के बाहर निकला तो अस्सार का बुत मेरे साथ ही था। उसे लेकर मैं सलीम से मिलने उसके होटल पहुँचा। उस समय वह सो रहा था। मैंने उसे जगा कर शुरू से अंत तक कहानी सुना डाली। आखिर में मैंने कहा, "अब तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। तुम अब अस्सार की आत्मा से मुक्त हो चुके हो।"

मगर जब मैं ये शब्द कह रहा था उसी समय शायद नियति कहीं खड़ी मुस्करा रही थी मुझ पर।

जब मैं भारत लौटा तो बुत को भी अपने साथ ही लेता आया था। न जाने क्यों उसके प्रति मेरे मन में आसक्ति भर गयी थी। उस समय सोचा भी नहीं था कि इसका परिणाम क्या होगा। एक महीने तक तो कोई नयी बात नहीं हुई मगर उसके बाद सपने में रोजाना मुझे अस्सार दिखायी पड़ने लगी। वह मुस्कराती हुई आकर मेरे पास बैठ जाती और मेरे शरीर से खेलने लगती।

जब मैं सोकर उठता तो अपनी गर्दन पर खून का हल्का-सा दाग लगा पाता। समझते देर न लगी मुझे, अस्सार की आत्मा रोज मेरा खून पीती थी। यानि सलीम तो मुक्त हो गया था मगर अब मैं फँस गया था उस तांत्रिक भैरवी की रक्त पिशाचिनी आत्मा के चंगुल में। मैं घबरा उठा। मैंने बुत को अपने से दूर करने की कोशिश की मगर सब बेकार।

आखिर मैंने इस सम्बन्ध में अपने एक मित्र तारानाथ भट्टाचार्य से बात की। वह काशी की पातालेश्वर गली में रहते थे। उन्होंने बताया कि जैसे लाश से अस्सार की आत्मा को अलग किया गया है उसी प्रकार बुत से भी उसका सम्बन्ध भंग होने पर ही मुक्ति मिलेगी। इसके लिए अमावस्या की काली स्याह रात में स्वयं भट्टाचार्य महाशय ने एक तांत्रिक अनुष्ठान का आयोजन किया।

बुत को हवन कुण्ड के सामने रखा गया। उसे सात रंग के रेशमी धागों से बाँधा गया था। इसके बाद तांत्रिक हवन शुरू हुआ। कुण्ड से उठने वाली आग की लाल-पीली लपटों के धूमिल प्रकाश में मैंने देखा बुत से एक काली भयंकर छाया निकल कर धीरे-धीरे कमरे के चारों ओर घूमने लगी।

भट्टाचार्य महाशय ने बताया कि यही अस्सार का वासना शरीर है। हवन की गति तेज होती गयी। इसके साथ-साथ वह छाया भी पागलों की तरह चक्कर दौड़ने लगी। अंत में पहले से ही बँधे काले बकरे की तांत्रिक पूजा की गयी फिर उसका पेट चीर कर बुत को उसी के भीतर रख दिया गया।

अचानक कमरे के निस्तब्ध वातावरण में एक भयंकर चीख गूँज कर चिथड़े-चिथड़े हो गयी।

कौन चीखा था ?

शायद वह अस्सार की आत्मा की चीख थी। मैंने देखा अब वह छाया जमीन पर पड़े बकरे की लाश के चारों ओर चक्कर काट रही थी। भट्टाचार्य महाशय ने तत्परता दिखायी। सबेरा होने के पहले ही बकरे की लाश को बुतसहित कब्रिस्तान में दफना दिया गया। वहाँ भी मैंने देखा कि वह काली छाया कब्र के चारों ओर मँडरा रही थी।

इस तांत्रिक अनुष्ठान से मुझे अस्सार की वासना से मुक्ति तो मिल गयी मगर आज भी कभी-कदा वह सपने में दिखलायी पड़ जाती है। तब बड़े करुण स्वर में कहती है। मैं तुमसे अभी भी प्यार करती हूँ। मेरे मन में तुम्हारे लिए अभी भी चाह है।

फिर मेरी नींद उचट जाती है और मैं उठ कर बिस्तर पर बैठ जाता हूँ। उस समय मेरा कमरा राल, गुग्गुल और लोहबान की मिली-जुली गंध से भरा रहता है। तब मैं सोचने लगता हूँ शायद अस्सार की आत्मा को अभी तक मुक्ति नहीं मिली है। वह कयामत तक भटकती रहेगी।

●

६

लामा तांत्रिक का चमत्कार

उन दिनों मैं भारतीय विद्या भवन, मुम्बई से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'भारती' से जुड़ा हुआ था। 'भारती' के सम्पादक थे श्री विरेन्द्र कुमार जैन।

श्री विरेन्द्र कुमार जैन योग, तंत्र, ज्योतिष आदि में प्रगाढ़ श्रद्धा रखते थे। वेदों में तो उनकी रुचि श्लाघनीय थी इसमें सन्देह नहीं। यही कारण था कि इन विषयों से सम्बन्धित लेख प्रत्येक मास के अंक में प्रकाशित तो होता ही था, इसके अतिरिक्त साल में दो-एक अतिरिक्त अंक भी प्रकाशित करते थे 'भारती' का श्री जैन जिसका उत्तरदायित्व मुझ पर था। बड़ा ही कठिन कार्य था मेरे लिए उत्तरदायित्व को सम्भालना, सबसे बड़ी परेशानी तो यह थी कि उपर्युक्त विषयों के लेखक बहुत ही कम थे उस समय। इने-गिने जो लोग थे भी वे अपने ज्ञान के प्रमाद और अहंकार में आकण्ठ डूबे रहने वालों में से थे। उनसे लेख के लिए आग्रह करना अपना अपमान कराना था। श्री जैन का विचार था कि इस बार दीपावली के अवसर पर 'भारती' का तंत्र विशेषांक होना चाहिए प्रकाशित। उसके लिए कम से कम आठ-दस लेख का होना आवश्यक था। क्या किया जाय? गाल पर हाथ रखकर सोचने लगा मैं। लेखों के शीर्षक बना लिए गये थे और उन शीर्षकों की सूची भी तैयार कर ली गयी थी। लेकिन इन सबसे होने वाला क्या था। शीर्षक के अनुसार विषय भी तो चाहिए था। कहाँ था विषय? अधिक से अधिक दो लेख मेरे अपने हो सकते थे। शेष कहाँ से होगा उपलब्ध... ?

और तभी एक दिन श्री जैन का फोन आया। फोन पर उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा, आप स्वयं सभी लेख लिखिए। छद्म नामों से उन्हें प्रकाशित कर दिया जायेगा। सभी लेखों के पारिश्रमिक के अधिकारी आप ही होंगे। यह सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी। श्री जैन की सम्पादकीय बुद्धि के आगे नत होना पड़ा मुझे।

दीपावली के एक सप्ताह पूर्व 'भारती' का तंत्र विशेषांक पूरे सज-धज के साथ प्रकाशित हुआ और दस दिनों के अन्दर 'भारती' की पन्द्रह हजार प्रतियाँ बिक गयीं। भारती विद्या भवन के सर्वेसर्वा श्री कन्हैयालाल, माणिकलाल मुंशी प्रसन्न तो हुए ही इसके अतिरिक्त अति प्रभावित भी हुए मुझसे।

'भारती' के पाठकों के पत्र आने ही थे। वे आये, और सैकड़ों की संख्या में आये। उन्हीं पत्रों में एक पत्र था रामगढ़ स्टेट (कल्पित नाम) के महाराज राय साहब त्रिलोचन सिंह जी (कल्पित नाम) का।

पत्र में पहले पत्रिका की प्रशंसा की गयी थी और फिर अन्त में अनुरोध-भरे शब्दों में रामगढ़ स्टेट में पधारने का निमंत्रण दिया गया था मुझे। पत्र के साथ संलग्न था एक हजार रुपये का चेक भी।

पत्र को कई बार पढ़ा मैंने। न जाने कौन-सा आकर्षण था जो बार-बार विवश कर रहा था मुझे पत्र पढ़ने के लिए। अन्त में रहा न गया मुझसे। टेलीग्राम द्वारा अपने आने की सूचना दे दी मैंने महाराज राय साहब त्रिलोचन सिंहजी को।

रामगढ़ रेलवे स्टेशन।

पूरे सोलह घंटे की कष्टदायिनी लम्बी यात्रा के बाद जब प्लेटफॉर्म पर उतरा, उस समय साँझ की स्याह कालिमा बिखर चुकी थी चारों ओर। अक्टूबर का महीना था। कुहरे की हल्की-हल्की परतें फैलने लगी थीं जमीन पर।

प्लेटफॉर्म के बेंच पर अपनी अटैची रखकर जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगा मैं और सोचने लगा महाराज को तार मिल गया होगा और किसी व्यक्ति को स्टेशन पर भेजेंगे अवश्य वो मुझे लेने के लिए और तभी न जाने किधर से एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति आकर मेरे सामने खड़ा हो गया दोनों हाथ जोड़कर। बड़ा ही रोबीला व्यक्तित्व था उसका। सिर पर तुर्रेदार पगड़ी, मैरून कलर की वर्दी और चूड़ीदार पाजामा। सीने पर पीतल का चमकता हुआ रामगढ़ स्टेट का बिल्ला।

हुजूर चलिए। मैं स्टेट की ओर से आपको लेने आया हूँ, व्यक्ति विनम्र स्वर में बोला। स्टेशन के बाहर कार खड़ी थी। मेरे बैठते ही कार चल पड़ी। जंगली रास्ता था, सड़क कच्ची थी। लगभग एक घण्टे के बाद एक विशाल गेट के बाहर सामने कार खड़ी हुई एक झटके के साथ। भारी-भरकम लोहे का विशाल फाटक खुला। सर्र से भीतर चली गयी कार। हल्के अन्धेरे में सब कुछ दीख गया मुझे। लाल रंग के जयपुरी संगमरमर की बनी विशाल हवेली और हवेली के चारों ओर ऊँची दीवारों से घिरे हुए बाग-बगीचें। फूलों की सुगन्ध से भरा हुआ वायुमण्डल। वातावरण में घोर निस्तब्धता। चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। उसका नाम था राजबहादुर, महाराज त्रिलोचन का ड्राइवर और खास अर्दली। अतिथि भवन में ले गया वह मुझे, और अदब से झुक कर बोला विनम्र स्वर में—आप इस समय यहाँ भोजन और विश्राम करिये। महाराज से कल दस बजे भेंट होंगी।

अतिथि भवन क्या था? एक राजसी साज-सज्जा से अलंकृत बड़ा-सा हाल था। ऊँची-ऊँची कई खिड़कियाँ, कीमती काँच के पल्ले और गुलाबी रंग के रेशमी पर्दे। ऊँची छत से लटकते हुए बेलजियम काँच के रंगीन झाड़-फानूस जिनमें कई मोटी-मोटी मोमबत्तियाँ जल रही थीं और जिनका हल्का-हल्का-सा प्रकाश झिलमिला रहा था गुलाबी रंग की दीवारों पर। जमीन पर गुलाबी ही रंग की मोटी-सी मखमली कालीन बिछी थी। दीवार से थोड़ा हटकर एक लम्बा-चौड़ा पलंग,

जिसके बिस्तर पर गुलाबी रंग का बिछा था रेशमी चादर, मसनद और तकियों के गिलाफ भी गुलाबी रंग के। यह सब कुछ देखकर समझते देर न लगी मुझे, महाराज त्रिलोचन सिंह को अत्यधिक प्रिय है गुलाबी रंग।

चाँदी के पात्र में सुस्वाद राजसी भोजन कर लेट गया मैं पलंग पर। लेकिन अधिक समय तक लेटा न गया मुझसे। गहरी निस्तब्धता में डूबा हुआ वह राजसी अतिथि भवन कुछ विचित्र-सा लगा मुझे। बेचैन हो उठा मैं न जाने क्यों? बिस्तर पर लेटा ही लेटा सामने खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा। बाहर मटमैली स्याही बिखरी हुई थी। ऊपर अक्टूबर के अन्तिम दिनों का आकाश था जर्द और स्याह यहाँ से वहाँ तक फैला हुआ। सब कुछ साफ, स्वच्छ दिखलायी दे रहा था बाहर। हवा चली तो सन्नाटा फुसफुसाता-सा लगता। रंगीन सिल्क के पर्दे काँपते और दीवार पर गिरती धुँधली रोशनी अनजान-सी परछायी हौले-हौले सिहरती।

मैं देख रहा था। मेरी नजर अँधियारे में नहाये हुए पेड़-पौधों और धुंध में लिपटी हुई पहाड़ियों की ओर थी। उस बड़े से राजसी हाल की खामोशी और बोझिल हो गयी। एक अबूझ-सा सन्नाटा। बरामदों के परे हाँफते वृक्षों के प्रश्वास से गुंजित अंधेरा भीतर तक ठाठें मारने लगा। अचानक बिजली कौंधी। घोर आश्चर्य हुआ। अभी तो आकाश साफ था। बिजली कहाँ से कौंध गयी एकाएक। समझ में नहीं आया। उस समय मैंने देखा नीले स्याह आकाश-पटल पर एक लम्बी-चौड़ी काठी के वृहदाकार मानव की स्पष्ट छाया। बिस्तर पर उठकर बैठ गया मैं। बाहर प्रभंजन का शोर पूर्ववत् था। हवा के झोके से वृक्षों में विकट आलोड़न हो रहा था। झाड़-फानूस में जलने वाली मोमबत्तियों की फीकी रोशनी का दायरा एक बार कसमसाया और फिर गुलाबी दीवार काँपने लगी।

उस समय वृहदाकार मानव की छाया धीरे-धीरे करीब आती गयी और उसी के साथ उसकी आकृति भी छोटी होती गयी। अब वह खिड़की के भीतर प्रवेश कर सकती थी। कहने की आवश्यकता नहीं, कुछ क्षण बाद प्रवेश कर भी गयी हाल में। अब रूप कुछ स्पष्ट हो गया। एक योगी का पार्थिव शरीर मेरे सामने कालीन पर गम्भीर मुद्रा में बैठा था पद्मासन लगाये। उसकी लम्बी जटायें पीठ पर बिखरी हुई थीं और सफेद दाढ़ी नीचे पेट तक झूल रही थी। योगी का चेहरा चौड़ा था। माथा ऊँचा था। आँखें बड़ी थीं, पलकें आगे की ओर झूल रहीं। सम्भवत: उसे अपनी आँखें खोलने में कष्ट हो रहा था लम्बी पलकों के कारण। उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। एक प्रकार से पूर्ण नग्न था वह। हाँ, एक आश्चर्य की बात अवश्य थी और वह यह कि उसका पूरा शरीर पारदर्शक और गुलाबी रंग का था और उसमें हल्का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था।

बहुत देर तक बैठा रहा वह अपरिचित और अज्ञात योगी मेरे सामने गलीचे पर। कौन था? क्यों आया था वह दिव्य पुरुष? और न जाने कब और किस क्षण झपकी-सी लगी मुझे और उसी अज्ञात स्थिति में उस अज्ञात योगी के पीछे-पीछे चल पड़ा मैं न जाने किस दिशा में। बेहोश नहीं था मैं। पूर्ण चैतन्य था मैं। मेरी आत्मा शरीर में जी रही थी उस अकल्पनीय अवस्था में। एक शरीर तो मेरा बिस्तर पर पड़ा था शयन की मुद्रा में और दूसरा शरीर था उस योगी के साथ किसी अज्ञात यात्रा-पथ पर।

आध्यात्मिक भूमि में अब तक बहुत कुछ अनुभव किया मैंने। लेकिन उस अवस्था का अकल्पनीय था अनुभव मेरे लिए। अन्त में मैं अति सुरम्य और रमणीक स्थान पर पहुँचा और उस महात्मा ने एक विशाल वृक्ष के नीचे मुझे संकेत किया बैठने के लिए। किसका था वह विशाल वृक्ष यह जान न सका मैं। लेकिन उसकी छाया के नीचे बैठने पर मुझे अपूर्व शान्ति और आनन्द का अनुभव हुआ।

यहाँ यह बतला देना चाहता हूँ, वाणी जो हमारे मुख से निकलती है उसका प्रारम्भिक रूप कम्पन है जो हमारी नाभि के निचले भाग में उत्पन्न होता है। वही तरंग सामूहिक रूप से नाभिकेन्द्र में भाव के रूप में प्रकट होता है। योग की भाषा में जहाँ तरंग उत्पन्न होती है उस स्थान को 'परा' और नाभिकेन्द्र को कहते हैं 'पश्यन्ति'। इस प्रकार वाणी का प्रारम्भिक रूप 'परा' और दूसरा रूप पश्यन्ति है। इसी प्रकार पश्यन्ति ऊपर उठकर जब हृदय-केन्द्र में प्रवेश करती है तो उसे कहते हैं 'मध्यमा'। वही मध्यमा कण्ठ-केन्द्र में आकर 'वैखरी' वाणी का रूप धारण कर लेती है, जो श्वास-प्रश्वास के संयोग से स्थूल शब्दों में बाहर व्यक्त होती है। उच्च कोटि के साधक और योगीगण पश्यन्ति वाणी का प्रयोग करते हैं, जिसको समझना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं। महायोगी की पश्यन्ति वाणी का श्रवण योग स्तर का ही व्यक्ति समझ सकता है। योगी यदि मौन है तो समझ लेना चाहिए कि वह पश्यन्ति वाणी का प्रयोग कर रहा है। यदि समाधिस्थ है तो प्रयोग करता है वह परावाणी का। योगी कब मौन है और कब समाधिस्थ है? यह समझ पाना कठिन है। निश्चय ही उस अपरिचित अवस्था में वह रहस्यमय योगी पश्यन्ति वाणी में कुछ बतलाने का प्रयास कर रहा था। गहन शान्ति का अनुभव होने के कारण मैं थोड़ा ध्यानस्थ हो गया था। तभी तो कुछ सीमा तक उस योगी की मूक भाषा को समझ सका मैं थोड़ा-बहुत और मेरी समझ में जो थोड़ा-बहुत आया उसके अनुसार उस योगी का नाम था स्वामी [redacted]। स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव महाराज त्रिलोचन सिंह के परदादा महाराज जगलोचन सिंह के गुरु थे। उनसे महाराज जगलोचन सिंह ने विधिवत् योग की दीक्षा ली थी। महारानी विक्टोरिया का शासन था उस समय भारत पर। नजराने के तौर पर भारत में जितने स्टेट थे, वे महारानी विक्टोरिया को बहुमूल्य रत्न आदि भेंट किया करते थे और जो नजराना दे पाते

अथवा नहीं देना चाहते थे उनको महारानी का किसी न किसी रूप में कोप का भाजन बनना पड़ता था। महाराज जगलोचन सिंह के खजाने में बहुमूल्य रत्न-जवाहरातों का विपुल भण्डार था, जिस पर फिरंगियों की गिद्ध-दृष्टि पड़ी हुई थी। महाराज जगलोचन सिंह इस बात से परिचित न हों, ऐसी बात नहीं थी। पूर्ण परिचित थे और यह भी जानते थे। किसी समय खजाना खाली हो सकता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने गुरु स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव से परामर्श किया। गुरुदेव तो पहले मौन रहे फिर गम्भीर स्वर में बोले—एक ही मार्ग है परम्परागत रत्न-भण्डार को सुरक्षित रखने का और वह यह कि ऐसे स्थान पर चौबच्चा बनाकर उसमें उसे भूमिगत कर दिया जाय और बना दिया जाय उसका 'बीजक' भी ताकि समय पर राजवंश उसका यथासमय उपयोग कर सके।

महाराज जगलोचन सिंह को अपने गुरुदेव का परामर्श उचित लगा। उन्होंने गुप्त रूप से चौबच्चा बनवाकर भूमिगत कर दिया बहुमूल्य रत्न-जवाहरातों को और अन्त में उसका 'बीजक' भी बना दिया गया। सभी काम इतने गुप्त रूप से हुआ था कि महारानी और राजमंत्री तक को इसका पता न चला।

महाराज जगलोचन सिंह चिन्ता-मुक्त हो गये। लगभग दो वर्ष बाद स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव ने महासमाधि लेने की इच्छा प्रकट की। यह सुनकर महाराज विचलित हुए लेकिन वह एक परमयोगी के शिष्य थे इसलिए उनकी योगात्मा ने गुरु वियोग की असाध्य पीड़ा को सहने के लिए अपने को तैयार कर लिया। महासमाधि ग्रहण करने के पूर्व स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव ने कहा कि उनकी अन्तिम इच्छा है और वह यह कि मेरी समाधि-पीठ 'चौबच्चा' के निकट ही होनी चाहिए।

ठीक है गुरुदेव, ऐसा ही होगा। यह कहकर महाराज ने अपने गुरुदेव का चरणस्पर्श किया अन्तिम बार। चौबच्चा के निकट अपनी समाधि-पीठ का निर्माण क्यों चाहते थे स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव उसके गोपनीय रहस्य से अपरिचित रहे जीवनपर्यन्त महाराज जगलोचन सिंह। ब्रिटिश राज्य समाप्त हो चुका था। भारत छोड़ कर चले गये थे अंग्रेज। देश स्वतन्त्र हो चुका था। दादा, परदादा और फिर पिता के हाथों से होता हुआ बीजक अन्त में पहुँचा महाराज त्रिलोचन सिंह के हाथ में। उन्होंने सोचा कि बीजक के जरिये वह विपुल सम्पत्ति प्राप्त हो जाती तो रामगढ़ को आधुनिक रूप देकर उसकी काया-पलट कर देते। लेकिन बीजक का गूढ़ संकेत इतना जटिल और रहस्यमय था कि महाराज त्रिलोचन सिंह समझ न सके उसे।

आश्चर्य और रहस्य की बात यही थी कि बीजक की गोपनीयता से भली-भाँति परिचित होते हुए भी जगलोचन सिंह ने उसके सम्बन्ध में किसी को कुछ नहीं बतलाया था अपने जीवनकाल में। क्या कारण था?

महाराज त्रिलोचन सिंह अब तक कई तांत्रिकों से मिल चुके थे, लेकिन जिसे भी बीजक दिखाते वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता सिर हिलाकर। अन्त में एक

सिद्ध लामा तांत्रिक से सम्पर्क हुआ महाराज का। उस लामा तांत्रिक का नाम था रिन्पोंछे। उसकी अवस्था बहुत अधिक थी। लेकिन साधना के अलौकिक तेज से दप्-दप् करता रहता था उसका चेहरा। उसके कानों में हीरे का स्वर्ण-कुण्डल था और गले में थी हड्डियों की माला। हर समय कुछ न कुछ बुदबुदाता रहता था वह। वास्तव में अति रहस्यमय था उसका व्यक्तित्व। तिब्बत के किसी मठ में रहता था। वहाँ से पैदल चलकर भारत-भ्रमण के लिए आया था वह।

लामा तांत्रिक रिन्पोंछे से मिलकर अति प्रसन्न हुए थे महाराज त्रिलोचन सिंह। उन्हें अब पूरा विश्वास था कि बीजक का रहस्य अब खुलकर ही रहेगा इसमें सन्देह नहीं। महल में चार-पाँच दिन रहकर लामा तांत्रिक रिन्पोंछे ने अपने ढंग से बीजक को समझाने का प्रयत्न किया और उसकी परीक्षा भी ली। परीक्षा से सम्पत्ति प्राप्त करने की विधि तो ज्ञात न हो सकी, इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि लगभग चालीस करोड़ की सम्पत्ति चौबच्चे के रूप में भूमिगत है। किन्तु........किन्तु क्या? महाराज ने थोड़ा व्यग्र होकर प्रश्न किया।

एक उच्चकोटि के योगी का प्रभाव है उस सम्पत्ति पर, लामा तांत्रिक ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया। तब क्या होगा? कैसे प्राप्त होगी सम्पत्ति। इस बार अत्यधिक व्यग्र और साथ ही उद्विग्न हो उठे थे महाराज।

जब तक वह प्रभाव से मुक्त न होगा। कैसे सम्भव होगा यह—एक लम्बी साँस लेते हुए महाराज ने पूछा।

लामा तांत्रिक मौन रहा। कोई उत्तर नहीं दिया। शायद वह सोच रहा था कि एक महान् योगी के लगभग तीन सौ वर्षों से भी अधिक यौगिक प्रभाव को नष्ट करने की क्षमता उसकी तांत्रिक शक्ति में है या नहीं। उसके लिए समस्या गम्भीर थी, जिसे हल करने में असमर्थ पा रहा था वह लामा तांत्रिक। उसी दिन राजमहल छोड़ दिया उसने और जाते समय महाराज से कहा, इस सम्बन्ध में अपने तांत्रिक गुरु से बात करेगा और एक बार फिर आकर प्रयास करेगा। महाराज ने लामा तांत्रिक को विदाई के रूप में कुछ सोना देना चाहा, जिसे नहीं लिया उसने। महाराज अब यह अच्छी तरह समझ गये थे कि अपने योगबल से सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए ही स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव ने चौबच्चा के निकट अपनी समाधिपीठ के निर्माण की इच्छा व्यक्त की थी। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं। रक्षा की बात तो अपने आपमें ठीक है। लेकिन उनके यौगिक प्रभाव से कब मुक्त होगी वह सम्पत्ति? क्या चाहता है वह योगी। सम्भव है उसी यौगिक प्रभाव के कारण रहस्यमय बीजक की गोपनीयता को लामा जैसे उच्चकोटि के तांत्रिक भी भंग करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हों?

धूल-धूसरित होता दिखायी दिया महाराज का अपना सपना और दिखायी दिया अपनी आशाओं पर तुषारापात होते हुए और जब मुझे इन सब बातों का पता

चला तो यह समझते देर न लगी कि निश्चित ही उसी बीजक के रहस्य को जानने-समझने के अतिरिक्त उस महान् आत्मा के यौगिक प्रभाव को नष्ट करने के विषय में भी मुझसे परामर्श लेने के लिए आमन्त्रित किया है महाराज ने? क्या वह मुझे कोई योगी अथवा कोई तांत्रिक समझते हैं या कोई सिद्ध साधक? लेकिन अब तक अपनी किसी भी रचना और अपनी किसी भी पुस्तक में अपने आपको एक योगी अथवा तांत्रिक के रूप में कभी भी प्रस्तुत नहीं किया मैंने। यह अच्छी तरह जानता था मैं। तो फिर....गालों पर हाथ धरे सोचने लगा इस सम्बन्ध में और तभी कौंध-सा गया मेरे मस्तिष्क में कुछ।

मध्यप्रदेश के सुविख्यात कवि और प्रसिद्ध लेखक स्व० श्री अनिल कुमार मेरे परम साहित्यिक मित्र थे। मेरे अन्तरंग और बहिरंग जीवन से भली-भाँति परिचित थे महाशय। उनकी सरस कविताओं और प्राञ्जल भाषा में लिखे गये लेख और लिखी गयी कथा-कहानियों पर मेरे द्वारा की गयी समीक्षा बराबर मध्यप्रदेश के समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती थी। बिल्कुल अहंकार नहीं था अनिलजी में। बड़े ही सरलचित्त, सज्जन मिलनसार व्यक्ति थे वह इसमें सन्देह नहीं। उनके अपनों में एक थे अपने समय के विख्यात कवि और लेखक कविवर श्री गजानन माधव मुक्तिबोध भी। एक बार भयंकर रूप से रोगग्रस्त हो गये वह। रोग असाध्य था और रहस्यमय भी। प्रायः लोगों की धारणा थी कि रोगग्रस्त नहीं, व्याधिग्रस्त हैं कवि महोदय और उसी व्याधिग्रस्तता को लेकर मुझे पत्र लिखा श्री अनिल कुमार ने। तत्काल उनके पत्र का उत्तर देते हुए मैंने लिखा कि श्री गजानन मुक्तिबोध पर व्याधि अवश्य है। सन् '६४ उनके जीवन का अन्तिम वर्ष है। काल के चरण को कोई रोक नहीं सकता। प्रयत्न व्यर्थ है।

कहने की आवश्यकता नहीं, मेरी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और उसके बाद कलम के धनी श्री अनिल कुमार अपने आपको रोक नहीं पाये। मुक्तिबोध की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर उनका एक लेख 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था 'कविवर गजानन माधव मुक्तिबोध रोग के ग्रस्त बने या प्रेतबाधा के?' लेख धर्मयुग में ५ सितम्बर, १९६५ के अंक में प्रकाशित हुआ था। हड़कम्प मचना स्वाभाविक था। उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि 'बाधा' पर टिप्पणी करते हुए मित्र महोदय ने अपने लेख में मेरे विषय में लिखा था....काशीवासी शव साधक तांत्रिक मित्र पण्डित अरुण कुमार शर्मा को पत्र लिखकर मुक्तिबोध की बाधा पर मन्तव्य देने को कहा। शर्माजी को प्रेतवश है। वे दो बार प्रेत साधना, एक बार [redacted] कर चुके हैं। तिब्बत में रहकर लामाओं से कुछ गुह्य तंत्र भी सीख आये हैं और श्रीलंका में रहकर [redacted] भी उपलब्ध कर आये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, इस विवरण के साथ ही साथ मुक्तिबोध के सम्बन्ध में मैंने जो पत्र लिखा था, उसका भी उल्लेख करना नहीं भूले थे मित्र महोदय।

जो होना था वही हुआ। धर्मयुग के माध्यम से सैकड़ों की संख्या में पत्र मुझे मिले पाठकों के। कुछ लोग तो व्याकुल हो उठे मुझसे मिलने के लिए। बड़े ही धर्मसंकट की स्थिति थी वह। लेकिन कर ही क्या सकता था? हाँ, दोनों कान थाम कर कसम अवश्य खायी कि अब कभी भी भविष्यवाणी नहीं करूँगा मैं, खैर।

अब स्पष्ट हो चुका था सब कुछ मेरे सामने। निश्चय ही ५ सितम्बर, १९६५ वाला 'धर्मयुग' का अंक हाथ लग गया होगा महाराज के और मुक्तिबोध से सम्बन्धित लेख भी अवश्य ही पढ़ा होगा उन्होंने। जीवन में पहली बार किसी राजा-महाराजा से भेंट होने वाली थी और पहली बार अवसर प्राप्त हो रहा था उनकी समस्या के समाधान का अवसर। सबेरे उठकर जल्दी-जल्दी तैयार हुआ मैं। शान्ति निकेतन की धोती, सिल्क का कुर्ता और ताड़केश्वरी दुपट्टा में सज-धज कर ठीक दस बजे आ गया मैं महल में। महाराज का मुख्य अर्दली वीरबहादुर मेरे साथ था। जाते समय मस्तक पर सिन्दूर का गोल टीका लगाना नहीं भूला मैं। महाराज पर प्रभाव जमाना जो था।

महल में चारों ओर एक विचित्र-सी उदासी बिखरी हुई थी। लगा जैसे किसी प्रेतपुरी में आ गया हूँ मैं। वीरबहादुर से ज्ञात हुआ कि महाराज को कोई सन्तान नहीं है। शुरू से ही सन्तानहीन हैं वह। महारानी है जो हर समय पूजा-अर्चना आदि में व्यस्त रहती हैं, बहुत कम लोगों से मिलती-जुलती हैं। चार-पाँच नौकर-चाकर हैं बस। राजमहल की जैसी कल्पना की जाती है वैसा वहाँ कुछ नहीं था। महाराज का कमरा भी एक प्रकार से साधारण-सा ही था। वैसे काफी लम्बा-चौड़ा था। जमीन पर कीमती विदेशी कालीन बिछी हुई थी। ऊँची-ऊँची हवादार खिड़कियाँ थीं, जिन पर रेशमी पर्दे हवा में लहरा रहे थे। गुलाबी रंग की दीवारों पर राजपरिवार के सदस्यों के तैलचित्र लगे हुए थे। कमरे के एक ओर दीवार से लगकर लगभग चार फुट ऊँची एक पाषाण वेदी बनी हुई थी और उस वेदी पर जयपुरी संगमरमर की एक पाषाण मूर्ति पद्मासन की मुद्रा में स्थापित थी। उस मूर्ति को देखते-समझते देर न लगी मुझे। तुरन्त पहचान गया मैं। वह मूर्ति थी स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव की। दूसरी ओर उसके ठीक सामने एक ऊँचा पलंग था। पलंग के अगल-बगल गद्देदार कुर्सियाँ और कीमती सोफा सेट थे। पलंग पर बैठे थे महाराज त्रिलोचन सिंहजी मनसद के सहारे। उन्हें देखकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। राजसी झलक कहीं भी देखने को नहीं मिली मुझे महाराज के व्यक्तित्व में। सब कुछ साधारण होते हुए भी असाधारण। गोरा रंग, लम्बी-चौड़ी काठी का शरीर, गुलाबी रंग का रेशमी कुर्ता-पाजामा। गले में लिपटा हुआ किनखाब का कीमती दुपट्टा, जिसके ऊपर झूल रही थी मोतियों की माला। कानों में हीरे का टप्स, कन्धे तक झूलते हुए घुँघराले बाल, और हल्की दाढ़ी-मूँछ। ऊँचा ललाट, बड़ी-बड़ी प्रखर आँखें। आयु यही लगभग पचपन-साठ के बीच।

महाराज मुझे देखकर मुस्कराये। बड़ी ही स्निग्ध थी वह मुस्कराहट। मन मोह लिया मेरा। सोने के फ्रेम में लगे चश्मे को उतारकर दोनों हाथ जोड़ते हुए प्रणाम किया उन्होंने और फिर संकेत किया सोफे पर बैठने के लिए। अब तक चाँदी की थाली में फल, मेवा और चाँदी के गिलास में केसरिया दूध रख गया सामने की टेबल पर वीरबहादुर। परान्नं दुर्लभं लोके....। भूख तो लगी ही थी। खाने को वह पूरा फल-मेवा खा जाता और दूध भी दो-तीन गिलास पी जाता, लेकिन राजमर्यादा ने रोक दिया मुझे। एक-दो केला खाकर दूध पी लिया मैंने। इतने से ही सन्तोष करना पड़ा।

पहले औपचारिक बातें हुईं और उसी के सिलसिले में अपना परिचय देते हुए मैंने बतलाया कि आध्यात्मिक खोज की दृष्टि से लगभग पूरे हिमालय के अतिरिक्त तिब्बत की भी जीवन-मरणदायिनी हिमयात्रा की है मैंने। यात्रा-काल में अनेक प्रच्छन्न, अप्रच्छन्न सिद्ध साधकों, योगियों और उच्चकोटि के सन्त-महात्माओं के दुर्लभ दर्शन हुए। योग, तंत्र, ज्योतिष आदि गूढ़ विषयों पर चर्चायें हुईं और हुआ सत्संग। अनुभव और अनुभूतियों का भण्डार तो भरता ही गया, इसके अतिरिक्त तिमिराच्छन्न ज्ञान से भी एक सीमा तक तृप्त हुई मेरी आत्मा।

मेरी बात को बड़े ध्यान से सुनते रहे महाराज त्रिलोचन सिंह मौन साधे। फिर उठे और आलमारी खोल कर सोने का एक छोटा-सा डिब्बा निकाला और उसे मेरे सामने रखा उन्होंने। सोने के उस कीमती डिब्बे में मोटे कागज का एक पुलिन्दा था। वह बीजक था, जिसे देखने का आग्रह किया महाराज ने। मैंने पहले से ही जानता था कि बीजक को समझने के लिए महाराज ने आमन्त्रित किया था मुझे।

[redacted] था? तीन सौ वर्ष पहले हाथ से कागज बनाये जाते थे, जो मोटे होते थे और चीमड़ भी। जल्दी फटते नहीं थे। वैसे ही एक फुट लम्बे-चौड़े कागज पर काली स्याही से एक नक्शा बना था। नक्शा अस्पष्ट था। ध्यान से देखने लगा मैं उसे। थोड़ी देर बाद बीजक का तिमिराच्छन्न रहस्य अनावृत्त हो चुका था अब मेरे सामने। प्राचीन तंत्र ग्रन्थों में एक तंत्र ग्रन्थ है [redacted]। जिसने बीजाक्षर तंत्र का गहन अध्ययन किया है वह बीजाक्षरों के माध्यम से भूमिगत सम्पत्ति के विषय में सब कुछ बतला सकने में समर्थ होता है। उस बीजक में जिन बीजाक्षरों का प्रयोग था उनके गूढ़ अर्थों से भली-भाँति परिचित था मैं। महाराज उद्वेलित हो रहे थे। बार-बार जिज्ञासु भाव से देख रहे थे मेरी ओर। कौतूहल का भाव स्पष्ट था उनके चेहरे पर।

समाधि-स्थल देखना चाहता हूँ मैं। क्या आप ले चलेंगे वहाँ मुझे? शायद महाराज भी यही चाहते थे। गाड़ी निकाली गयी। वीरबहादुर गाड़ी चला रहा था चुपचाप। दोपहर का समय लगभग चार-पाँच मील तक फैला हुआ गहन वनप्रदेश। जंगल के बीच से एक सँकरा कच्चा रास्ता गया था भीतर। पूरे दो घंटे का समय लग

गया स्थल पर पहुँचने में। वहाँ जाते ही एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। उसी स्थान पर तो लाये थे मुझे स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव। लेकिन इस बात को उजागर नहीं किया मैंने महाराज के सामने। लगभग चालीस फुट लम्बी-चौड़ी जमीन पर चारों ओर से घिरी हुई थी पक्की चहारदीवारी से। भीतर जाने के लिए छोटा-सा लोहे का फाटक मिला, जो उस समय बन्द था। वीरबहादुर ने आगे बढ़कर खोला उसे। जमीन में ऊँची-ऊँची जंगली घास उगी हुई थी ? और उन जंगली घासों के बीच चार फुट ऊँचे बहुत बड़े-बड़े दो चौकोर चबूतरे बने हुए थे जयपुरी लाल पत्थरों के। चबूतरे पर षट्कोण पत्थर खोदकर बनाया गया था और दूसरे पर शिवलिंग था स्थापित। समझते देर न लगी मुझे। पहला चबूतरा [redacted]था और दूसरा था योगी की समाधि। चारों ओर गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था और बिखरी हुई थी खिन्नता-भरी उदासी। बगल में विशाल बरगद का पेड़ था जिसके पत्तों की छाया हिलडुल रही थी योगी की समाधि पर।

चारों ओर सिर घुमा-घुमा कर देख रहा था और शायद कुछ सोच भी रहा था मैं। फिर बीजक निकाल कर उसे ध्यान से देखने लगा। मेरा अनुमान सही था। महाराज पीछे हाथ बाँधे विचारमग्न इधर-उधर टहल रहे थे। कभी-कभी पलट कर देख भी लेते थे मेरी ओर। सम्भवतः अतिशीघ्र सब कुछ जान-समझ लेना चाहते थे वह और जब मैंने वह सब कुछ उनको बतलाया तो उसे सुनकर सन्न रह गये एकबारगी महाराज। मुँह खुला का खुला रह गया उनका।

बीजक के रहस्यमय बीजाक्षरों और उनके संकेतों के अनुसार चबूतरे के लगभग १५ फुट नीचे एक पत्थर की मजबूत टंकी थी और टंकी में रखी गयी थी हीरे-जवाहरात के रूप में वह अतुल सम्पत्ति राजघराने की। टंकी बन्द थी और उस बन्द टंकी के ऊपर एक नर-कंकाल था जो पद्मासन की मुद्रा में बैठा हुआ था और उसकी गोद में नर-मुण्ड के रूप में उसका सिर रखा था, जिसका मतलब यह था कि नर-बलि देकर उस अतुल सम्पत्ति को तांत्रिक विधि से बाँध दिया गया था, ताकि उसका स्थान-परिवर्तन न हो। यथास्थान बराबर बना रहे वह। योगी की 'रक्षा' के कारण को स्पष्ट करते हुए महाराज को मैंने बतलाया—योगीगण धन, ऐश्वर्य और मान-सम्मान के भूखे नहीं होते। स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव परम उच्चावस्था प्राप्त एक सिद्ध योगी और जीवनमुक्त थे इसमें सन्देह नहीं। महाराज की जो कामना थी उससे मिलती-जुलती उस योगी की भी थी कामना, लेकिन वह कामना महान् और आध्यात्मिक थी जिसे साकार करने के लिए एक बार पुनः जन्म ग्रहण करना चाहते थे और वह भी राजपरिवार में ही जो परम्परागत रूप से शिष्य रहा है उनका।

बीजक में एक स्थान पर अस्पष्ट रूप से लिखा था राजनारायण सिंह और उसके सामने लिखा था पाँच की संख्या। समझते देर न लगी मुझे। राजपरिवार की

पाँचवीं पीढ़ी में राजनारायण सिंह के रूप में जन्म लेना चाहता था वह योगी और इसीलिए सम्पत्ति की रक्षा कर रही थी उसकी आत्मा। बुद्धिमान और विचारशील थे महाराज। वस्तुस्थिति समझते देर न लगी उन्हें। लेकिन थोड़ा विवश और चिन्तित दिखलायी दिये वह मुझे।

राजवंश की वह चौथी पीढ़ी थी। पाँचवीं पीढ़ी उनका भावी पुत्र था और अभी तक निःसन्तान थे वह। गहरी दृष्टि से देखा मेरी ओर एक बार महाराज ने। उनकी आँखों की भाषा समझ गया मैं। महाराज और महारानी दोनों उस अवस्था को पार कर चुके थे जब आशा की जाती है सन्तान की। उंस दिन पूरी रात सो न सका मैं। बार-बार महाराज का उदास और विषण्ण चेहरा उभर आता था मेरे मानस-पटल पर। भोर के समय हल्की-सी झपकी लगी और उसी अवस्था में उस महान् योगी के दर्शन हुए मुझे। उनका जो रूप पहले देखा था मैंने, वह रूप नहीं था। उस समय उनका रूप था एक नवजात शिशु का। कितनी मोहक, कितनी आकर्षक और कितनी सुन्दर छवि थी उस शिशु की, बतला नहीं सकता मैं। वास्तव में मेरे पास उसे व्यक्त करने के लिए शब्द ही नहीं हैं। हाँ, एक बात अवश्य है और वह यह कि शिशु के रूप में उस महान् योगी ने अपनी मूक भाषा में मुझसे जो कुछ कहा उसे समझते देर न लगी मुझे। महारानी गर्भवती थीं। एक मास का गर्भ था उन्हें। महाराज को इसका पता नहीं था। होता भी कैसे? स्वयं महारानी ही अनभिज्ञ थीं अपनी गर्भावस्था से। सचमुच एक महान् योगी का एक महान् चमत्कार था इसमें सन्देह नहीं और जब उस चमत्कार को महाराज ने सुना तो हतप्रभ रह गये वह एकबारगी। विश्वास ही नहीं हो रहा था उन्हें, लेकिन विश्वास करना ही पड़ा अन्त में उनको। अति प्रसन्न थे महाराज। महारानी की प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही नहीं रही। महारानी का नाम था रत्नावली। पचास की अवस्था पार करने के बाद भी उनके रूप, रंग और सौन्दर्य में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था। महारानी रत्नावली, पहली दृष्टि में एक कुलीन विदुषी और सुसंस्कृत महिला लगीं। उन्होंने मुझे बुलाकर सोने की एक चेन और कीमती शाल दी और देते हुए कहा शर्माजी, आप इस राजमहल में एक देवदूत के रूप में पधारे हैं। निश्चय ही आपके सहयोग से इस राजवंश की वंश-परम्परा हमेशा-हमेशा के लिए अन्धकार में विलीन होने से बच गयी। आपको कभी भूल नहीं सकती।

इतना कहने के बाद महारानी रत्नावली का चेहरा न जाने क्यों उदास हो उठा। एकबारगी विचलित-सी हो उठी वह। भय और आतंक की भी मिली-जुली छाया थी वहाँ। मेरी समझ में नहीं आया कुछ। क्या कारण था? पूर्णमासी के खिले हुए चाँद पर कैसे पड़ गयी अचानक राहु की छाया? लेकिन बाद में सब कुछ स्पष्ट हो गया अपने आप। कभी किसी अवसर पर तांत्रिक लामा ने पुत्रोत्पत्ति के निमित्त

घृणित प्रस्ताव रखा था महारानी के सम्मुख। कड़े शब्दों में उस प्रस्ताव को ठुकराते हुए महारानी ने आवेश-भरे स्वर में लामा तांत्रिक को तत्काल राजमहल से निकल जाने का आदेश दे दिया था उस समय।

महारानी से ऐसी आशा नहीं थी। लामा तांत्रिक ने अपना अपमान समझा इसे। क्रोधित हो उठा वह भी। महारानी की ओर आग्नेय दृष्टि से देखते हुए उसने तीन बार भूमि पर पैर पटकते हुए उच्च स्वर में कहा—यदि वह तंत्रसिद्ध है तो कभी भी वंशदीप प्रज्ज्वलित न होने दूँगा इस राजमहल में कभी नहीं, कभी नहीं। वह सिद्ध तांत्रिक की भविष्यवाणी सुनकर सन्न और हतप्रभ हो गयीं एकबारगी। काफी देर तक पाषाणवत् बैठी रहीं अपने स्थान पर। प्रसन्न चेहरा मलिन हो गया एकबारगी। अब क्या होगा? तांत्रिक की तमोगुणी शक्ति से परिचित थीं वह। लेकिन न जाने क्यों और किसलिए महाराज को यह सब नहीं बतलाया महारानी ने। मैं भी इस सम्बन्ध में मौन रह गया।

संयोग ही कहा जायेगा इसे। एक दिन दोपहर के समय लामा तांत्रिक जाने कहाँ से आ गया महल में। घोर आश्चर्य हुआ सभी को। बिल्कुल सकपका-सी गयीं महारानी और आते ही बीच आँगन में खड़ा हो गया और तनकर शंख बजाया उच्च स्वर में। उस समय उसका स्वरूप बिल्कुल किसी नरभक्षी कापालिक जैसा वीभत्स लग रहा था।

शंख-ध्वनि सुनकर थोड़ा विचलित हुए महाराज। समझ में नहीं आया क्यों? शंख-ध्वनि करने के बाद सीधा महाराज के कक्ष में आकर खड़ा हो गया बिना किसी की आज्ञा लिए वह तांत्रिक लामा। महाराज उद्विग्न हो उठे। पहले स्वामी नीलरत्न परमहंसदेव की पाषाण प्रतिमा को झुककर प्रणाम किया और फिर महाराज के सामने कुर्सी पर बैठ गया तनकर वह तांत्रिक। पहली ही दृष्टि में मुझे अशिष्ट और मूर्ख प्रतीत हुआ वह तांत्रिक। निश्चय ही उसने घोर मदिरापान कर रखा था, इसमें सन्देह नहीं। उसकी छोटी-छोटी मिचमिची आँखें नशे के कारण गूलर की तरह लाल हो रही थीं उस समय। शरीर पर उसके लाल वस्त्र था और गले में लाल मूँगे और मरगज की मालाएँ झूल रही थीं। उन मालाओं को ध्यान से देखा मैंने अपनी अनुभवी आँखों से। फिर समझते देर न लगी मुझे। उसी माला में उसकी सभी तांत्रिक सिद्धियाँ थीं। मालाओं के माध्यम से अपनी तांत्रिक सिद्धियों का प्रयोग करता था वह। निश्यच ही एक उच्चकोटि का साधक था तांत्रिक लामा इसमें संदेह नहीं।

कुर्सी पर बैठते ही लामा तांत्रिक ने गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसके नेत्र की भाषा पढ़ते देर न लगी मुझे। वह अपनी किसी विशेष तांत्रिक क्रिया से मुझे समझने का प्रयास कर रहा था वह। उसकी लाल-लाल आँखों से एक अव्यक्त ज्योति निकलकर मेरे सीने को भेदती हुई प्रतीत हुई मुझे। लेकिन अविचल रहा मैं। सम्भवत:

महाराज समझ गये। रहस्यपूर्ण दृष्टि से उन्होंने देखा मेरी ओर। मैं भी मुस्करा दिया। कोई आंतरिक क्रिया नहीं हुई मेरे भीतर। अब रहा न गया मुझसे। लामा तांत्रिक की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए शिष्ट और प्राञ्जल भाषा में मैंने कहा—तंत्र-मंत्र तो मेरा पूरा विश्वास है। लेकिन उसका कोई अलौकिक चमत्कार देखने का अवसर नहीं मिला है मुझे अब तक। उसकी परीक्षा लेने के लिए यह बात कही थी मैंने। निश्चय ही काफी धूर्त और चालाक भी था वह, इसमें सन्देह नहीं। मेरे मन के भाव को समझ गया वह। शराब के नशे से लाल हो उठी आँखों से मेरी ओर देखते हुए कर्कश स्वर में आँखें टेढ़ी कर बोला, ठीक है। अभी तू समझा नहीं है मुझे। जा बगीचे से कुछ ताजे फूल तोड़कर ला। आदेश-भरे स्वर में लामा तांत्रिक ने कहा। राजमहल के लम्बे-चौड़े सुन्दर बाग से कई रंग के कुछ फूल तोड़ लाया मैं। ध्यान से देखा फूलों को लामा तांत्रिक ने और फिर उसे गिना। कुल पच्चीस फूल थे। कुछ देर तक लामा तांत्रिक ने एक थाली में फूलों को रखकर कई बार उन्हें गिना और फिर उसी थाली में ही एक कुण्डली बनायी और उसके बाद फूलों की गणना के अनुसार ग्रहों को स्थापित किया कुण्डली के चक्रों में। ज्योतिष में इस कुण्डली [redacted] कहते हैं। कुण्डली को पढ़-परखकर उसने कहा, जिस जातक की कुण्डली मेरे सामने की थाली में अंकित है उस जातक का जन्म 'प' नामक गाँव में, फलाँ तारीख, फलाँ महीना; फलाँ सन् और फलाँ दिन मध्याह्न में ग्यारह बजकर दस मिनट पर हुआ है। माता पूर्ण विदुषी और पूर्ण गृहिणी किन्तु पूर्ण अशिक्षित होनी चाहिए। जहाँ तक जातक के पिता का प्रश्न है वह पूर्ण व्यावहारिक आकर्षक व्यक्तित्व का और साथ ही प्रतिभासम्पन्न, तथा लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् होना चाहिए।

वैसे देखा जाय तो काल पत्रिका के माध्यम से जो कुछ मेरे सम्बन्ध में लामा तांत्रिक ने बतलाया था, वह सब अक्षरशः सत्य था इसके सन्देह नहीं। लेकिन उससे चमत्कृत नहीं हुआ मैं। मेरे चेहरे पर उपेक्षा का भाव देखकर वह तिलमिला उठा। शायद इसीलिए कि वह चमत्कार दिखाकर प्रभावित न कर सका था मुझे। लेकिन महाराज पूर्ण प्रभावित थे। प्रचलित ज्योतिष के दो मुख्य अंग हैं फलित और गणित। सर्वपरिचित इस ज्योतिष के प्रति एक ज्योतिष और भी है, जिसे 'ज्योतिष तंत्र' कहते हैं। इस ज्योतिष तंत्र का मुख्य विषय है महाकाल, काल और खण्ड काल। महाकाल की सीमा में समाया हुआ काल है और उस काल के तीन खण्ड हैं जिसे भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल कहते हैं। वैसे विचारपूर्वक देखा जाए तो 'वर्तमान' का अस्तित्व है ही नहीं, है भी तो केवल शब्दों में। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है, 'काल' में 'क्षण' हूँ। किसी को भी एक साथ जीवन जीने को नहीं मिलता। मिलता 'एक क्षण' और जब वह एक क्षण जी लेता है तो फिर मिलता है उसे जीने के लिए दूसरा क्षण। ज्योतिष तंत्र का मुख्य आधार है क्षण विज्ञान। अपने आपमें क्षण विज्ञान

अति रहस्यमय और गोपनीय है। वर्तमान है तो मात्र एक क्षण का। इससे अधिक नहीं। जो लोग क्षण विज्ञान के रहस्यों और उसकी गोपनीयता समझते हैं, वे वर्तमान के एक उसी क्षण को पकड़कर मनुष्य के अतीत में सुदूर तक जाया जा सकता है। और उसके भविष्य में भी जिन लोगों ने ज्योतिष तंत्र का गहन अध्ययन किया है और क्षण विज्ञान के गहन रहस्यों से जो लोग भली-भाँति परिचित हैं, वे 'क्षण' का आश्रय लेकर हजारों वर्ष पीछे भूतकाल में प्रवेश कर सकते हैं और इसी भविष्य में भी। फिर भी वह वर्तमान ही रहेगा समय उसके लिए। मान लीजिए कोई एक व्यक्ति है वह वर्तमान के क्षण को पकड़कर महाभारत काल में पहुँच जाता है तो वह उस काल को वर्तमान काल ही समझेगा। लेकिन जब वह उस काल से वापस लौटेगा तब उसे ज्ञान होगा कि मैंने भूतकाल में प्रवेश कर हजारों वर्ष पीछे की यात्रा की थी।

अभी लामा तांत्रिक ने एक चमत्कार दिखाकर मुझे और महाराज को प्रभावित करने की चेष्टा की थी और अब दूसरा चमत्कार दिखाने के लिए उद्यत हो उठा वह। अब तक उसके लिए मदिरा की बोतल और भूने हुए काजू मँगवा लिया गया था। कपट और क्रूरता का मिला-जुला भाव स्पष्ट झलक रहा था लामा तांत्रिक के तांबिये चेहरे पर। उसने पहले कुछ काजू खाये और फिर बोतल उठा कर गट् गट् पी गया एक ही बार में पूरी शराब वह और फिर भर्राये स्वर में बोला—मैं अपनी कोई चीज कहीं भी किसी गुप्त स्थान पर छिपा आऊँ। इस पर मैं महल के भीतर बरामदा पार कर आठ, नौ कमरों से गुजरने के बाद महाराज की निजी लायब्रेरी में बिछे गलीचे के नीचे अपनी अँगूठी छिपा आया। मुझे विश्वास था कि इस कार्य को करते समय किसी ने भी नहीं देखा था।

मैंने सोचा था कि तांत्रिक महाशय ने जिस पद्धति से मेरी कुण्डली बनायी थी उसी के अनुसार यह भी बता देगा कि अँगूठी कहाँ है? परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने कागज का एक टुकड़ा लेकर उस पर एक कोई ताबीज बनाया और फिर उस ताबीज पर कोई मंत्र पढ़कर उसे हवा में उड़ा दिया। वह रहस्यमयी ताबीज सभी लोगों के देखते ही देखते कटी पतंग की तरह हवा में लहराता हुआ महल के भीतर बरामदे की ओर उड़ चला। मैं सहम गया। परन्तु तांत्रिक के आदेश से मैं और महाराज उस उड़ते हुए ताबीज के पीछे चल पड़े। वह ताबीज ठीक उसी रास्ते से, जिधर से मैं गया था, होता हुआ बरामदा और कमरे पार करता हुआ लायब्रेरी के गलीचे पर उसी स्थान पर बैठ गया जहाँ नीचे मेरी अँगूठी दबी हुई थी।

अँगूठी निकालकर मैं तांत्रिक के पास आया और थोड़ा मुस्कराते हुए बोला—वास्तव में आप सिद्ध तांत्रिक हैं।

लामा तांत्रिक से पहले से ही प्रभावित होकर उसे राज तांत्रिक का पद दे दिया था महाराज ने और अब हम दो अविश्वसनीय चमत्कारों को देखकर अत्यन्त

अभिभूत हो उठे थे। उसी दिन राजमहल के विशिष्ट अतिथि-गृह में रहने की व्यवस्था कर दी गयी उसकी स्थायी रूप से। वैसे महारानी को यह बुरा लगा, लेकिन बोलीं कुछ नहीं। वह तांत्रिक अब किसी भी समय उनका अनिष्ट कर सकता है और कभी भी गर्भ में पल रहे शिशु की अपनी शक्ति से कर सकता है हत्या। यह भय बराबर उनको सताने लगा था। लेकिन कर ही क्या सकती थीं वह। उनकी मानसिक स्थिति को समझ रहा था मैं। अवसर पाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया मैंने—आप बिल्कुल चिन्ता न करें। उस महान् योगात्मा पर आप विश्वास रखें। उस महान् आत्मा की योगशक्ति आपकी रक्षा करेगी और यह भी विश्वास रखें कि लामा तांत्रिक की कोई भी शक्ति किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा सकती आपके गर्भ को। मेरे सान्त्वना-भरे शब्दों का प्रभाव पड़ा महारानी पर। वे थोड़ी स्थिर हुईं और उनके चेहरे पर जो भय, आतंक और शंका का मिलाजुला भाव था, उसमें भी कमी आ गयी। उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखा, जिसमें श्रद्धा और विश्वास का भाव था मेरे प्रति। उन्होंने अब अपने शयन कक्ष के सामने वाले हालनुमा कमरे में रहने की व्यवस्था कर दी। ऐसा क्यों किया? यह मेरी समझ में नहीं आया। सम्भव है अपनी सुरक्षा के लिए किया हो उन्होंने।

योगशक्ति अति प्रबल होती है। उसके सामने सभी प्रकार की शक्तियाँ व्यर्थ हैं। मैं अच्छी तरह जानता था कि तांत्रिक लामा महारानी से बदला लेने के लिए ठहरा हुआ है राजमहल में और यह भी अच्छी तरह जानता था कि उसकी कोई भी तांत्रिक क्रिया अनिष्ट नहीं कर सकती थी महारानी का। लेकिन फिर भी महाराज को वस्तुस्थिति से पूर्ण अवगत करा देना चाहता था और सतर्क कर देना चाहता था मैं उस राजतांत्रिक के प्रति भी। लेकिन इसके लिए अवसर ही नहीं मिल पा रहा था मुझे। प्राय: महाराज के साथ चिपका रहता था लामा तांत्रिक हर समय। महाराज भी उसके प्रति अब अधिक दयावान हो उठे थे। निश्चय ही उनकी दृष्टि में वह एक महान् सिद्ध साधक था और था एक महान् तांत्रिक। चमत्कार को सभी नमस्कार करते हैं। शायद यही कारण था कि मेरे प्रति महाराज की कम होती जा रही थी रुचि और व्यवहार में धीरे-धीरे आने लगा था अन्तर। सम्भवत: इसी कारण मेरा मन विषण्ण हो उठा था और हो उठा था मेरा मन चित्त अशान्त। अपने आपको मानसिक रूप से तैयार कर लिया था वापस लौटने के लिए। लेकिन जब भी चलने की तैयारी करने लगता उसी क्षण महारानी का मुरझाया हुआ और क्लान्त चेहरा थिरक उठता मेरे मानस-पटल पर एकबारगी। समझ में नहीं आ रहा था कि करूँ क्या? बड़ी असमंजस की स्थिति थी मेरी उस समय और तभी एक रात!

अमावस की काली अंधेरी रात थी वह। स्याह आकाश में काले-भूरे बादल मँडरा रहे थे। कभी-कभी गरज उठते थे वे और उसी के साथ चमक उठती थी

बिजली भी। पहले छोटी-छोटी बूँदें गिरीं और फिर झम्-झम् कर बरसने लगा आसमान। पुरुवा हवा के लय पर गति पकड़ने लगी थी बारिश। शायद रात के ग्यारह बजे थे उस समय। नींद नहीं आ रही थी मुझे। कमरे की दालान में कुर्सी पर बैठा था मैं सिर पीछे किये हुए देख रहा था आकाश की ओर और तभी मेरी दृष्टि सुदूर आकाश में चमकती हुई वस्तु पर पड़ी। तीव्र गति के बादलों को चीरती आगे बढ़ती चली आ रही थी वह रहस्यमय वस्तु। उसमें से विभिन्न रंगों की किरणें फूट रही थीं और साथ ही सन्-सन् की गम्भीर ध्वनि थी। कड़कती हुई बिजली गरजते हुए बादलों और बारिश का अनवरत शोर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था उस पर। क्षण-प्रतिक्षण आगे बढ़ती ही आ रही थी धूमकेतु की तरह वह। मैंने देखा, वह विचित्र और रहस्यमयी वस्तु सन्-सन् की आवाज करती और विभिन्न रंगों की प्रकाश-किरणें बिखेरती महल की ओर मुड़ गयी थी। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कमरे का दरवाजा बन्द कर दालान पार करता हुआ बाग की ओर आ गया और खड़ा होकर देखने लगा ध्यान से उसकी ओर। अब तक बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका था मेरे सामने। वह रहस्यमयी वस्तु एक देवी की मूर्ति थी जिसके सिर के स्थान पर सर्प का फण था। वह विलक्षण मूर्ति सर्प की कुण्डली पर पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थी। देवी की उस मूर्ति के चारों ओर पीले, नीले और लाल रंग का प्रकाश वलय था जिसमें से किरणें विकीर्ण हो रही थीं और निकल रही थी सन्-सन् की आवाज भी। भय और आतंक से पाषाणवत् हो गया था मैं उस क्षण। सब कुछ समझते देर न लगी मुझे। नागचण्डी की स्वर्ण मूर्ति थी वह। तिब्बत के एक रहस्यमय प्रदेश में एक अति प्राचीन मठ है, जिसे नागचण्डी मठ कहते हैं। मठ के विशाल आँगन में कापालिकों की प्रबल पैशाचिक शक्ति नागचण्डी की काले पत्थर की बनी मूर्ति स्थापित है। लगभग सात फुट ऊँची वह विकराल मूर्ति पंचमुण्डी आसन पर प्राण-प्रतिष्ठित है। निश्चय ही भयंकर संहार-शक्ति है वह तमोगुणी तंत्र मार्ग की।

एकाएक याद आया, वह काली रात अमावस्या की रात थी। निश्चय ही उस रात में लामा तांत्रिक ने नागचण्डी विद्या द्वारा नागचण्डी का आवाहन किया था महारानी का सर्वस्व नाश करने के लिए, इसमें सन्देह नहीं। रोमांचित हो उठा मैं एकबारगी। अब मूर्ति की गति मन्द पड़ गयी थी और उस मन्द गति से महारानी के शयनकक्ष का तीन-चार बार चक्कर काट कर वह लान को पार करती हुई लामा तांत्रिक के कमरे के सामने पहुँची। कमरे का दरवाजा उस समय बन्द था लेकिन मूर्ति के वहाँ पहुँचते ही जोर की आवाज करता हुआ खुल गया अपने आप दरवाजा और वह मूर्ति सनसनाती हुई कमरे के भीतर चली गयी। और उसके दूसरे ही क्षण कण्ठ फोड़कर एक भयानक चीख गूँज उठी पूरे महल में और चिथड़े-चिथड़े होकर

बिखर गयी वातावरण में और उस अन्तःकरण से निकलने वाली चीख सुनकर सारा शरीर रोमांचित हो उठा मेरा। निश्चय ही वह चीख लामा तांत्रिक के मुँह से निकली हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। अब वह आर्तनाद करते हुए तिब्बती भाषा में सम्भवतः अपने गुरु को पुकारने लगा था। थोड़ी देर बाद बन्द हो गया वह करुण आर्तनाद। अपने स्थान पर दण्डवत् खड़ा रहा मैं। तमोगुणी तंत्र का एक अविश्वसनीय किन्तु अपने आपमें अत्यन्त रोमांचकारी और साथ ही अत्यन्त भयंकर घटना घटी थी मेरे सामने। लगा जैसी उसी घटना का साक्षी बनने के लिए किसी अज्ञात शक्ति ने प्रेरित किया था मुझे रामगढ़ में रुकने के लिए। सच है, तांत्रिक शक्ति हो, योग शक्ति हो अथवा भौतिक शक्ति हो, प्राकृतिक शक्ति हो या हो और भी कोई शक्ति, सभी प्रकार की शक्तियाँ अपने आपमें निष्पक्ष और निरपेक्ष होती हैं। शक्ति न शुभ है और न तो अशुभ। उसका उपयोग अथवा प्रयोग शुभ और अशुभ दोनों प्रकार से हो सकता है। हम शक्ति का उपयोग अथवा प्रयोग किस रूप में और किस प्रकार करते हैं, उसी पर उसका परिणाम निर्भर होता है। शुभ के लिए करेंगे तो उसका परिणाम भी शुभ ही होगा और यदि अशुभ के लिए करेंगे तो उसका परिणाम भी अशुभ होगा। वास्तव में शक्ति का उपयोग करने वाले की योग्यता और अयोग्यता पर निर्भर है। शक्ति का सम्बन्ध शुद्ध अन्तःकरण और अशुद्ध अन्तःकरण से भी नहीं है। शक्ति दोनों प्रकार के अन्तःकरण को उपलब्ध हो सकती है। एक बात अवश्य है और वह यह कि अशुद्ध अन्तःकरण शक्ति को पहले प्राप्त कर लेता है, क्योंकि शक्ति की आकांक्षा ही अशुद्धि की आकांक्षा है। शुद्ध अन्तःकरण शक्ति की नहीं, शान्ति की आकांक्षा करता है, जबकि अशुद्ध अन्तःकरण करता है शक्ति की आकांक्षा, शान्ति की नहीं।

योगी का अन्तःकरण शुद्ध होता है और इसलिए उसे परम शान्ति उपलब्ध होती है जो देव-दुर्लभ है। वह परम शान्ति परमात्मा का महाप्रसाद होता है और होती है परम कृपा जिसे योगी माँगता नहीं, उसके लिए याचना भी नहीं करता। वह अपने आप परमात्मा की ओर से उपलब्ध हो जाता है उसे। इसके ठीक विपरीत तंत्र साधक अन्तःकरण शक्ति की कामना करता है। शक्ति का उपलब्ध करना चाहता है क्योंकि उसका अन्तःकरण कामनामय और वासनामय है। उसे साकार करने के लिए शक्ति की है आवश्यकता। शान्ति की कामना परमात्मा-प्रेरित नहीं है। स्वयं साधक की उपज है। स्वयं उसके हृदय की है उपज। इसलिए शक्ति को उपलब्ध होने के लिए उसने साधना की है, उपासना की है। कठिन से कठिन तांत्रिक क्रियायें भी की हैं और इन्हीं सब के फलस्वरूप शक्तिवान होता है वह।

कहने की आवश्यकता नहीं, यही एक योगी और एक तंत्रसाधक में अन्तर है और है भेद। योगी कुछ नहीं करना चाहता, और कुछ माँगना भी नहीं चाहता। उसकी कोई कामना और वासना नहीं। उसे किसी भी रूप में शक्ति की अपेक्षा नहीं

और इसके ठीक विपरीत तंत्रसाधक बहुत कुछ करना चाहता है और बहुत कुछ मांगना चाहता है। उसका अन्त:करण कामनाओं, वासनाओं और आकांक्षाओं से भरा हुआ होता है। उन सबकी पूर्ति चाहता है वह। अपनी भौतिक कल्पनाओं को साकार करना चाहता है वह और इन सबके लिए उसे चाहिए शक्ति।

शक्ति कोई भी हो, वह प्राप्त होती है परिश्रम से, प्रयत्न से, साधना से, उपासना से और विभिन्न कठिन तांत्रिक क्रियाओं से।

जो वास्तव में उच्चकोटि के तंत्रसाधक हैं वे अपनी साधना सीमा पर पहुँचकर 'योग' का आश्रय स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए कि परमात्मा को जो परम अनुग्रह, परम कृपा, परम अनुकम्पा और परम करुणा, परम शान्ति के रूप में एक योगी को प्राप्त होता है, वह उसे भी प्राप्त हो जिसमें निहित है परम निर्वाण। लेकिन वह परम शान्ति तभी प्राप्त होगी जब तंत्रसाधक के इष्ट की कृपा होगी और होगी अनुकम्पा और यह तभी होगी जब उसका चरित्र पवित्र, निर्मल और स्वच्छ होगा। योग मार्ग का साधक हो या हो तंत्र मार्ग का, चरित्र मुख्य है और है मूल्यवान। यदि चरित्रबल नहीं है तो न परम शान्ति प्राप्त होगी न तो उपलब्ध होगी शक्ति ही। शक्ति निरपेक्ष है, यह स्वीकार कर उसकी उपलब्धि मान भी ले तो वह शक्ति स्वयं के ही नाश का कारण बन जायेगी जैसा लामा तांत्रिक के साथ घटित हुआ। उसके पास 'शक्ति' थी किन्तु चरित्रबल नहीं था, जिसके फलस्वरूप उसी की शक्ति उसी के विनाश का कारण बन गयी अन्त में।

तांत्रिक महाशय का आर्तनाद सुनकर महल के सभी लोग जाग गये थे। महाराज तत्काल वहाँ आ गये। महारानी भी अपना दरवाजा खोल कर बाहर निकल आयी और लोग भी इकट्ठा हो गये वहाँ। महाराज सशंकित दृष्टि से चारों ओर देख रहे थे सिर घुमाकर। उस समय भय और आतंक की मिलीजुली छाया स्पष्ट रूप से दिखलायी दे रही थी उनके चेहरे पर। लामा तांत्रिक का दरवाजा भीतर से बन्द था। सभी लोग बाहर खड़े जिज्ञासा और कौतूहल के भाव से बन्द दरवाजे को देख रहे थे। दरवाजा खोलकर भीतर जाने की हिम्मत किसी की नहीं हो रही थी। भीतर की स्थिति सभी के लिए अज्ञात थी, यदि ज्ञात थी तो केवल मुझे। पूरी तरह समझ गया था कि उस प्रचण्ड शक्ति ने सर्वनाश कर दिया होगा उस घोर तमोगुणी तंत्रसाधक का, इसमें सन्देह नहीं। किसी प्रकार दरवाजा खोला गया, लेकिन किसी की भीतर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी उस भयप्रद अवस्था में। भीतर अंधेरा भी तो था। सभी एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। प्रकाश की व्यवस्था की गयी। मैं ही अन्दर गया। हे भगवान्, भीतर का दृश्य इतना लोमहर्षक, इतना वीभत्स, इतना भयानक और इतना रोमांचकारी था कि उसका वर्णन शब्दों में तो किया ही नहीं जा सकता।

लामा तांत्रिक का नग्न शरीर पसरा हुआ था जमीन पर। हाथ और पैर फैले हुए थे। गूलर की तरह लाल आँखें बाहर की ओर निकली हुई थीं। मुँह खुला हुआ था,

जिसमें से बहुत ताजा खून निकल कर सीने पर से होता हुआ फैला हुआ था जमीन पर। जीभ भी निकली हुई थी बाहर और काली पड़ चुकी थी। बड़ा ही भयानक और डरावना दृश्य था वह, इसमें सन्देह नहीं। मेरी दृष्टि गले पर पड़ी, घोर आश्चर्य हुआ। गले की सिद्ध तांत्रिक मालाएँ एक ओर झूल गयी थीं टूटकर, समझ गया मैं। योगबल ने तांत्रिक शक्ति पर प्राप्त कर ली थी विजय। देखते ही देखते गलने लगा मोम की तरह लामा तांत्रिक का पूरा शरीर और उसमें से निकलने लगी दुर्गन्ध भी। नाक पर हाथ रखकर बाहर निकल आया मैं। महाराज ने उत्सुक होकर जिज्ञासु भाव से मेरी ओर देखा। अब रहा न गया मुझसे। शुरू से लेकर अन्त तक कथा सुना दी उन्हें मैंने, जिसे सुन कर हतप्रभ और स्तब्ध हो गये वह एकबारगी। सिर घुमाकर बगल में खड़ी महारानी की ओर देखा उन्होंने। जैसे वह जानना चाहती हो कि क्या वास्तव में उनके सामने लामा तांत्रिक ने घृणित कुत्सित प्रस्ताव रखा था और दी थी धमकी भी। स्वीकारोक्ति के भाव से सिर अपना झुका लिया महारानी ने।

बुद्धिमान और विवेकशील पुरुष थे महाराज। जिस लामा तांत्रिक को उन्होंने राजतांत्रिक का पद दिया था, उसके जीवन का सारा कलुष उनके सामने प्रकट हो गया था अब। एक बार घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से कमरे में पड़े लामा तांत्रिक के शव की ओर उन्होंने देखा और फिर धीरे-धीरे अपने कक्ष की ओर बढ़ गये।

●

७

जब एक मृतात्मा ने बदला लिया

काशी के केदारघाट के ऊपर अति प्राचीन और साथ ही अति प्रसिद्ध केदारेश्वर महादेव का मन्दिर है। केदार घाट के बगल में थोड़ी ही दूर पर है हरिश्चन्द्र घाट का महाश्मशान। लगभग दो दशक पहले एक भिखारिन टाट बिछाकर और हाथ में अल्युमिनियम का कटोरा लिये कभी केदारेश्वर मन्दिर के सामने तो कभी हरिश्चन्द्र घाट की धूल-भरी सीढ़ियों पर बैठी भीख माँगती हुई दिखलायी देती थी। उस भिखारिन की आयु पचपन-साठ के आसपास थी। सूखा निचुड़ा-सा शरीर, गन्दे और उलझे हुए सिर के बाल और मरघटी काया पर कई जगहों से फटी-पुरानी और मैली-कुचैली साड़ी, बगल में एक छोटी-सी लाठी और गन्दी-सी गठरी। भिखारिन का सिर हमेशा सामने की ओर झुका रहता था इसलिए उसका चेहरा कोई नहीं देख पाता था। दोनों पैर सिकोड़े सबेरे-शाम तक एक ही मुद्रा में बैठी रहती थी टाट पर वह। जब कभी मैं केदारघाट की ओर जाता और उस निरीह भिखारिन को देखता तो बरबस करुणा और दया से द्रवित हो उठता मेरा मन। और फिर न जाने क्या-क्या सोचने लगता था मैं। इसे संयोग ही कहा जाएगा, एक दिन सायंकाल के समय श्मशान घाट की सीढ़ियाँ उतर कर केदारघाट की ओर जा रहा था मैं और तभी सामने लाठी टेकती आती हुई वह भिखारिन दिखलायी दी मुझे। उसका चेहरा ऊपर की ओर उठा हुआ था। शायद आकाश की ओर देख रही थी वह। उसके चेहरे पर नजर पड़ते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं। चेहरा पहचाना-सा लगा मुझे। हाँ, पहचानने में गलती नहीं हुई थी कहीं मुझसे। वह भिखारिन और कोई नहीं, सुजाता थी, श्रीमती सुजाता पाल और फिर तीस वर्ष पहले की सारी घटनाएँ चलचित्र की भाँति घूम गयीं मेरे मानस-पटल पर।

सावन-भादो का महीना।

आकाश में काले-भूरे बादल छाये हुए थे। रह-रह कर बिजली चमकती और उसके बाद गरज उठते मेघ। लेकिन पानी बरस नहीं रहा था। हवा अवश्य तेज थी। रात का पहला पहर था। हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान में घोर नीरवता पसरी हुई थी। कभी-कदा श्मशान का कोई मरकटहा आवारा कुत्ता ऊपर सिर उठाकर रोने लग जाता था, जिससे वह नीरवता भंग हो जाती थी कुछ क्षण के लिए।

पहले से ही बनी चिता में घी, चन्दन, राल, गुग्गुल आदि डाला गया और फिर उस पर रखा गया कफन में लिपटा हुआ रघुनाथ पाल का निर्जीव शरीर। मुखाग्नि दी गयी लेकिन वह जली नहीं। इस प्रकार चार-पाँच बार मुखाग्नि देने का प्रयास किया गया। हवा अवश्य तेज थी। मुखाग्नि को जल जाना चाहिए था पर सभी प्रयास विफल रहे। चिता में आग न लग सकी। जो लोग शव-यात्रा में आये हुए थे वे सभी चिता में आग न लगने के कारण आश्चर्यचकित थे और भयभीत भी। जितने मुँह उतनी बातें और तभी बुरी तरह बादल गरजा और बिजली की कड़कड़ाहट के साथ झमझम कर शुरू हो गयी बारिश हवा के लय पर। सभी लोग बारिश से बचने के लिए राजा हरिश्चन्द्र के मन्दिर के दालान में आकर खड़े हो गये। अब क्या किया जाय? यह किसी की समझ में नहीं आ रही थी बात। सभी स्तब्ध और विमूढ़ से एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। लगभग एक घंटे के बाद बारिश थमी और बारिश थमते ही न जाने कैसे अपने आप आग सुलगने लगी चिता में। और कुछ ही क्षण के बाद लाल-पीली लपटें उठने लगीं और जलने लगी चिता धू-धू कर। सभी लोग आश्चर्यचकित थे। सभी लोगों के मन में कौतूहल और जिज्ञासा का भाव था। जिस सूखी चिता में इतने प्रयत्न से भी आग लगायी न जा सकी, वह अब वर्षा के पानी से भींग कर भी अपने आप ऐसे जल रही थी, जैसे उस पर पानी नहीं, पेट्रोल बरसा हो।

पूर्व रेलवे में टिकट चेकर थे रघुनाथ पाल। उन दिनों मेरा कलकत्ता आना-जाना अधिक था। उस समय मेरे लिए सबसे अच्छी ट्रेन थी पंजाब मेल। इसलिए कि वाराणसी होकर जाती थी वह हावड़ा और उसमें एक बोगी होती थी ए.सी. प्रथम श्रेणी की। हफ्ते में तीन दिन ड्यूटी लगती थी पंजाब मेल में रघुनाथ पाल की। यात्रा-काल में ही उनसे मेरा परिचय हुआ था और फिर वह साधारण परिचय धीरे-धीरे मित्रता में परिवर्तित हो गया। मुगलसराय में टिकट चेक करने के बाद मेरे कूपे में आकर बैठ जाते थे पाल महाशय और फिर उनकी रम की बोतल खुलती और मेरा खुलता टिफिन का डिब्बा और शुरू हो जाता सिलसिला बातचीत और खाने-पीने का। पटना में वे उतर जाते और मैं सोने का उपक्रम करने लगता।

रघुनाथ पाल की मृत्यु का शोक उनकी मित्र-मण्डली में सभी को था, सभी दु:खी और संतप्त थे। पैंतालीस-पचास की अवस्था, शरीर से कमजोर पर अत्यंत मृदुभाषी, हँसमुख और मिलनसार व्यक्ति थे रघुनाथ पाल। किसी कारणवश रेलवे क्वार्टर नहीं मिल सका था उन्हें इसीलिए स्टेशन के समीप किराये के मकान में रहते थे वह। वैसे सुख-समृद्धि से सम्पन्न और धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण परिवार था रघुनाथ पाल का। लेकिन अभी तक पुत्र का मुख नहीं देख सके थे वह। इसका भारी दु:ख था उनको। पत्नी का नाम था लीला पाल। टी०बी० की पुरानी मरीज थी लीला

पाल। दवा-इलाज से कोई लाभ नहीं। दिनों-दिन हालत बिगड़ती ही जा रही थी उनकी। विवश और असहाय थे रघुनाथ पाल।

एक दिन हालत काफी नाजुक हो गयी थी लीला पाल की। रघुनाथ पाल कुछ सोचते समझते कि उसके पहले ही जीवनसंगिनी ने छोड़ दिया साथ हमेशा-हमेशा के लिए उनका। पुत्र का अभाव और पत्नी का वियोग सहन न कर सके एक साथ, विक्षिप्त हो जाना स्वाभाविक ही था। निश्चय ही काफी गहरी चोट लगी थी उस सीधे सरलचित्त व्यक्ति को। दारू का सेवन अधिक करने लगे थे महाशय। जब देखो तब आँखें गूलर की तरह लाल और हर समय नशे में धुत। सभी लोगों ने समझाया-बुझाया, लेकिन कोई असर नहीं। अन्त में हार-थक कर परिवार के लोगों ने रघुनाथ पाल की दूसरी शादी कर देने का निश्चय कर लिया और फिर एक दिन शुभ लग्न में शादी हो गयी महाशय की। पत्नी का नाम था सुजाता। सभ्य, सुसंस्कृत और पढ़ी-लिखी थी वह। सुन्दर तो थी ही। लेकिन थी अत्यंत दीन-हीन गरीब परिवार की। आयु रही होगी यही तीस के लगभग। सुजाता को पाकर निहाल हो गये रघुनाथ पाल। सारे दु:ख-कष्ट भूल गये एकबारगी वह। सुजाता ने उनके मन में एक नवीन आशा का संचार कर दिया था और वह आशा थी पुत्र की। रघुनाथ पाल को इस बात का भरोसा हो गया था कि सुजाता उनका वंश अवश्य चलायेगी।

टिकट चेकर होने के कारण रघुनाथ पाल हफ्ते में दो दिन घर रहते और शेष दिन ड्यूटी। पहले तो सुजाता काफी घबराती थी। सर्दी की लम्बी ठंडी रातें किसी तरह काटने से भी नहीं कटती थीं। फिर धीरे-धीरे एकान्त की अभ्यस्त हो गयी वह। रघुनाथ पाल उसका पूरा-पूरा ख्याल रखते थे। उसके अनुरोध और उसकी आवश्यकता को तुरन्त पूरी करने का प्रयत्न करते थे वह। सुजाता को वह जितना चाहते थे और जितना प्यार करते थे उतना ही सुजाता भी उनको चाहती थी और प्यार करती थी। सचमुच पति-पत्नी के बीच गहरा लगाव था इसमें कोई सन्देह नहीं। जब रघुनाथ पाल की मृत्यु हुई और उनका शव घर लाया गया तो बोझिल हो उठा था वातावरण उस समय। किसी से देखी नहीं जा रही थी सुजाता की दयनीय स्थिति। हाहाकार कर उठी थी उस निरीह अबला की आत्मा। शव के ऊपर सिर पटक-पटक कर करुण स्वर में विलाप कर रही थी सुजाता। आँखें सूज गयी थीं उसकी। न उसे अपने का ध्यान था न अपने कपड़े का। निश्चय ही विक्षिप्त हो उठी थी वह इसमें सन्देह नहीं। पर न जाने क्यों, सुजाता के विलाप के स्वर में मुझे वह करुणा और वह वेदना महसूस नहीं हुई जो एक दु:खी, पीड़ित, संतप्त और व्यथित हृदय से निकलती है। एक विशेष चमक दिखलायी दे रही थी उसकी आँसुओं से भरी आँखों में उस समय। जिसने एकबारगी चौंका दिया था मेरी आत्मा को। क्या मेरी शंका निर्मूल तो नहीं थी।

उस रात ठीक से सो न सका मैं। भोर के समय हल्की-सी झपकी लगी और उसी अवस्था में एक क्षण के लिए रघुनाथ पाल को देखा मैंने। क्रोध, पश्चात्ताप और घृणा के मिले-जुले भाव थे उस समय उनके चेहरे पर।

रघुनाथ पाल की मित्र-मण्डली में एक वकील साहब भी थे। नाम था गणेशप्रसाद मिश्र। अपने जमाने के जाने-माने वकील थे मिश्राजी। मुझसे उनका अच्छा परिचय था। उसी समय नहा-धोकर मिश्राजी के घर पहुँचा मैं। सुबह के नौ बज रहे थे उस समय। अपने चैम्बर में ही मिल गये मिश्राजी। अपने परम मित्र रघुनाथ पाल की असामयिक मृत्यु से वे भी काफी दु:खी थे। मेरे मन में जो शंका-कुशंका थी वह बतलायी मैने और अन्त में स्वप्न की चर्चा की मिश्राजी से। सब कुछ सुन लेने के बाद अपना काला कोट ठीक करते हुए मिश्राजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"मुझे भी दाल में काला लगता है कुछ शर्माजी।" थोड़ा रुक कर मिश्राजी कुछ सोचते हुए बोले—"मान लें कि आपकी शंका और मेरा भ्रम निर्मूल है तो सुजाता का बार-बार पति की जलती हुई चिता में कूदने का प्रयास करना और अपना हाथ जला लेना आदि को क्या समझा जायेगा?"

बस यहीं आकर आगे कुछ सोचने-विचारने का रास्ता बन्द हो जाता है। सत्य क्या है और ... मेरा वाक्य अभी पूरा ही नहीं हुआ था कि मिश्राजी के चैम्बर में लगा शीशे का दरवाजा अपने आप दो बार बन्द हुआ और दो बार जोर की आवाज करता हुआ खुला। हम दोनों ने एक साथ सिर घुमा कर दरवाजे की ओर देखा। भौंचक्के रह गये हम दोनों। आश्चर्य, कौतूहल और भय का मिला-जुला भाव उभर आया हम दोनों के चेहरे पर। हे भगवान्, क्या देख रहा था मैं? निश्चय ही अविश्वसनीय और काल्पनिक लगेगी मेरी बात पाठकों को लेकिन सामने जो देख रहा था उस समय, वह परम सत्य था इसमें सन्देह नहीं। किसी भी प्रकार का भ्रम अथवा सन्देह नहीं था। दोनों हाथ से दरवाजा पकड़े निर्विकार भाव से खड़े थे रघुनाथ पाल मेरे सामने। हल्की-सी मुस्कराहट थी उनके होंठों पर लेकिन उनका हँसता और खिला हुआ चेहरा निस्तेज और पीला हो गया था। आँखों में ऐसी वेदना की गहरी छाप थी, जो देखने वाले के हृदय को चीर कर रख देती है एकबारगी।

मिश्राजी तो बिल्कुल सन्न हो चुके थे। बिना हिले-डुले अपनी कुर्सी पर पाषाणवत् चुपचाप बैठे थे वह और पथरायी आँखों से देख रहे थे रघुनाथ पाल को।

किसी प्रकार अपने आपको सम्भाला मैंने और फिर हकलाते हुए बोला—"आप.... आप तो मर चुके हैं.... फिर....," इसके आगे कुछ बोला न गया मुझसे।

अपनी संयत और मद्धिम आवाज में दरवाजे पर खड़े ही खड़े रघुनाथ पाल बोले—"हाँ! शर्माजी आप लोग बिल्कुल मत घबराइये। भयभीत भी होने की जरूरत नहीं। रघुनाथ पाल ही हूँ मैं। वही रघुनाथ पाल जिसकी हत्या कर दी गयी थी और जिसकी लाश को आप सब लोगों ने हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में जलायी थी।"

''हत्या? आपकी हत्या....'' चौंक कर बोले मिश्राजी।

''हाँ! हत्या, सब कुछ सुनाऊँगा। बिना सुनाये नहीं जाऊँगा।'' एक लम्बी साँस लेकर बोले रघुनाथ पाल।

''वैसे तो दुनिया की नजर में मर चुका हूँ लेकिन अपनी नजर में जीवित हूँ मैं।''

''क्या आप जीवित हैं''—इस बार मेरी बारी थी चौंकने की।

''हाँ, आपको सन्देह नहीं होना चाहिये। सचमुच जीवित हूँ मैं और तब तक जीवित रहूँगा जब तक मेरा काम पूरा नहीं हो जाता। और तभी मेरी आत्मा को शांति मिलेगी और तभी मुक्त भी होगी मेरी आत्मा।''

मैं और मिश्राजी दोनों मुँह बाये सुन रहे थे रघुनाथ पाल की अनोखी अविश्वसनीय और साथ ही आश्चर्यजनक कथा। रघुनाथ पाल अपनी धुन में कह रहे थे—''मेरे पास समय बहुत ही कम है और काम बहुत करने हैं। आप दोनों मेरे दोस्त हैं और इसी नाते मिश्राजी, आपसे कुछ सहायता चाहता हूँ मैं।'' और फिर वह आगे कदम बढ़ाकर बोले—''चलिये अन्दर के कमरे में बैठें।''

हम दोनों ने किसी प्रकार अपने को सम्भाला और उन्हें अन्दर वाले कमरे में ले गया। भीतर आकर उन्होंने धीरे से कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया और कुर्सी पर बैठ गये वह। उनके सामने यंत्रचालित-से बैठ गये एक कुर्सी पर मिश्राजी भी। मैं नहीं बैठा। अपने स्थान पर पाषाणवत् खड़ा रहा मैं। सच बात तो यह थी कि मेरे मन और मस्तिष्क से वह भय और आतंक दूर नहीं हुआ था जो रघुनाथ पाल को देखकर छा गया था मुझ पर।

रघुनाथ पाल ने दोनों अपने हाथों से अपना चेहरा रगड़ा, एक लम्बी साँस ली और फिर आगे कहना शुरु किया—''मिश्राजी, जल्दी करिये। आश्चर्यचकित मत होइये। मैं आपके लिए वही रघुनाथ पाल हूँ जिसे आप अपने सगे भाई के समान मानते थे और प्रेम करते थे। मेरे पास समय बहुत ही कम है।''

रघुनाथ पाल की आवाज में स्नेह और अपनत्व-भरे विनम्र आदेश का पुट था। यह सुनकर मिश्राजी थोड़ा आगे खिसक आये और बोले—''कहिये। मैं आपके किस काम आ सकता हूँ।''

रघुनाथ पाल उदास आँखों से उनको देखते हुए बोले—''आपको याद होगा कि मैंने आपसे एक वसीयत लिखवायी थी। उसमें मैंने अपनी सभी जमीन-जायदाद, हर चीज, ग्रेचुटी, प्राविडेंट फण्ड आदि की एकमात्र उत्तराधिकारिणी सुजाता पाल को करार दिया था।''

''जी हाँ! लेकिन ....''

बात काट कर रघुनाथ पाल बोले—"लेकिन मैं उस वसीयत को कैन्सिल करके एक और वसीयत लिखाना चाहता हूँ। आपके पास भी तो पहली वसीयत की एक कॉपी है, उसे जल्दी निकालिये।"

मिश्राजी उठे, गोदरेज की आलमारी खोली और वसीयत का कागज निकाल कर उनके सामने रख दिया उन्होंने।

बस ठीक है, रघुनाथ पाल बोले। फिर अपनी जेब से असल वसीयतनामा निकाल कर कहने लगे—"इसे अभी-अभी अपने घर से चोरी करके लाया हूँ।" फिर मुस्करा कर बोले—"कितनी अजीब बात है, आज अपने ही घर में मुझे चोरी करनी पड़ी। हाँ, तुम्हारे पास माचिस है?"

मिश्राजी ने चुपचाप माचिस निकाल कर उनके सामने रख दी। उन्होंने दोनों दस्तावेजों को आग लगाकर पास पड़ी प्लास्टिक की टोकरी में डाल दिया। फिर वह बोले—"अब आप जल्दी से दूसरी वसीयत लिखिये। और हाँ! उसमें चार दिन पहले की तारीख डालियेगा क्योंकि दुनिया की नजरों में दो दिन पहले का मर चुका हूँ मैं। और उसमें आज की तारीख लिखी गयी तो यह वसीयतनामा जाली न होते हुए भी जाली समझा जाएगा।"

मिश्राजी ने यंत्रचालित-सा उनके हर आदेश का पालन किया। रघुनाथ पाल ने दूसरा वसीयतनामा लिखवा कर नीचे अपना हस्ताक्षर कर दिया। मिश्राजी ने भी कर दिया और गवाह के रूप में मैंने भी कर दिया अपना हस्ताक्षर।

रघुनाथ पाल ने अपने इस दस्तावेज में वसीयत की कि उनकी सारी जमीन-जायदाद, सारी चीज, गाँव के दोनों मकान तथा इन्श्योरेन्स के पचास हजार रुपये, ग्रेचुटी, प्रॉविडेण्ट फण्ड आदि सब कुछ राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दे दिया जाए।

मैं अवाक् रघुनाथ पाल का मुँह देखता रहा। क्या यह सुजाता के लिए कुछ नहीं छोड़ जायेंगे? जिस सुजाता से इतना प्रेम करते थे, जिसे हद से ज्यादा चाहते थे, क्या उसे नितांत निर्धन और बेसहारा कर जायेंगे यह? इस विचार के साथ ही सुजाता की आँखों की चमक मेरे मस्तिष्क में कौंध-सी गयी और उसी के साथ कानों में गूँज उठे रघुनाथ पाल के ये शब्द कि उनकी हत्या कर दी गयी। अवश्य कोई रहस्य है और है अवश्य कोई षडयंत्र इसमें सन्देह नहीं। अब तक काफी सम्भाल लिया था मैंने अपने आपको। आखिर पूछ ही बैठा—"तो क्या आप सुजाता भाभी के लिए कुछ भी छोड़ न जायेंगे?"

"नहीं, कुछ भी नहीं," रघुनाथ पाल कुछ तीखे स्वर में बोले और उनके जर्द चेहरे पर कुछ सुर्खी उभर आयी—"आप नहीं जानते शर्माजी, मैंने अपना तन-मन-धन सब कुछ समर्पित कर दिया उस पिशाचिनी को लेकिन .... मेरे पास समय नहीं है पूरी कहानी विस्तार से कहने के लिए फिर भी आज सबके विस्मय और कौतूहल

को शान्त करने के लिए संक्षेप में सब कुछ बतलाऊँगा। यह तो आप लोग जानते ही हैं कि जब लम्बी चेकिंग ड्यूटी पर जाता था तो महीने में मुझे कई रात बाहर रहना पड़ता था। कोई छः महीने पहले की बात है। अमृतसर से स्थानान्तरित होकर एक टिकट चेकर मुगलसराय आया। उसका नाम था सदानन्द। उसकी उम्र यही रही होगी तीस के लगभग। सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व था ही उसका, इसके अतिरिक्त हँसमुख और मिलनसार भी था। पहले तो उससे मेरा औपचारिक परिचय हुआ फिर धीरे-धीरे वह साधारण परिचय मित्रता में बदल गया।

"कोई पाँच महीने पहले सुजाता को अपनी बीमार माँ को देखने के लिए दिल्ली जाना था। संयोग ही कहिए सदानन्द की ड्यूटी दिल्ली तक उसी ट्रेन में लगी थी। स्वभावतः मित्रता के नाते सुजाता को उसके सुपुर्द कर दिया कि वह उसे हिफाजत से नयी दिल्ली उतार कर तिलक नगर पहुँचा दे। उस एक लम्बी यात्रा में ही दोनों एक-दूसरे के साथ ऐसे घुल-मिल गये कि जैसे पति-पत्नी हों। स्टेशन से तिलक नगर नहीं गयी सुजाता। एक होटल में ठहर गयी सदानन्द के साथ उस दिन। जब मैं घर पर होता, मिलने के लिए सदानन्द आता। मुझे कभी भी उन दोनों को लेकर किसी तरह की कोई शंका नहीं हुई। जितनी देर सदानन्द घर पर रहता, सुजाता रसोई से या अपने कमरे से कभी बाहर नहीं निकलती। मेरे कहने पर भी नहीं। चाय आदि बैठक में ले आने का आग्रह तो वह साफ इन्कार कर देती कि वह गैर मर्दों के सामने निकलने में संकोच और लज्जा महसूस करती है। उस समय बजाय क्रोध के मेरे हृदय में उसके इस इनकार से अत्यधिक सुख की अनुभूति होती। आनन्द से मेरा मन प्रसन्न हो उठता। मैं सोचता कि कितना भाग्यशाली हूँ मैं कि इस प्रौढ़ावस्था में सुजाता जैसी सुशील, नेक, प्यारी पत्नी मिली है मुझे। मैं हर किसी से बड़े गर्व और सम्मान के साथ उसका जिक्र करता। पर आज सोचता हूँ कि वह केवल उसका कुशल अभिनय था। वह और सदानन्द अपने इस सफल अभिनय से मेरी आँखों में धूल झोंक रहे थे। अब मेरी ड्यूटी पंजाब मेल में अमृतसर से मुगलसराय तक हो गयी थी। महीने में कुल सात-आठ दिन घर में रह पाता मैं। इधर मैं गाड़ी में सवार होता और उधर मेरे घर जा पहुँचता सदानन्द। निश्चित समय के पहले मेरे घर लौटने की सम्भावना ही न रहती थी। वे दोनों मेरी अनुपस्थिति में रंगरेलियाँ मनाते। मैं कब ड्यूटी पर जाऊँगा और कब वापस लौटूँगा, इसकी जानकारी पूरी तरह थी सदानन्द को। इसलिए मेरे लौटने के एक दिन पहले ही छोड़ देता था मेरा घर वह। मेरे साथ दोनों विश्वासघात कर रहे थे—मित्र भी और पत्नी भी और मैं था कि दोनों को गंगाजल के समान पवित्र समझ रहा था। धीरे-धीरे दोनों को मेरा अस्तित्व खटकने लगा। मैं उन दोनों के लिए काँटा था। सदानन्द चाहता था कि मुझ काँटे को किसी तरह हमेशा के लिए दूर कर दिया जाये ताकि वह मेरी जमीन-जायदाद और धन-

दौलत के अतिरिक्त मेरी सुन्दर पत्नी का स्वतन्त्र रूप से मालिक बन जाये। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब सदानन्द ने अपने मन की बात सुजाता को बतलायी तो वह भी तुरन्त सहमत हो गयी। अब दोनों मिल कर इस समस्या पर विचार करने लगे कि मुझे इस तरह ठिकाने लगाया जाये कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। उन दोनों पर कोई सन्देह भी न करे।

"थकावट दूर करने के लिए कभी-कदा दो-तीन पेग शराब पी लिया करता था मैं। मेरी इस आदत से परिचित था सदानन्द। उस दिन पंजाब मेल दो घण्टे लेट से पहुँची थी मुगलसराय। मैं चेकिंग करने के बाद थोड़ा आराम करने के विचार से एक खाली कूपे में जाकर बैठ गया। गाड़ी चलने वाली ही थी कि न जाने किधर से सदानन्द आ गया कूपे में। लगभग एक महीने बाद मेरी भेंट उससे हुई थी। "इस समय यहाँ कैसे?" उत्सुक होकर पूछा मैंने।

"यह सब बाद में पूछना," मुस्करा कर सदानन्द बोला—"आज सोलन की एक बोतल हाथ लग गयी है। थोड़ा खाने का भी सामान है। मिल कर पीयेंगे और गपशप भी करेंगे। पटना से वापस लौट जाऊँगा।"

"सोलन मैंने कई बार पी है। पर उस जैसी नशीली शराब जिन्दगी में कभी नहीं पी थी मैंने। पहली ही बार में डबल पेग पी गया मैं। और जब नशा गहराने लगा तो मुझे लगा कि इतना बड़ा पेग लेकर गलती कर बैठा हूँ मैं। मैंने अपने मन की बात सदानन्द को बतलायी तो हँस कर वह बोला—"अरे बन्धु, मिलिटरी कैंटीन की है यह सोलन, खालिस बिल्कुल खालिस। ऐसी शराब तुम्हें जिन्दगी में कभी नहीं मिलेगी और फिर उसने एक डबल पेग बना कर थमा दिया मुझे और नशे के सुर में उस डबल पेग को भी गले के नीचे उतार दिया मैंने। गाड़ी उस समय आरा पहुँचने वाली थी। नशा गहरा होता जा रहा था। सिर झनझना रहा था मेरा। कुछ समझ में नहीं आ रहा था करूँ क्या। पाँच मिनट रुक कर गाड़ी आगे के लिए चल पड़ी। धीरे-धीरे रफ्तार बढ़ने लगी उसकी। थोड़ी देर बाद सदानन्द अपनी जगह से उठा और गाड़ी का दरवाजा खोल कर दोनों डण्डे थामे झुक कर कुछ देखने लगा। अचानक कुछ सहम कर आश्चर्य के स्वर में वह बोला—"यार पाल! यह पिछले डिब्बे के पहियों से आग-सी कैसी निकल रही है। कहीं किसी कम्पार्टमेंट में आग तो नहीं लग गयी?"

"झटपट लड़खड़ाता हुआ उठा मैं और डण्डा थाम कर मैंने बाहर देखने के लिए सिर झुकाया ही था कि मेरे सिर पर कोई भारी चीज पहाड़ की तरह गिरी और मैं उसके नीचे दब कर तुरन्त बेहोश हो गया और जब चेतना लौटी तो यह देख कर आश्चर्यचकित हो उठा कि रेलवे लाइन पर पड़ा हुआ है मेरा शरीर। उसके तीन टुकड़े हो चुके थे, जिनके चारों ओर खून ही खून फैला हुआ था। उस समय मैं

अपने व्यक्तित्व का बोध स्थूल शरीर जैसे ही एक ऐसे शरीर में कर रहा था जो कुहरे जैसा था। मगर उस शरीर में मुझे काफी शांति का अनुभव हो रहा था उस समय। उसी समय एक गाड़ी धड़धड़ाती हुई आयी और मेरे शरीर के टुकड़ों को रौंदती हुई चली गयी। अपने शरीर की दशा देख कर काफी दुःख हुआ मुझे। और तभी सदानन्द का वह षड्यन्त्र समझ में आया। मैंने उसका क्या बिगाड़ा था, जो उसने धोखे से मुझे मारा? और फिर मुझे सुजाता का ख्याल आया। और मैं अपने कटे हुए शरीर को वहीं छोड़ कर पल भर में अपने घर जा पहुँचा। देखा—सदानन्द मेरे घर के दरवाजे पर खड़ा कालबेल बजा रहा था। दरवाजा खुला और सुजाता ने मुस्कराते हुए बड़े प्यार से उसका स्वागत किया और, फिर दोनों आलिंगनबद्ध हो गये और चुम्बनों का आदान-प्रदान करने लगे। दोनों की अवस्था देख कर ऐसा लगा जैसे वर्षों से बिछड़े दो प्रेमी मिले हों। आश्चर्य की बात तो यह थी कि वे दोनों न तो मुझे देख ही सकते थे और न तो मेरी उपस्थिति का अनुभव ही कर सकते थे। पर मैं सब कुछ देख-सुन और समझ रहा था। कुछ देर तक आलिंगनबद्ध खड़े रहने के बाद दोनों कमरे में चले गये और बिस्तर पर लेट गये और उसके बाद जो दृश्य मैंने देखा उसने एकबारगी विचलित कर दिया मुझे। लेकिन कर ही क्या सकता था भला मैं। विवश था, लाचार था। उसी अवस्था में सदानन्द बोला—"आज मैंने वह काँटा सदैव के लिए निकाल दिया और इस सफाई से कि किसी को कभी भी पता ही नहीं चलेगा कि हत्या थी या महज एक दुर्घटना।"

"क्या? सदानन्द से अलग होती हुई कुछ चौंक कर सुजाता बोली। "

"अभी-अभी मैं बक्सर से लौटा हूँ। रघुनाथ पाल को खत्म कर दिया है। पुलिस और सभी लोग यह समझेंगे कि शराब के नशे में धुत रघुनाथ पाल चलती गाड़ी में डब्बा बदलते हुए गिर गये और उनकी मृत्यु हो गयी।"

"ओह! तुमने यह क्या किया?" कुछ उदास-सी बोली सुजाता। ऐसा नहीं करना चाहिए था तुमको। यह सुनकर सदानन्द मुस्कराया और फिर झोले से शराब की बोतल निकाली, दो गिलासों में ढाली और एक गिलास स्वयं गले के नीचे उतारी, दूसरी गिलास सुजाता को देते हुए बोला—"लो, पी लो। दिमाग का बोझ उतर जायेगा।" पहले तो थोड़ा हिचकिचाई सुजाता, फिर पी गयी पूरी शराब। उसे फिर अपने आलिंगन में लेते हुए सदानन्द बोला—"रानी, एक दिन तो यह होना ही था। प्यारी, मुझसे तुम्हारा वियोग सहा नहीं जा सकता था। और अब तुम इतनी बड़ी जायदाद और इतनी भारी रकम के साथ मेरी भी मालकिन हो।"

"अब आप दोनों लोग जरा सोचिये, यह सुन कर उस स्थिति में मुझ पर क्या गुजरी होगी"—रघुनाथ पाल लम्बी साँस लेते हुए बोले। "ओफ, मेरे साथ कितना बड़ा धोखा हुआ था। बदला लेने की भावना से छटपटाने लगा मैं। मुझे ऐसे लगा

कि जब तक मैं दोनों से बदला न ले लूँगा तब तक मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। इसी तरह बराबर छटपटाता रहूँगा मैं। और मेरी आकुल आत्मा भी सदैव भटकती ही रहेगी। आगे का वासनात्मक दृश्य देखा न गया मुझसे। न जाने क्या सोच कर वहाँ फिर आया जहाँ मेरा कटा हुआ शरीर पड़ा हुआ था, लेकिन वहाँ मेरा शरीर अब नहीं था। पोस्टमॉर्टम के लिए पटना ले जाया गया था और उसके बाद ही उसका अंतिम संस्कार होगा। यह बात न जाने कैसे स्वयं मुझे मालूम हो गयी थी।

''जिस कुहरे जैसे पारदर्शक और हल्के शरीर में अपने अस्तित्व का अनुभव कर रहा था वह मेरा सूक्ष्म शरीर था। उस शरीर में इच्छा शक्ति प्रबल हो उठी थी। सोचने-समझने और जानने की भी शक्ति अपने आप प्रबल हो उठी थी। मैं जो कुछ जानना-समझना चाहता था उसे पल भर में जान-समझ लेता था। किसी के भावों और विचारों को भी समझते देर न लगती थी मुझे। मैं जहाँ भी जाना चाहता था वहाँ तत्काल पहुँच जाता था। समय का कोई मूल्य नहीं था मेरे लिए। बड़े-बड़े आलीशान मकान, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ और आदमियों की भी मेरे मार्ग में रुकावट नहीं थी। बड़ी सरलता से सबके बीच से निकल जाता था मैं। मेरे सूक्ष्म शरीर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसे कोई देख नहीं सकता था और न तो उसके अस्तित्व का बोध ही कर सकता था। यह अलौकिक और आश्चर्यजनक बात थी मेरे लिए। इसी के साथ मैंने यह भी अनुभव किया कि स्थूल शरीर में रह कर भौतिक स्तर पर आत्मा जो कार्य करती है उसे सूक्ष्म शरीर में रह कर नहीं कर सकती है वह। ऐसी स्थिति में अपने आपमें वह असहाय-सा अनुभव करती है। एक बात और बतला दूँ आपको वह यह कि स्थूल शरीर पारिवारिक बन्धन में समाज के बन्धन, धर्म के बन्धन और इस प्रकार के और कई बन्धनों में बँधा रहता है और उसी के साथ आत्मा भी बँधी रहती है उन तमाम बन्धनों में। लेकिन स्थूल शरीर से मुक्त होने के बाद जब आत्मा को सूक्ष्म शरीर उपलब्ध होता है तो वे सारे बन्धन आपने आप टूट कर बिखर जाते हैं और आत्मा मुक्त विचरण करने लग जाती है। लेकिन यह सब होते हुए भी मेरे अन्तराल में बदले की आग सुलग रही थी।

''उस समय मेरा मृत शरीर सरकारी अस्पताल के मुर्दाखाने में पड़ा था। उसे देख कर उसके प्रति न जाने कैसा मोह जागृत हो उठा मेरे मन में। सोचने लगा— इसी शरीर में रह कर मैंने पढ़ा-लिखा, नौकरी की और न जाने कितने सुख-दुःख भोगे और उठाये कितने कष्ट भी। उसी समय एक व्यक्ति मेरे करीब आकर खड़ा हो गया। वह भी मेरी तरह सूक्ष्म शरीरधारी था, तभी तो वह मुझे देख पाया। वह व्यक्ति मुझे बड़ा ही रहस्यमय लग रहा था। निश्चय ही वह कोई अघोरी था। सन की तरह उसके बाल और दाढ़ी थी। अपने काले बदन पर कफन लपेटे हुए था वह और उसके हाथ में एक मानव-खोपड़ी थी और लोहे का लम्बा-सा त्रिशूल भी। उस

अघोरी ने बतलाया कि जहाँ इस प्रकार मुर्दा पड़ा रहता है, वहाँ उसकी आत्मा अवश्य भटकती रहती है। मैं ऐसी ही भटकती हुई आत्मा की खोज में इस मुर्दाघर में आया था। यदि कोई मेरी साधना के लायक आत्मा मिल जाती है तो अपने साथ श्मशान में ले जाकर जगाता हूँ उसे और जग जाने पर मेरे आदेश का पालन करता है। मैं जैसा कहता हूँ वैसा करता है वह। थोड़ा रुक कर वह अघोरी बोला—"यहाँ मेरे योग्य कोई आत्मा नहीं है। तुम चलो मेरे साथ। तुम्हारी सहायता करूँगा मैं।"

"कैसी सहायता"—थोड़ा उत्सुक होकर पूछा मैंने। "अपनी बेवफा पत्नी और धोखेबाज मित्र से बदला लेना चाहते हो न तुम ?"

"यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। बोला कुछ नहीं, चुपचाप उसके साथ चलने लगा मैं। थोड़ी देर बाद एक भयंकर दुर्गम स्थान पर पहुँचा वह। एक ओर घना जंगल था और दूसरी ओर था पहाड़ों का सिलसिला और उस जंगल और पहाड़ों के बीच एक नदी बहती थी। नदी काफी चौड़ी थी और उसकी धारा भी काफी तेज थी। घोर नीरवता बिखरी हुई थी उस निर्जन इलाके में। नदी के किनारे काफी लम्बा-चौड़ा श्मशान था। उस समय कोई चिता नहीं जल रही थी वहाँ, लेकिन मुर्दे की हड्डियाँ और चिता की अधजली लकड़ियाँ अवश्य बिखरी हुई थीं श्मशान में चारों तरफ और एक अबूझ-सी दुर्गन्ध भी फैली हुई थी वहाँ के श्मशानी वातावरण में। श्मशान के एक ओर काफी ऊँचा और काफी पुराना पीपल का पेड़ था और उसी पीपल के पीचे पत्थर का एक छोटा-सा चबूतरा था और उसी चबूतरे पर आसन था उस अघोरी का। लगभग दो सौ साल पहले उसकी मृत्यु हुई थी और उस समय उसकी आयु साठ-सत्तर के आसपास थी। सिद्ध अघोरी था वह। मृत्यु के बाद उसी महाश्मशान में उसकी समाधि बना दी गयी। वह पत्थर का चबूतरा उसकी समाधि थी। साधना में किसी त्रुटि के कारण उसको पुनर्जन्म उपलब्ध नहीं हुआ था। इसीलिए मृत्यु से लेकर अब तक सूक्ष्म शरीर में भटक रही थी उसकी आत्मा अपनी समाधि के आसपास। निश्चय ही अति शक्तिशाली और सिद्ध अघोरी था वह इसमें सन्देह नहीं। उसने बतलाया कि जो कहानी तुम्हारी है, लगभग वैसी ही कहानी उसकी भी है। बस थोड़ा-सा अन्तर है और वह यह कि तुम्हारी पत्नी ने तुमको धोखा दिया जबकि मेरी प्रेमिका ने मुझे दुत्कार कर इसलिए भगा दिया कि बहुत गरीब था मैं और एक धनी और ऊँचे खानदान में शादी कर ली उसने। बड़ी गहरी लगी थी चोट। दर्द को बहुत सम्भालने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। मन में शांति नहीं थी और शांति पाने के लिए साधु-संन्यासियों की टोली में दिन गुजारने लगा। उसी समय एक ओर साधक से मेरी भेंट हुई। पहुँचा हुआ सिद्ध फकीर था वह अघोरी। मेरी पीड़ाभरी और दर्द में डूबी सारी कहानी सुनी उसने और सब कुछ जान-समझ लेने के बाद बोला—"चलो मेरे साथ हिमालय।

तेरे ही जैसे शिष्य की खोज में था मैं, वहाँ गुरु गोरखनाथ की हमेशा से जल रही धूनी है। उसी धूनी की साक्षी देकर तुझे अपना शिष्य बनाऊँगा। उसके बाद तुम चाहो तो अपनी प्रेमिका द्वारा किये गये अपने अपमान का बदला ले लेना।''

''यह सुन कर तुरन्त उस अघोरी के साथ हिमालय की दुर्गम यात्रा पर चलने के लिए तैयार हो गया मैं। सचमुच अपने अपमान का बदला लेना चाहता था और बदला लेकर बुझाना चाहता था अपने भीतर जल रही आग को। पूरे दस साल साधना की मैंने गुरु गोरखनाथ की धूनी पर। इस अवधि में कई प्रकार की दुर्लभ सिद्धियाँ प्रकट कर लीं थी मैंने अघोर विद्या की। उन्हीं विद्याओं में थी एक मारण विद्या। बस, उसी विद्या की सहायता से अपने अपमान का बदला ले लिया मैंने। मेरे मारण मूँठ से बच न सकी मेरी प्रेमिका। तत्काल हो गयी उसकी मृत्यु। मुझसे एक गलती अवश्य हो गयी थी और वह यह कि उस समय उसके गर्भ में शिशु था। अकारण माँ के साथ उसकी भी मृत्यु हो गयी मेरी मूठ शक्ति से। बड़ी भारी भूल थी वह। बहुत बड़ा अपराध था मेरा। जानते हो इसलिए मुझे मुक्ति नहीं मिली, और इसीलिए मेरा पुनर्जन्म भी नहीं हुआ और दो सौ वर्षों से भटक रहा हूँ मैं इधर-उधर तमाम अलौकिक सिद्धियों का बोझ लिये। तुम्हारी सहायता इसलिए करना चाहता हूँ कि जो अशांति कभी मेरे भीतर थी वही अशांति लिए तुम भी आज भटक रहे हो।''

''मुझे क्या करना होगा बाबा?'' सब कुछ सुन लेने के बाद मैं बोला—''आप जो कहेंगे वैसा ही करूँगा मैं। आप आज्ञा दें।''

अघोरी कुछ देर तक आकाश की ओर शून्य में देखता रहा और फिर बोला—''स्थूल शरीर से जो काम तुम कर सकोगे, उसे इस सूक्ष्म शरीर से नहीं कर सकते। दोनों शरीरों की अपनी-अपनी शक्ति और अपनी-अपनी है सीमा। दोनों शरीर के बीच में एक और शरीर होता है जिसको छाया शरीर कहते हैं। मरने वाले का जैसा स्थूल शरीर होता है वैसा ही उसका छाया शरीर भी होता है। जरा-सा भी अन्तर नहीं होता है दोनों में। आयु का प्रभाव जैसे स्थूल शरीर पर पड़ता है उसी तरह छाया शरीर और सूक्ष्म शरीर पर भी पड़ता है।''

''उस अघोरी साधक की इस तरह की बातें सुन कर विचित्र-सा लग रहा था मुझे। वह आगे कहने लगा—''तुम्हारे छाया शरीर को तुम्हारे स्थूल शरीर में बदल दूँगा मैं अपनी अघोर सिद्धि से। मरते समय जैसा शरीर था तुम्हारा वैसा होगा सब कुछ। लेकिन सिर्फ छः दिनों के लिए और उन छः दिनों में तुम्हारी लाश भी चिता में जलनी नहीं चाहिए। उस अवधि में तुमको अपना जरूरी काम पूरा कर लेना होगा ताकि तुम बदला लेकर अपनी आग बुझा सको और प्राप्त कर सको मन की शांति। उसके बाद मेरा दिया हुआ स्थूल शरीर छाया शरीर में पुनः परिवर्तित होकर सूक्ष्म शरीर में विलीन हो जाएगा। तब फिर तुम मेरे इसी स्थान पर चले आना और

जब तक तुम्हारी आत्मा का पुनर्जन्म नहीं हो जाता तब तक मेरे पास यहीं रहना।'' थोड़ा रुक कर वह अघोर साधक बोला—''एक सिद्धि भी तुम्हें देता हूँ छः दिनों के लिए और वह यह कि तुम सभी को देख सकोगे लेकिन तुमको लोग तभी देख सकेंगे जब तुम चाहोगे। इतना कह कर वह रहस्यमय अघोरी अपनी समाधि के चबूतरे में प्रवेश कर गया और उसी के साथ उसका दिया हुआ स्थूल शरीर भी उपलब्ध हो गया। वह शरीर भी वैसा ही था जैसा अपना था। वही कद, वही रूप-रंग। मेरे शरीर पर रेलवे का काला कोट था जिस पर पीतल का बिल्ला लगा था। मेरी नेम प्लेट भी लगी थी कोट पर। कलाई में अपनी घड़ी, पैर में अपना जूता और था जेब में अपना बटुआ भी। सिर घुमा कर चारों ओर देखा मैंने। आसाम का बीहड़ जंगली इलाका था वह, जिसको चीरती हुई ब्रह्मपुत्र नदी की चौड़ी प्रखर धारा सामने पहाड़ों की तलहटी की ओर घूम गयी थी वक्राकार। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। सबेरा हो चुका था। पूरब का आकाश धीरे-धीरे लाल हो रहा था। बड़ा ही मनोरम और प्राकृतिक वातावरण था इसमें सन्देह नहीं। मैंने उस अघोरी साधक की समाधि पर जाकर सिर झुकाया और प्रणाम किया—जिसने मेरी सहायता की थी और जिसने किया था मार्गदर्शन। सच बात तो यह थी कि मन ही मन उस सिद्ध अघोर साधक को अपना गुरु मान लिया था मैंने।

बड़े मनोयोग से मैं और वकील साहब सुन रहे थे रघुनाथ पाल की आश्चर्यजनक और रहस्यमयी कथा। एक गिलास पानी पीकर आगे बतलाना शुरू किया रघुनाथ पाल ने...... ''वहाँ से सीधा मैं गोहाटी स्टेशन आया। टिकट लेने की आवश्यकता ही नहीं। मैं हेड टी०टी० जो था। गाड़ी आयी, प्रथम श्रेणी के कम्पार्टमेंट में बैठ गया मैं चुपचाप। पहले पटना पहुँचा। चीरघर में अपनी लाश देखी। डॉक्टर बीमार था इसलिए अभी तक पोस्टमॉर्टम नहीं हुआ था। चलो अच्छा हुआ। हेड टी०टी० के रूप में पटना में अधिकतर लोग जानते थे मुझे। मुगलसराय और बनारस में भी पहचाने जाने का भय था क्योंकि लोगों के लिए मर चुका था मैं, इसलिए अपनी इच्छाशक्ति से अपने शरीर को अदृश्य कर दिया मैंने, ताकि कोई देख न सके और न तो पहचान ही सके। वैसी ही अवस्था में पहले घर गया मैं। मेरी मृत्यु की सूचना कभी की घर पहुँच चुकी थी। बाल खोले हुए रो-पीटकर अत्यन्त दुःखी होने का असफल प्रयास कर रही थी सुजाता। परिवार के लोग भी वहाँ आ गये थे। कुछ रिश्तेदार भी थे वहाँ। सदानन्द भी गमगीन बना बैठा था एक ओर। मैं सभी को देख रहा था लेकिन मुझे कोई नहीं। इससे मुझे भारी खुशी हुई। अपने घर के भीतर गया, आलमारी खोली। दस-बारह हजार रुपये नकद थे, उन्हें कोट की जेब में ठूँसा और हजारों रुपये के सर्टिफिकेट्स, दस्तावेज और वसीयतनामे के कागज भी निकाल लिये।

"वकील साहब, आप तो जानते हैं कि पोस्ट ऑफिस से जब सर्टिफिकेट्स खरीदे जाते हैं तो पोस्ट ऑफिसवाले उनके साथ एक 'अभिज्ञान पत्रक' भी देते हैं। उससे लाभ यह होता है कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें देश के किसी भी पोस्ट ऑफिस से कैश करा सकते हैं आप। कभी मेरी ड्यूटी जालंधर से लखनऊ भी थी। याद आया कि जालंधर कैंट से बड़े पोस्ट ऑफिस में मेरी जान-पहचान के एक सज्जन रामप्रकाशजी हैं। वहीं जाकर कैश कराने का निश्चय कर लिया मैंने। दूसरे दिन जालन्धर पहुँच कर रामप्रकाशजी की सहायता से सर्टिफिकेट्स कैश करा लिया मैंने। अब मेरे सामने यह प्रश्न था कि इतने सारे रुपयों का क्या करूँ? मेरे तो किसी काम के नहीं। दूसरे ही क्षण इसका उत्तर भी मिल गया मुझे। अगर मर कर भी मेरा सब कुछ मेरे देश के काम आ सके तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगा, शायद इस परम पुण्य से सूक्ष्म शरीर से मुक्त होकर मेरी आत्मा कहीं जन्म ले ले। मैं तुरन्त स्टेट बैंक पहुँचा। वहाँ सारे रुपये राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में जमा कर उसकी रसीद ले ली मैंने।

"अब तक मेरे शरीर का पोस्टमॉर्टम हो चुका था। पोस्टमॉर्टम के समय अस्पताल के बाहर सदानन्द के साथ सुजाता भी मुँह लटकाये खड़ी थी। सोचने लगा अपने जीवनकाल में मनुष्य को अपने ही लोग कितना धोखा देते हैं जिसका पता उसे नहीं होता। वह अज्ञान बना उनको अपना ही समझता रहता है।

"डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—मौत चलती गाड़ी से गिर जाने के कारण हुई है। उस समय मृतक आदमी ने शराब काफी मात्रा में पी रखी थी। लोगों का विश्वास और पक्का हो गया कि शराबी होने के कारण मैं डिब्बा बदलते हुए फिसल कर गिर गया होऊँगा।

"घर से मेरी शव यात्रा निकली। मैं भी शामिल था अपनी शवयात्रा में लेकिन अदृश्य रूप में। अभी मुझे सदानन्द से बदला लेना था। यदि मेरी लाश जल जायेगी तो बदला न ले सकूँगा मैं। अब तक मेरा शव श्मशानघाट पर पहुँच चुका था और चिता लगायी जा रही थी और जब शव को चिता पर रखने के बाद उसमें आग लगायी जाने लगी तो, लगने नहीं दिया मैंने। आकाश में बादल पहले से ही घिरे हुए थे। एकाएक वर्षा होने लगी आँधी-तूफान के लय पर। आप सब लोग पानी से बचने के लिए ऊपर धर्मशाला के बरामदे में चले गये। अवसर मिल गया मुझे। मैंने चिता से अपनी लाश निकाली और गंगा में प्रवाहित कर दिया और फिर गीली चिता में आग लगा दी और फिर दूसरे ही क्षण धू-धू कर जलने लगी चिता। आप लोग यही समझ रहे थे कि शव जल रहा है। लेकिन शव वहाँ कहाँ था? शव तो गंगा की प्रचण्ड धारा में बह कर बहुत आगे निकल चुका था। बनारस में बहुत सारे लोग मेरे परिचित थे। इसलिए अदृश्य रूप से इधर-उधर सदानन्द को खोजने लगा। घर पर भी नहीं मिला वह। आज इस शरीर की अवधि का दिन है। सोचा, आपसे मिलकर इस वसीयतनामे के काम से ही निपट लूँ।"

इतना कह कर रघुनाथ पाल ने जेब से सौ-सौ के पाँच नोट निकाले और मेरी मेज पर रखते हुए बोले—"यह रही आपकी फीस।"

"अरे! इसकी कोई आवश्यकता नहीं है," मैं बोला। रघुनाथ पाल ने कहा—"मैं तो सिर्फ दस मिनट और इस शरीर में रहूँगा। ये रुपये मेरे किसी काम के नहीं। काश! मैं सदानन्द को पा जाऊँ। यह कह कर रघुनाथ पाल अपनी जगह से उठे और बिना आगे कुछ बोले दरवाजे की ओर बढ़ गये लेकिन कमरे के बाहर जाने वाले रघुनाथ पाल नहीं थे, उनका सूक्ष्म शरीर था स्वच्छ, पारदर्शक, कुहरे जैसा।

उसी दिन अपने सीनियर से वसीयतनामे की नकल डिप्टी कमिश्नर के पास भिजवा दिया गणेशप्रसाद मिश्र ने। अब उस वसीयतनामे की एक नकल सुजाता पाल को भी देनी थी। उसे देने के लिए गणेशप्रसाद मिश्र के साथ मैं भी गया रघुनाथ पाल के घर। वसीयतनामे की नकल सुजाता पाल को देते हुए गणेशप्रसाद मिश्र बोले—"पाँच दिन हुए रघुनाथजी ने पहले वाली वसीयत रद्द करके यह दूसरी वसीयत लिखवाई थी।"

नयी वसीयत पढ़ते ही एकबारगी आ गयी सन्नाटे में सुजाता पाल। चेहरा पीला पड़ गया। आँखें खाली-खाली हो गयीं।

तभी वहाँ रेलवे के एक कर्मचारी ने आकर बतलाया कि अभी एक घण्टा पहले सदानन्द बाबू अपनी छत पर से गली में गिर पड़े। उनका सिर बुरी तरह से फट गया। दो घण्टे बेहोश रहने के बाद संसार से चल बसे वह। यह सुन कर मैं और मिश्राजी एकदम चौंक पड़े और फटी-फटी आँखों से हम दोनों एक-दूसरे को देखने लगे। निश्चय ही रघुनाथ पाल की मृतात्मा ने अपना बदला ले लिया सदानन्द से, इसमें सन्देह नहीं। मैंने सिर घुमा कर सुजाता पाल की ओर देखा—उनका पीला चेहरा और जर्द हो गया था। उनके होंठ नीले पड़ते जा रहे थे। आँखों की चमक बुझती जा रही थी और चेहरे पर छाती जा रही थी निस्तेजता। मन ही मन सोचने लगा मैं, सच्चे अर्थों में आज विधवा हुई है सुजाता पाल और उन्हें विधवा बनाने वाले सदानन्द नहीं, स्वयं उसके पति थे रघुनाथ पाल।

●

८

काली का वह रहस्यमय साधक

मुझे सन् तो याद नहीं है, लेकिन अपने अनुमान से यह कह सकता हूँ कि कम-से-कम चार दशक पूर्व की ही है यह घटना। एक प्रकार से भूल ही गया था सब कुछ। यदि एक सप्ताह पूर्व [redacted]का पत्र न आया होता तो मुझे याद भी न आती वह रहस्यमय घटना। समरेन्द्र कुमार सान्याल मेरे मित्र थे। दो-तीन साल हम दोनों साथ रहे थे कलकत्ता में। फिर सेटेलमेंट अफसर पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी बर्मा और असम की सीमा पर। उनका विवाह हो चुका था, लेकिन जीवन कट रहा था तम्बुओं में। ग्रामीण अंचलों में उनके तम्बू लगते। ढोल-नगाड़ा पीट कर मुनादी करायी जाती। मातहत कर्मचारियों के साथ जाकर वह खेती की जमीनों का निरीक्षण करते, नक्शे की पड़ताल करते और जरूरत पड़ती तो अपने सामने पैमाइश भी कराते। फिर बन्दोबस्त के कागज तैयार होते। तीन-चार साल तक पत्र-व्यवहार होता रहा सान्याल महाशय से और फिर बन्द हो गया।

एक बार चेरापूँजी के निकट एक पहाड़ी इलाके में काम कर रहे थे सान्याल महाशय। अचानक बीमार पड़ गये। पत्नी साथ ही थी। भावुक होकर मित्र ने मुझे पत्र लिखा कि मैं उसकी सहायता के लिए तुरन्त पहुँचूँ। नीचे दो पंक्तियाँ उनकी पत्नी ने भी लिखी थीं—"भाई साहब, हमें आपका ही सहारा है। इस वीरान, सुनसान जगह में अपना भला कौन है?" उस समय मैं बनारस में था और था अतिव्यस्त। मित्रता का तगाजा और फिर मित्र की पत्नी का आग्रह। अस्वीकार करते न बना। जैसे-तैसे इंतजाम किया, अटैची जमाई। एक बैग में ओढ़ने-बिछाने के लिए कुछ कपड़े रखे, पत्नी को समझाया और चल पड़ा। पूरे पाँच दिनों की कठिन यात्रा के बाद किसी प्रकार चेरापूँजी पहुँचा मैं। वहाँ पता चला कि जिस इलाके में उस समय सान्याल महाशय थे वह पाँच-छः मील और आगे था। घने जंगलों के बीच दुर्गम पहाड़ी इलाका। अति कष्टप्रद थी वह यात्रा।

पूरे चार मील पद-यात्रा करने के बाद एक पहाड़ी नदी मिली। नाव से नदी पार करनी थी। नाँवें भी ऐसीं जो पुराने सूखे पेड़ों के तने खोखले करके बनायी जाती थीं। नाव पर चढ़ते समय ही मल्लाहों ने सतर्क कर दिया—"साहब, खतरनाक इलाका है। यहाँ अजगर मिलते हैं। शेर-बाघ भी नदी का पानी पीने आते हैं। इसलिए दम साधकर बैठना होगा। एक प्रकार की मछली भी होती है बड़ी

जहरीली। उसकी दुम आदमी के शरीर से यदि छू भी जाये तो शरीर जलने लगता है। बड़े-बड़े हकीम-वैद्य भी उसका इलाज नहीं कर पाते।" यह सब सुनकर बहुत डर लगा मुझे। पर इतनी दूर आकर लौटा तो नहीं जा सकता था। इसलिए चल पड़ा राम का नाम लेकर। सिकुड़ा-सिमटा बैठा रहा नाव के बीचोंबीच।

मल्लाहों ने कुछ गलत नहीं कहा था। लगभग बीस फीट का लम्बा और मोटा-ताजा एक अजगर मिला। उसका पिछला आधा भाग नदी के पानी में था और शेष बाहर। उसके जबड़े में कोई बड़ा जानवर फँसा छटपटा रहा था। समझ में नहीं आया कि कौन जानवर था वह? थोड़ा आगे बढ़ने पर शेरों का झुण्ड भी दिखलायी दिया जो पानी पीने के लिए नदी की ओर बढ़ रहा था धीरे-धीरे। सारा शरीर काँपने लगा जैसे। कुछ पहाड़ी गाँव भी दिखे छोटे-छोटे।

घाट पर जब पहुँचा तो उस समय साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी पूरे अरण्य प्रांत में। न जाने किधर से आकर एक पहाड़ी युवती खड़ी हो गयी मेरे सामने। एकबारगी सकपका-सा गया मैं। उम्र रही होगी अठारह-बीस वर्ष के आसपास, ताँबिया रंग था। अपने आपमें आकर्षक और सुन्दर। मैली-कुचैली साड़ी लिपटी हुई थी देह पर। ऊपर अंग एक प्रकार से अनावृत्त था। बाल उलझे हुए थे। आँखें छोटी-छोटी थीं, लेकिन उनमें आकर्षण था। किसी को भी एक बार सम्मोहित कर सकती थीं वे आँखें। कहाँ जाना है बाबू? आवाज थोड़ी भारी थी। युवती ने थोड़ा आँख झपकाकर पूछा मुझसे। उस छोटे इलाके में भला बन्दोबस्त अधिकारी को कौन नहीं जानता था। उसने लपक कर मेरा सामान उठा लिया और कहा— "बाबू, चलो मेरे साथ।" आगे-आगे मैं चलती हूँ और पीछे-पीछे आप आओ। कुछ बोला न गया मुझसे। सिर झुका चलने लगा उस अपरिचिता के साथ। लगभग एक घण्टा उस नर्कपथ पर चलने के बाद दर्शन हुआ मित्र महोदय के तम्बू का। अब तक रात हो चुकी थी। इस बीच स्वस्थ हो चुके थे महाशय। मदद करने जैसी स्थिति नहीं थी अब। पति-पत्नी गद्‌गद हो गये मुझे देखकर। इतनी दूर से और नाना प्रकार के अविस्मरणीय कष्टों को सहते हुए मैं आ गया था। यही बड़ी बात थी उनके लिए। भोजन करते समय मैंने उनको टॉनिक लेने की सलाह दी तो वह हँसकर बोले—"तुम आ गये हो यही सबसे बड़ा टॉनिक है मेरे लिए।"

अगले दिन सुबह से दोपहर तक गपशप का टॉनिक पिलाता रहा मैं सान्याल महाशय को। काफी दिनों बाद मिले थे हम। बातचीत के सिलसिले में अपने विषय में भी थोड़ा-बहुत बतलाना ही पड़ा मुझे सान्याल महाशय के आग्रह पर। आप तो जानते ही हो कि घुमक्कड़ प्रवृत्ति का हूँ मैं। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ पूरे उत्तराखण्ड की पद-यात्रा की मैंने, कहीं नहीं गया मैं सान्याल। गंगोत्री, यमुनोत्री, गोमुख, कैलाश मानसरोवर और अन्त में तिब्बत भी। एकमात्र उद्देश्य था साधु,

सन्त, महात्माओं के अलावा गुप्त रूप से निवास करने वाले सिद्ध योगी और साधकों की खोज। अभी भी इस प्रवृत्ति से मुक्ति नहीं मिली है मुझे। बस बन्धु, अवसर मिलना चाहिए और अवसर प्राप्त होते ही निकल पड़ता हूँ मैं कहीं न कहीं। आराम कुर्सी पर लेटे गुमसुम सुनते रहे सान्याल महाशय मेरी कथा। फिर एक सिगरेट सुलगाते हुए धीमे स्वर में बोले—"बड़ा ही अच्छा किया यहाँ आकर आपने। थोड़ी ही दूरी पर इस बीहड़ जंगली इलाके में एक महात्मा निवास करते हैं। वे कब आये, कहाँ से आये, कब से निवास कर रहे हैं? इन सबकी जानकारी यहाँ के लोगों को नहीं है। यह सुनने में अवश्य आया है कि महात्मा काली के परम साधक हैं। हर समय लीन रहते हैं महामाया के चरणों में। कई दुर्लभ सिद्धियाँ भी प्राप्त हैं उन्हें। दो-एक बार मैंने कोशिश की उनके यहाँ जाने की लेकिन असफल रहा मैं।"

"उन महात्मा का नाम तो आप जानते ही होंगे?" मैंने जिज्ञासु भाव से पूछा। "हाँ, नाम जानता हूँ।" सिगरेट की राख झाड़ते हुए बोले सान्याल—"उनका नाम है [redacted]" सुना यह भी है कि उनकी आयु तो बहुत है लेकिन देखने में अस्सी से अधिक के नहीं लगते महाशय। यह सब सुनकर उत्सुक हो उठा मैं। सोयी हुई जिज्ञासा जागृत हो उठी मेरी एकबारगी। अपनी यात्रा सफल समझने लगा मैं अब।

दोपहर का भोजन करने के बाद मैं चल पड़ा सान्याल के साथ साधक कालीचरण के दर्शन-लाभ के लिए। जीप का रास्ता नहीं था इसलिए पैदल ही चलना पड़ा। वहाँ के अधिकारी होने के कारण रास्ते से परिचित थे सान्याल महाशय। कहने लगे—"शर्माजी! आप बहुत से साधु, सन्त और साधकों से मिले होंगे और उनसे कुछ न कुछ प्राप्त भी किये होंगे। अब साधक कालीचरण को भी देख-समझ लें। जिज्ञासु प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं आप। मुझे विश्वास है कि आपकी जिज्ञासाओं का समाधान तो होगा ही, इसके अलावा होगा आपको आध्यात्मिक लाभ भी इसमें सन्देह नहीं।"

"हूँ....हूँ करता रहा मैं बीच-बीच में।" लगभग एक मील चलने के बाद एक ढलान मिली और ढलान पार करने के बाद दिखलायी दिया एक काफी लम्बा-चौड़ा तालाब जिसे झील कहना ही उचित होगा और झील जैसे तालाब के आगे कुछ दूर पर एक काफी ऊँचा टीला था और टीले के ऊपर एक विशाल वृक्ष था बरगद का, जिसके नीचे मिट्टी की दीवारों से बनी एक झोपड़ी थी। सान्याल ने बतलाया कि उसी झोपड़ी में निवास करते हैं साधक कालीचरण। लेकिन उनकी झोपड़ी तक काफी घूमकर जाना होगा, पहाड़ी रास्ता है न। लगभग एक घण्टा तो लगेगा ही। चारों ओर बिखरी हुई थी प्रकृति की अद्‌भुत छटा। घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी वातावरण में। वहाँ से अरुणाचल की पर्वत शृंखला स्पष्ट दिखायी दे रही थी जिनके

पीछे छिपने ही वाला था सूरज। बड़ा ही मनोहारी दृश्य था वह। थोड़ी ही देर में हम लोग झोपड़ी तक पहुँच गये।

झोपड़ी काफी बड़ी थी। काठ का जर्जर किवाड़ भीतर से बन्द था। झोपड़ी के सामने थोड़ी-सी जमीन थी जिसमें विभिन्न प्रकार के सुगंधित फूलों की क्यारियाँ थीं। दरवाजा खटखटाना नहीं पड़ा। कुछ क्षण बाद स्वयं अपने आप चीं-चीं की आवाज करते हुए खुल गया वह। म्लान उजियारा फैला हुआ था भीतर। सामने दीवार पर लालटेन टँगी हुई थी जिसकी मद्धिम और पीली रोशनी में झोपड़ी का भीतरी भाग स्पष्ट दिखने लगा और फिर धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ सब कुछ। बायीं ओर की दीवार से लगकर एक पुराना काठ का तख्त बिछा हुआ था और उसी पुराने तख्त पर एक अतिवृद्ध महाशय नेत्र बन्द किये हुए बैठे थे ध्यानावस्था में। नंगे बदन थे वह। कमर के नीचे बस एक लँगोटी थी, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। गले में रुद्राक्ष और स्फटिक की मालायें लटकी हुई थीं। चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। जटाजूट से बाल और लम्बी दाढ़ी सन की तरह सफेद। आयु निश्चय ही सौ से अधिक रही होगी इसमें सन्देह नहीं।

सान्याल ने मेरे कान में धीरे से कहा—"यही हैं साधक कालीचरण महाशय।" मैंने देखा साधक कालीचरण सिर झुकाये पूर्ववत् बैठे हुए थे। झोपड़ी के भीतर और कोई व्यक्ति नहीं था। फिर किवाड़ किसने खोला? समझ में नहीं आया यह रहस्य। हम दोनों की उपस्थिति का आभास शायद लग गया था साधक कालीचरण को। उन्होंने धीरे से अपना सिर उठाया और फिर हम दोनों की ओर स्थिर दृष्टि से देखा, विचित्र दृष्टि थी वह। लगा जैसे आग धधक रही हो वहाँ।

मेरी ओर अभी तक देख रहे थे साधक कालीचरण। सपाट निर्विकार चेहरा, आँखें अभी भी जल रही थीं। कुछ भय-सा लगा मुझे। सान्याल ने धीरे से मेरा हाथ दबाया यानि लौट चलें अब। लेकिन उस अराजकता-भरी रात में वापस लौटना सम्भव नहीं था और भूख भी लगी थी जोरों की। सम्भवतः मेरी दयनीय स्थिति को समझ गये साधक कालीचरण। बैठने का संकेत किया हाथ से। हम दोनों बैठ गये। जमीन पर बिछी चटाई पर। तख्त के सामने एक छोटा-सा त्रिकोण ताखा था। लाल रंग लगा था उस रहस्यमय ताखे में जिसके भीतर काले पत्थर की बनी काली की छोटी-सी मूर्ति स्थापित थी। सामने मिट्टी का दीप जल रहा था और उस दीप के हल्के प्रकाश में अति रहस्यमयी लगी काली की वह पाषाण मूर्ति। दस त्रिकोण ताखा के नीचे एक छोटा-सा हवन-कुण्ड भी था। लेकिन उसमें आग नहीं जल रही थी। बगल में बलि देने वाला एक विकराल खड्ग भी खड़ा करके रखा हुआ था। यह सब देखकर भय और रोमांच से भर उठा मैं। सान्याल की भी सम्भवतः यही स्थिति थी। पीला हो रहा था उनका चेहरा। थोड़ा अस्थिर भी लगे वह मुझे। अचानक हवा का

एक तेज झोंका आया और झोपड़ी के भीतर बिखर गया चारों तरफ। जलता हुआ लालटेन एक बार भभका और फिर शांत हो गया। एकाएक मेरा सिर घूम गया दरवाजे की ओर। ऐ! यह क्या? आश्चर्यचकित हो उठा मैं एकबारगी। सामने दरवाजे के पास एक छायाकृति खड़ी थी। पहचानने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। वह छायाकृति और किसी की नहीं, उसी पहाड़ी युवती की थी जो घाट पर अचानक मिली थी और मेरा सामान उठाकर ले आयी थी कैम्प तक लेकिन यहाँ कैसे? संशय और भ्रम के मिले-जुले भाव से भर उठा मेरा मन। सान्याल मुझसे सटकर बैठ गये। मैंने सिर घुमाकर उनके कान में धीरे से कहा—''यह पहाड़ी युवती ही आपके कैम्प तक ले आयी थी मेरा सामान घाट से। क्या इसे देखा था आपने?''

''नहीं'', सिर हिलाकर उत्तर दिया सान्याल ने। अब तक झोपड़ी के भीतर आ चुकी थी वह युवती। सिर उठाकर साधक कालीचरण ने उस युवती की ओर देखा और फिर मुस्कुराते हुए बोले—''आ गई देवकी।''

''हाँ बाबा! आपकी आज्ञा जो थी। देवकी ने कोमल और स्निग्ध स्वर में उत्तर दिया। समझते देर न लगी मुझे—इस रहस्यमयी पहाड़ी युवती का नाम देवकी था। उस समय देवकी के हाथों में दो थालियाँ थीं भोजन की जिनको हम दोनों के सामने रखकर तुरन्त झोपड़ी के बाहर चली गयी वह। बारिश हो रही थी। क्या भींगने की चिन्ता नहीं थी देवकी को? जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गयी। आश्चर्य का होना स्वाभाविक ही था। तभी साधक कालीचरण का स्वर सुनाई दिया। स्वर धीमा अवश्य था लेकिन स्पष्ट था। वे कह रहे थे-''पानी में भींगते हुए इतनी दूर से चलकर आये हो तुम दोनों, भूख लगना स्वाभाविक ही है, भोजन कर लो। फिर वापस लौटना, वर्षा भी कम हो जायेगी तब तक।'' समझते देर न लगी थी मेरे खोजी मन को। कोई माया नहीं थी, सब योगलीला थी और योगलीला सत्य पर प्रतिष्ठित होती है। सचमुच परम साधक और परम योगी थे कालीचरण महाशय इसमें सन्देह नहीं।

भोजन करने के बाद सचमुच वर्षा बन्द हो चुकी थी। आकाश निर्मल हो गया था। शुक्लपक्ष की चतुर्दशी का चाँद पहाड़ों के ऊपर आ गया था और चारों तरफ बिखेरे था अपनी रूपहली चाँदनी। चारों ओर पहाड़, घने जंगल और उन पर पसरी हुई चाँदनी और निस्तब्ध वातावरण। प्रकृति का वह मोहक रूप देखकर अभिभूत हो उठा मैं एकबारगी। चलने के पहले उस महासाधक के चरणों का स्पर्श किया मैंने और कहा—''बाबा! मेरी कुछ आध्यात्मिक जिज्ञासा है आपसे, उनका समाधान चाहता हूँ मैं।'' मेरी् बात सुनकर साधक कालीचरण मुस्कुराये और फिर मंद स्वर में बोले, ''इतना भ्रमण किया और न जाने कितने महापुरुषों से मिले लेकिन इतने पर भी तुम्हारी जिज्ञासायें शान्त नहीं हुईं, आश्चर्य है।'' साधक कालीचरण अंतर्यामी भी

हैं सब कुछ जान समझ गये हैं मेरे आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में वह, यह समझते देर न लगी मुझे।

"बाबा आप तो जानते ही हैं आध्यात्म एक अन्तहीन और गहन समुद्र की तरह है। उससे सम्बन्धित जिज्ञासायें कभी शान्त नहीं हो सकतीं। जितना उनका समाधान होगा उससे कहीं अधिक होगा उनका आविर्भाव।"

"हाँ! ठीक ही कहा तुमने।" साधक कालीचरण थोड़ा मुस्कराते हुए बोले, "फिर कभी आना, समाधान हो जायेगा।"

"बस आपकी आज्ञा चाहिये थी, कृतार्थ हो गया मैं अब।" यह कहकर सान्याल के साथ मैं बाहर निकल आया झोपड़ी के। कब हम लोग कैम्प पहुँचे, पता ही न चला किसी को। न शरीर क्लान्त हुआ और न तो थकावट का ही अनुभव हुआ किसी को। सान्याल ने घड़ी की ओर देखा—"भोर के चार बजे थे उस समय। थोड़ा सो लें हम लोग—सान्याल ने कहा। लेकिन मुझे नींद नहीं आयी।" साधक कालीचरण के रहस्यमयी व्यक्तित्व ने मेरे अन्दर जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि कर दी थी एकबारगी इसमें सन्देह नहीं।

आखिर रहा न गया मुझसे। दूसरे दिन उठा और तैयार होकर चल पड़ा मैं साधक कालीचरण की झोपड़ी की ओर। सान्याल महाशय भी साथ चलना चाहते थे, लेकिन मना कर दिया मैंने। रास्ता पहचाना हुआ था। किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई मुझे। थकान का भी अनुभव नहीं हुआ शरीर को। बस बार-बार यही लगता था कि कोई अदृश्य शक्ति खींच रही है मुझे झोपड़ी की ओर। जब झोपड़ी पर पहुँचा तो उस समय नौ बजने वाला था। भीतर झाँक कर देखा। साधक कालीचरण सिर झुकाए कल की तरह बैठे हुए थे तख्त पर। उनके सामने एक युवक जमीन पर बिछी चटाई पर बैठा था चुपचाप। आकर्षक और सुन्दर व्यक्तित्व था उस अपरिचित युवक का। आयु अधिक नहीं बीस-पच्चीस के लगभग रही होगी। झोपड़ी में उस युवक की उपस्थिति कुछ रहस्यमय लगी मुझे। मैं भी उसके बगल में जाकर बैठ गया। युवक ने सिर घुमाकर एक बार मेरी ओर देखा—"हे भगवान्, कैसी थी उसकी आँखें। पारे की तरह जलती हुईं स्थिर और भावहीन। न पलक झपक रहा था और न तो पुतलियाँ ही घूम रही थीं। असहज लगा मुझे उसका मेरी ओर देखना।"

"तंत्र की जितनी अंतरंग और बहिरंग साधनायें हैं उनके मूल में एकमात्र [redacted] है जो अपने आपमें अति रहस्यमय है। उसकी दीक्षा सद्गुरु योग्य शिष्य अथवा योग्य पात्र को ही देता है और वह भी कठोर परीक्षा लेकर। बिन्दु साधना में तीन मुख्य क्रियायें हैं—पहली है [redacted] दूसरी है [redacted] और तीसरी क्रिया है [redacted] ये तीनों क्रियायें [redacted]रा अनुष्ठित होती हैं। शाक्त सम्प्रदाय की वाममार्गीय साधना में परकीया

नायिका को भैरवी की संज्ञा दी गई है। कालान्तर में वही 'भैरवी' बिन्दु धारण की अवस्था में 'महा भैरवी' का पद ग्रहण करती है।''

थोड़ा रुककर साधक कालीचरण आगे बोले—''वास्तव में काली साधना के अन्तर्गत ही बिन्दु साधना है, जो योग तंत्र परक है। उसके अनुसार मूल तत्व दो हैं—पुरुष तत्व और स्त्री तत्व। इन्हीं दोनों तत्वों के संयोग से मैथुनी सृष्टि होती है। भौतिक जगत् उसी मैथुनी सृष्टि का एकमात्र परिणाम है। पुरुष तत्व वीर्य अथवा शुक्र का शोधित रूप बिन्दु है। इसी प्रकार स्त्री तत्व 'रज' का शोधित रूप भी बिन्दु है। बिन्दु साधना भूमि में दोनों को श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु कहते हैं। श्वेत बिन्दु 'शिव' का पर्याय है और इसी प्रकार रक्त बिन्दु है शक्ति का पर्याय। शिव और शक्ति समस्त तांत्रिक साधना भूमि के मूल में विद्यमान हैं इसमें सन्देह नहीं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो संसार में जितने प्रकार के आनन्द हैं उन सबसे महत्वपूर्ण और प्रमुख आनन्द है सम्भोगानन्द। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं। इन चारों पुरुषार्थों में मोक्ष अंतिम पुरुषार्थ है।'' धर्म के द्वारा अर्थ की और काम के द्वारा मोक्ष की सिद्धि सम्भव है, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कामजन्य पुरुषार्थ में सिद्धिलाभ होने पर ही मोक्ष का द्वार खुलता है, इसमें सन्देह नहीं। कामजन्य पुरुषार्थ का परिणाम है सम्भोगानन्द। सम्भोगानन्द में तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है—सम, भोग और आनन्द। 'सम' का तात्पर्य श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु का समान रूप से योग अथवा मिलन और उस मिलन का भोग यानि उपयोग और उस भोग से शारीरिक सुख और साथ ही जो मानसिक तृप्ति उपलब्ध होती है वह है—सम्भोगानन्द। सम्भोगानन्द में तन, मन, प्राण ये तीनों समान रूप से अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हैं। इस आनन्द के ऊपर और कोई आनन्द नहीं है। संसार का प्रत्येक प्राणी इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित रहता है। उसके लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए भी तैयार रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं, इसी सम्भोगानन्द की अंतिम उपलब्धि सृष्टि है।

❑ ❑ ❑ ❑

''जिस प्राणायाम से साधारणतः लोग परिचित हैं वह यौगिक प्राणायाम है। इसी प्रकार एक तांत्रिक प्राणायाम भी है जिससे वे ही लोग परिचित हैं जो बिन्दु साधना के रहस्यों से परिचित हैं और कुण्डलिनी साधना मार्ग के पथिक हैं।'' भैरवी से सामरस्य भाव की अवस्था में तांत्रिक प्राणायाम द्वारा शुक्र बिन्दु और रजो बिन्दु यानी श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु मूलाधार चक्र में मिलकर एकाकार होते हैं और जिसके परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार का विक्षोभ उत्पन्न होता है और उस विक्षोभ से शक्ति तत्व जागृत होता है, इसी को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। बिन्दु विक्षोभ और शक्ति तत्त्व का जागरण एक ही अवस्था में होता है। श्वेत बिन्दु और

रक्त बिन्दु की संयुक्त सत्ता को 'महाबिन्दु' कहते हैं। महाबिन्दु में पुरुष तत्व और स्त्री तत्व दोनों रहते हैं। तांत्रिक भाषा में जिसे शिव तत्व और शक्ति तत्व का संयुक्त स्वरूप कहते हैं किन्तु फिर भी उनमें तत्व भेद बना रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं, इसी स्वरूप को 'अर्द्धनारीश्वर' की संज्ञा दी गयी है।

बिन्दु विक्षोभ और शक्ति का जागरण मूलाधार चक्र में होता है। यह चक्र त्रिकोणात्मक है। त्रिकोण दो प्रकार का होता है। एक ऊर्ध्व मुख और दूसरा अधोमुख त्रिकोण। पहला है शिव का प्रतीक और दूसरा है शक्ति का प्रतीक। षट्कोण शिव और शक्ति की संयुक्त संज्ञा को प्रतिभासित करता है।

"तुमको यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि कोई भी शक्ति जब ऊर्जा में परिवर्तित होती है तो उसकी गति ऊपर की ओर होती है। एक विलक्षण ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है और वह ऊर्जा सुषुम्ना नाड़ी मार्ग से साधना क्रम से ऊपर की ओर उठने लगती है और उसी के साथ महाबिन्दु का भी होने लगता है शनैः-शनैः सुषुम्ना नाड़ी में उत्थान।"

कहने की आवश्यकता नहीं, इस आंतरिक योग तांत्रिक क्रिया के परिणाम-स्वरूप दो लाभ साधक को होते है—"[redacted]

आँखें बन्द कर कुछ सोचने के बाद साधक कालीचरण आगे बोले—"[redacted] है, अन्तर चेतना क्रियाशील हो उठती है। इसी अवस्था को समाधि की संज्ञा दी गयी है और इसी अवस्था में चक्र भेदन होने पर साधक उस चक्र से सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करता है और वहाँ से वापस जब लौटता है तो उसके मस्तिष्क के ज्ञानकोष में उस लोक-लोकान्तर का भरा रहता है अपौरुषेय ज्ञान का अतुल भण्डार।" चक्रों के नाम क्या हैं और उनके द्वारा कैसे अभौतिक सत्ता में प्रवेश होता है? मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए साधक कालीचरण बोले—"मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध, आज्ञाचक्र और सहस्रार ये सात चक्र हैं और शरीर में इनके स्थान हैं क्रमशः मेरुदण्ड के नीचे गुह्य भाग के ऊपर, नाभि के ऊपर, हृदय के ऊपर, कण्ठ में दोनों भौहों के बीच में और सिर के ऊपर।"

"ये सातों चक्र शरीर में नाड़ी गुच्छों के रूप में हैं और उनमें से अलग-अलग सात प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगें बराबर निकलती रहती हैं। ज्योतिष के नक्षत्र विज्ञान के अनुसार सप्तऋषि मण्डल के सातों तारों से सातों चक्रों का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा द्वारा सम्बन्ध है और सभी भाग एक विशिष्ट मण्डल हैं और सातों

मण्डलों का सीधा सम्बन्ध ब्रह्माण्ड के सातों लोकों से है। कहने की आवश्यकता नहीं, चक्रों से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगें साधना द्वारा परिष्कृत होकर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के माध्यम से सप्तऋषि मण्डल और उसके सातों उपमण्डलों से सम्बन्ध स्थापित करती हैं और साधक उसी का आश्रय लेकर अपने सूक्ष्म शरीर अथवा मनोमय शरीर द्वारा सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करता है।''

''अपने आनन्द के आयामों की चर्चा की है, उससे आपका क्या तात्पर्य है?'' मैने प्रश्न किया। साधक कालीचरण ने कहा—''आनन्द उपमा और उपमेय दोनों है। इसलिए उसका उदाहरण अन्य किसी वस्तु से नहीं दिया जा सकता। आनन्द कैसा है आनन्द जैसा, लेकिन उसकी अनुभूति में परिवर्तन अवश्य होता है। अनुभूतियों के आधार पर मूलाधार में महाबिन्दु द्वारा जो आनन्द प्राप्त होता है उसे विरजानन्द, भवानन्द, नित्यानन्द, आत्मानन्द, दिव्यानन्द और परमानन्द कहते हैं।'' इन आनन्दों से उपलब्ध होने वाली समाधि के भी सात प्रकार हैं। अंतिम आनन्द परमानन्द से उपलब्ध समाधि परम समाधि है। परम समाधि की ही अवस्था में साधक मन,चक्र से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है।''

घड़ी को देखा, बारह बजने वाला था। शायद फलाहार का समय हो गया था महासाधक का। वह युवक अपने स्थान से उठा और एक झटके से निकल गया बाहर झोपड़ी के। इस प्रकार क्यों निकला, यह मेरी समझ में नहीं आया, लेकिन दस-पन्द्रह मिनट बाद वापस लौटा तो मैंने देखा उसके हाथ में विभिन्न प्रकार के फलों से भरी टोकरी थी। कहाँ से ले आया इतना फल और इतना शीघ्र?

फलों को उस महासाधक के साथ मैंने भी खाया और उस युवक ने भी। फल अति स्वादिष्ट था। लगा जैसे अभी-अभी वृक्षों से तोड़कर लाया गया हो। ''फल बहुत मीठा और स्वादिष्ट था बैरागी।'' उस युवक की ओर देखते हुए साधक कालीचरण ने मधुर स्वर में कहा। समझते देर न लगी मुझे। बैरागी था उस युवक का नाम। मैंने सिर घुमाकर बैरागी की ओर देखा। उसका चेहरा पहले की तरह भावहीन और सपाट था। कुछ क्षण बाद वह उठा। साधक कालीचरण के सामने झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया उसने और झोपड़ी के बाहर निकल गया।

हवा तेज हो गयी थी और काले-भूरे बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े तैरने लगे थे आकाश में। बारिश होने के आसार दिखलायी दे रहे थे। उस महासाधक ने सिर झुकाकर मौन साध लिया था अब। शायद आगे कुछ कहने की स्थिति में नहीं थे अब वह। वहाँ ठहरना अब उचित नहीं समझा मैंने। महात्मा को प्रणाम कर बाहर निकल आया। अब तक बादलों से अटकर काला हो गया था आकाश और छा गया था स्याह अँधेरा चारों तरफ। विद्युत की लम्बी रेखा बादलों की छाती को चीरती हुई चमकी। इसी के साथ तेज बारिश शुरू हो गयी।

क्या मेरी जल-समाधि हो जायेगी इस निर्जन अरण्य प्रान्त में? यह सोचकर कर धड़कने लगा तेजी से मेरा हृदय और तभी सामने से सिर पर गठरी रखे दोनों हाथों से उसे पकड़े देवकी आती हुई दिखलायी दी मुझे। अरे! इस प्रचण्ड बारिश में देवकी यहाँ कैसे? लगा जैसे मेरी सहायता के लिए ईश्वर ने भेजा हो देवकी को। एकबारगी प्रसन्न हो उठा मैं।

मुझे देखकर ठिठक गयी देवकी। बोली—"आप यहाँ कैसे बाबू?"

सब कुछ बतला दिया मैंने और अन्त में कहा—"पूरे दो घण्टे से खड़ा हूँ यहाँ एक तपस्वी की तरह।" देवकी हँस पड़ी। फिर गठरी को सिर से उतार कर बगल में दबाते हुए बोली वह-"आइये चलिये बाबू।"

"कहाँ... ?" "मेरी झोपड़ी में, बस थोड़ी ही दूर पर है मेरी झोपड़ी।" मेरा हाथ थाम कर लगभग खींचते हुए उत्तर दिया देवकी ने। अचानक आकाश के वक्ष को चीरती हुई बिजली कड़की और उसके क्षणिक प्रकाश में मैंने देखा सामने एक छोटा-सा मकान। क्या यही है देवकी की झोपड़ी?

आगे बढ़कर मकान का दरवाजा खोला देवकी ने। भीतर प्रकाश ही प्रकाश था चारों तरफ। आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। प्रकाश का स्रोत कहाँ था, यह समझ में नहीं आया। तीन-चार कमरे रहे होंगे मकान में। बीच वाला कमरा काफी लम्बा-चौड़ा था जिसमें सभी साधन उपलब्ध थे। एक बहुत बड़ा पलंग था। ऊँची-ऊँची आलमारियाँ थीं, ड्रेसिंग टेबल था जिसमें बेलजियम का कीमती आइना लगा था। कमरे के तीन ओर बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं जिन पर पीले रंग का कीमती झाड़फानूस था और जमीन पर बिछा हुआ था कीमती कालीन। सब कुछ देखकर लगा किसी पुराने और धनी रईस का विश्राम कक्ष हो वह कमरा। एक अति साधारण और मजदूर किस्म की लड़की के रहने का स्थान ऐसा होगा। इसकी कल्पना सपने में भी नहीं की जा सकती। मुँह बाये सिर घुमा-घुमाकर देख रहा था मैं चारों तरफ। क्या कोई इन्द्रजाल तो नहीं घटित हो रहा था मेरे साथ और तभी खिड़कियों के पर्दे लहराये और हवा के झोके के साथ पानी की बौछार बिखर गयी पूरे फर्श पर। सिर घुमाकर देखा हाथों में भोजन की थाली और पानी का लोटा लिये कमरे में आ रही थी देवकी। "भूख तो लगी ही होगी बाबू, लीजिये खाना खाइये।" कहकर मेरे सामने एक बड़ी-सी मेज पर रख दिया थाली और पानी का लोटा देवकी ने।

मेरा सारा शरीर सनसना रहा था उस समय। किसी अज्ञात भय से रह-रह कर सिहर उठता था मैं। बुद्धि काम नहीं कर रही थी। लगा जैसे सोचने-समझने की क्षमता गँवा बैठा हो मस्तिष्क। असहाय-सा अनुभव करने लगा था मैं अपने आपको।

मेरे पलंग पर बैठी थी देवकी। मैली-कुचैली साड़ी, घाघरे में लिपटी हुई और बोझा उठाने वाली साधारण युवती नहीं थी उस समय मेरे लिए देवकी। वह तो

किसी अप्सरा-सी लग रही थी मुझे। न जाने क्यों मुस्करा रही थी मेरी ओर देखकर वह। लगा जैसे गुलाब के शत-शत दल उड़ते जमीन पर बिखर गये हों एकाएक। भोजन करते समय बीच-बीच में सिर उठाकर देख लेता था मैं देवकी की ओर। रूप-रस में जगा देवकी का अक्षत यौवन मानवीय नहीं था कुछ और ही था जिसे समझ नहीं पा रही थी मेरी मन्द बुद्धि।

भोजन के बाद अपने आप लेट गया मैं पलंग पर। लगा जैसे किसी ने प्रेरित किया हो लेटने के लिए। अपने स्थान पर पहले की तरह बैठी हुई थी देवकी। उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें, धीरे-धीरे उठते-गिरते पलक, रक्ताभ अधर पल्लवों के बीच अधखुली सफेद पंक्तियाँ।

लेकिन एक बात अवश्य थी और वह यह कि उस रहस्यमय अवस्था में मेरी अन्तर चेतना सक्रिय रही बराबर, जिसके कारण एक अपूर्व आध्यात्मिक घटना का साक्षी बन गयी मेरी आत्मा। भौतिक जगत् का अस्तित्व वाष्पीभूत हो चुका था मेरे लिए। अब मैं अपने व्यक्तित्व का अनुभव एक ऐसे विलक्षण और कल्पनानीत जगत् में कर रहा था जिसे योग की भाषा में चिन्मय जगत् कहते है। वातावरण में चारों ओर कुहरे जैसा धुंध छाया हुआ था और उस धुंध के महासागर में मैंने देखा एक विशाल प्रांगण जो पीले रंग के संगमरमर के पत्थरों से बना हुआ था और पारदर्शी भी था और उस विशाल पारदर्शी प्रांगण के तीन ओर तो विशाल खम्भे थे और एक ओर स्फटिक पाषाण का लम्बा-चौड़ा पंचमुण्डी आसन बना हुआ था और दिव्य आसन पर महामाया पराशक्ति महाकाली की भव्य प्रतिमा स्थापित थी। प्रतिमा काले संगमरमर के पत्थर की थी, जिसकी ऊँचाई कम-से-कम छः फुट तो अवश्य ही रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। प्रतिमा बिल्कुल सजीव लगी मुझे। बड़े-बड़े नेत्र जो अपने आपमें भयंकर तो थे ही किन्तु इसके अतिरिक्त करुणा, दया, अनुकम्पा और कृपा के सागर भी लहरा रहे थे वहाँ। लपलपाती हुई रक्ताभ जिह्वा लगता था जैसे जगन्माता ने अभी-अभी किसी असुर का किया हो रक्तपान। बड़ी ही अद्‌भुत और बड़ी ही विचित्र छटा थी माँ महामाया की। लगा कभी किसी समय अट्टहास कर उठेगी प्रतिमा।

शवासीन महामाया का भय-अभय मिश्रित रूप देखकर रोमांचित हो उठा मैं एकबारगी और तभी मेरी दृष्टि पड़ी साधक कालीचरण पर। उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो उठा मैं। एकाएक मेरे मुँह से निकल गया—"अरे! आप यहाँ कैसे?" वह पहले थोड़ा मुस्कराये फिर बोले, "मैं तो यहीं रहता हूँ माँ की सेवा में।" थोड़ा रुककर आगे बोले महाशय—"तुम्हारी जिज्ञासाओं का पूरी तरह समाधान न कर सका था मैं, इसलिए यहाँ बुलाना पड़ा मुझे।" आप यहाँ कब से और कैसे हैं, सहज भाव से पूछा मैंने।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि उस समय अपने भौतिक जीवन के अस्तित्व को पूरी तरह विस्मृत कर चुका था मैं। मेरी स्मृति में यह भी नहीं था कि उस अरण्य प्रान्त के निर्जन इलाकों में स्थित किसी झोपड़ी में पहले भी मिल चुका हूँ और आध्यात्मिक प्रसंगों पर बातें भी कर चुका हूँ मैं उस साधक से।

मेरा प्रश्न शायद बाल-सुलभ-सा लगा साधक कालीचरण को। तभी हँस कर बोले वह—"साधना की एक ऐसी उच्च अवस्था है जिसको उपलब्ध होने पर साधक के लिए पार्थिव शरीर निरर्थक सिद्ध हो जाता है साधना की दृष्टि से। उसके लिए तब महत्वपूर्ण हो जाता है सूक्ष्म शरीर और उसी के माध्यम से आगे बढ़ता है अपने साधना-मार्ग पर। ऐसी अवस्था में सूक्ष्म जगत् में अपने और अपनी साधना के अनुकूल चिन्मय सृष्टि अपने आत्मबल से कर लेता है वह [redacted]। भौतिक काल गणना के अनुसार लगभग चार सौ वर्षों से यहाँ साधनारत हूँ मैं और इस दीर्घ अवधि में नौ बार संसार में शरीर धारण करना पड़ा मुझे कृत कर्मों के क्षय के लिए। यह मेरा दसवाँ शरीर है जिसे एक प्रकार से जीवित शव ही समझना होगा। आयु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं। जब तक आयु है तब तक तो भौतिक जगत् में मेरे भौतिक शरीर का अस्तित्व बना ही रहेगा, उसके बाद मेरा उससे जो नाता-रिश्ता है वह टूट ही जायेगा।"

यह सुनकर मेरी स्मृति का वह अंश एकाएक जागृत हो उठा जिसका सम्बन्ध उस महासाधक के साथ हुई आध्यात्मिक वार्ता के अंतिम प्रसंग से था... और स्मृति जागृत होते ही सहसा मेरे मुँह से निकल पड़ा—"आपके कहने का तात्पर्य यह है कि बिन्दु साधना और षट्चक्र साधना ही एकमात्र तंत्र साधना है और जो स्वयं अपने आपमें योगपरक है और जिनकी अंतिम उपलब्धि है 'परमानन्द' और शिव शक्ति का सामरस्य भाव जिसका परिणाम है परम मुक्ति लाभ जिसे अद्वैत लाभ भी कहते है। मेरी बात सुनकर साधक कालीचरण बोले—"इस विश्व ब्रह्माण्ड में मूलत: एक ही शक्ति है जिसे हम ब्रह्मा शक्ति अथवा आद्या शक्ति कहते हैं। सूक्ष्म तक प्राणवायु (ईथर) के रूप में वह शक्ति सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ब्रह्माण्ड विज्ञान के अनुसार वह शक्ति दो रूपों में विभाजित है, पहली है ईश्वर की अनुग्रह शक्ति जिसे 'योगमाया' भी कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी योगमाया का आश्रय लेकर अपनी सम्पूर्ण भौतिक लीलाएँ की थीं। दूसरी है 'काल शक्ति' जिसे दार्शनिक भाषा में तिरोधान शक्ति भी कहते हैं। पहली शक्ति तो मनुष्य के भीतर जीवात्म शक्ति के रूप में काम करती है, जिसके कारण मनुष्य संसार के बन्धन में बार-बार बँधता है, जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। सांसारिक मोह-माया आदि में लिप्त रहता है। इसी दृष्टि से दार्शनिक लोग शक्ति को माया कहते हैं।"

"दूसरी काल शक्ति है। यह 'महामाया' है। माया को अविद्या और महामाया को महाविद्या भी कहा जाता है। काल शक्ति, क्रिया शक्ति अथवा गति शक्ति भी

है। इस शक्ति का एकमात्र कार्य है मनुष्य की आत्मा को जीव भाव से मुक्त कराकर उसे उसका परम स्वरूप प्रदान करना जिसका अर्थ है आत्मा का शुद्ध, चैतन्य और मौलिक रूप। अपना मौलिक रूप प्राप्त होने पर आत्मा परमात्मा के अत्यन्त समीप हो जाता है। फिर उसमें जीव भाव कभी भी उत्पन्न नहीं होता।''

साधक कालीचरण आगे बोले—''[redacted]—[redacted]ल, यह भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनों खण्डों में विभक्त है इसलिए इसे 'खण्डकाल' कहते हैं। इसके बाद काल का अविरल सतत प्रवाह है जो भौतिक जगत् की सीमा रेखा का काम करता है। इस सीमा रेखा को पार करने के बाद ही दिव्य आत्मासम्पन्न सिद्ध योगीगण लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करते हैं।[redacted] अस्तित्व है जिसके सीमा के अन्तर्गत समस्त लोक-लोकान्तर और समस्त विश्व एवं समस्त जगत् है जो महाकाल के प्रभाव के अधीन है। इसके ऊप[redacted] अवस्था है [redacted] अन्तर्गत ऋषिमण्डल, देवमण्डल, आदि मण्डल हैं और उन सब मण्डलों के ऊपर 'ब्रह्ममण्डल' है।''

''इसी प्रसंग में तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि महाकाल की शक्ति महाकाली हैं। इसी प्रकार काल की शक्ति है काली। महाकाल में जो गति है और जो प्रवाह है उसका कारण महाकाली हैं क्योंकि महाकाली गति शक्ति अथवा क्रिया शक्ति हैं। इसलिए उनका एक पैर आगे की ओर बढ़ा हुआ है। काली के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिए। खण्डकाल में महाकाली अपने आपको तीन रूपों में विभक्त कर लेती हैं। तांत्रिक साधना भूमि में उन तीनों रूपों को महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती कहते हैं। ये तीनों रूप क्रमशः भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल से सम्बन्ध रखती हैं।

''तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि तंत्र के कई सम्प्रदाय हैं और उन सम्प्रदायों से सम्बन्धित कई साधना उपासना मार्ग भी हैं। जहाँ तक प्रश्न शक्ति का है उससे सम्बन्धित केवल मात्र एक ही सम्प्रदाय है और वह है 'शाक्त सम्प्रदाय'। इस सम्प्रदाय में शक्ति साधना के दो मुख्य मार्ग हैं—[redacted]। शाक्त सम्प्रदाय की अधिष्ठात्र शक्ति शिवारूढ़ महाकाली हैं। दक्षिण मार्ग में उनको [redacted] और वाम मार्ग में [redacted]कहा गया है। दक्षिण मार्ग साधना का रजोगुणी मार्ग है जबकि वाम मार्ग साधना का है पूर्ण तमोगुणी मार्ग। 'वामा' स्त्री का पर्याय है। यह कहना अनुचित न होगा कि वाम मार्ग की समस्त अंतरंग-बहिरंग साधना की मूलभित्ति एकमात्र स्त्री यानि वामा है। इसलिए इस तमोगुणी मार्ग को वाम मार्ग की संज्ञा दी गयी। वाम मार्ग में पुरुष नगण्य हैं प्रकृति प्रधान है, शिव उपेक्षित हैं, शक्ति मुख्य है। प्रकृति अथवा शक्ति पर अधिकार प्राप्त करना और उसे अपने अनुकूल बना लेना वाम मार्ग का प्रथम लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की सिद्धि के

निमित्त पंचमकार का प्रयोग [redacted] पूजा, गुह्य-पूजा, अंग-[redacted] चिता साधना, श्मशान साधना, शव साधना, [redacted] साधना, आदि साधनाएँ हैं। वास्तव में वाम मार्ग अतिरहस्यमय और गहन मार्ग है। उसकी गुह्यता, रहस्यमयता और गोपनीयता से विरला ही कोई परिचित हो सकता है। कहा भी गया है—''वाम: मार्ग: परम गहनो योगिनामप्य गम्य: ।''

मेरी एक यहाँ जिज्ञासा है और वह यह है कि दीपावली से काली का और तंत्र-मंत्र का क्या सम्बन्ध है ? मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में साधक कालीचरण ने संक्षिप्त में केवल इतना ही बतलाया कि चार मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण रात्रियाँ है—[redacted] शिवरात्रि को महारात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी की रात्रि को मोहरात्रि, होलिका की रात्रि को दारुण रात्रि और दीपावली की रात्रि को कालरात्रि कहते हैं।

महारात्रि के समय भूत, भविष्य और वर्तमान में तीनों कालखण्ड एक पल के लिए एक हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि लोकों से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक से। मोहरात्रि के समय काल का अनन्त प्रवाह भी एक या दो पल के लिए ठहर जाता है, जिसके फलस्वरूप देवलोक से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक का। इसी प्रकार दारुण रात्रि के समय महाकाल का अन्तहीन प्रवाह कुछ पल के लिए ठहर जाता है और जिसका परिणाम यह होता है कि महाकाल के अन्तर्गत जितने भी लोक-लोकान्तर हैं उन सबका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक से। भूलोक का एक भाग सूक्ष्म लोक है, जिसमें विदेही आत्माएँ निवास करती हैं। उस अवस्था में उन लोगों का सम्पर्क स्थापित हो जाता है लोक-लोकान्तर से। चौथी रात्रि है कालरात्रि। यह रात्रि अन्य रात्रियों से पृथक् अपना महत्व और वर्चस्व रखती है। इसकी अपनी आध्यात्मिक विशेषता तो है ही, इसके अतिरिक्त अलौकिक विशेषता भी है। [redacted] वहाँ परम शून्य है, जिसको योग की भाषा में [redacted]ते हैं। आकाश सात प्रकार के हैं, जिनमें परमाकाश अंतिम आकाश है और उस परमाकाश में महाकाल की अनन्त शक्तियाँ क्रियाशील हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, वे अनन्त शक्तियाँ ही विभिन्न रूपों में अंक, वर्ण और स्वर के रूप में अभिव्यक्त होती हैं, जिनका उचित संयोजन कर यंत्र और मंत्र का रूप दे दिया जाता है।

दीपावली ही एक ऐसी रात्रि है जो अन्य रात्रियों से गहन और प्रगाढ़ होती है और इसी कारण उसे महानिशा भी कहते हैं। महानिशा में नैसर्गिक रूप से महाकाल की शक्तियाँ भूमण्डल में अवतरित होती हैं और सभी प्रकार के देवी-देवताओं के विग्रहों, मूर्तियों, प्रतिमाओं और उनसे सम्बन्धित पीठ स्थानों को प्रभावित करती हैं। उनके प्रभाव-काल का समय केवल तीन घंटा मात्र होता है यानि रात्रि ग्यारह से

लेकर दो बजे रात्रि तक। इस समयावधि में देवी-देवताओं का विधिवत् निर्माण और मंत्र-जप आदि किया जाता है तो शीघ्र अभीष्ट लाभ होता है, मनोकामना पूर्ण होती है और सभी प्रकार के भौतिक सुखों की होती है प्राप्ति। इसी प्रसंग में यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि महाकाल की शक्ति महाकाली के होने के फलस्वरूप महाकाली के विग्रह रूप को अत्यधिक प्रभावित करती है वे शक्तियाँ। इसीलिए दीपावली की महानिशा बेला में महाकाली की पूजा, अर्चना और साधना विशेष रूप से की जाती है। इतना कहकर वह महासाधक अपलक निहारने लगा सामने पंचमुंडी आसन पर आरूढ़ महाकाल की महाशक्ति की अट्टहास करती हुई विकराल पाषाण प्रतिमा की ओर। एक पल नहीं उससे भी कम समय में दृश्य बदल गया। मैंने देखा अब महाकाली का वह परम साधक वीरासन की मुद्रा में बैठा हुआ था और उसके दाहिने हाथ में एक विकराल खड्ग था जिसे उँगलियों से कसकर पकड़े हुए था वह। साधना के प्रखर तेज से दप्-दप् कर रहा था उस समय उसका मुख-मण्डल। अभी भी अधखुली आँखों से निहार रहा था निर्विकार भाव से महामाया की ओर वह। लगा जैसे कोई अघटित घटने वाला हो प्रांगण के निस्तब्ध वातावरण में। किसी अज्ञात भय से सनसनाने लगा मेरा पूरा शरीर और तभी एक लड़की प्रकट हुई वहाँ।

कौन थी वह रहस्यमयी श्यामलांगी कन्या? उसके हाथ में लाल सिन्दूर से भरी एक छोटी-सी कटोरी थी जिसमें से सिन्दूर निकल कर साधक कालीचरण के मस्तक पर लगाया लम्बा टीका और फिर उसी प्रकार लगाया मेरे मस्तक पर भी उसने और उसके बाद जो मर्मस्पर्शी हृदय-विदारक और लोमहर्षक दृश्य देखा उससे मेरी आत्मा जड़वत् हो उठी। एकबारगी सारा शरीर काँपने लगा थर-थर। पाषाणवत् खड़ा देखता रहा मैं उस करुण दृश्य को अपलक।

न जाने कब और किस क्षण उस परम साधक ने हाथ में लिये हुए उस भयंकर खड्ग से धड़ से अलग कर दिया था अपना सिर। यथावत् बैठा हुआ था रक्तरंजित शरीर, पड़ा हुआ था माँ महामाया के समीप सिर। चारों ओर जमीन पर खून ही खून। महाकाली की लपलपाती हुई जीभ रक्ताभ लगी मुझे और उनकी आँखें भी लगीं आक्रोश से भरी हुईं, लगा जैसे जगतारिणी जगदम्बा ने किसी कारणवश स्वयं बलि दी हो उस महासाधक की।

उस समय अपना सुध-सुध गँवा बैठा था मैं पूरी तरह। वह रहस्यमयी कन्या टीका लगाने के बाद कहाँ और किधर गयी इसका भी ज्ञान नहीं रहा मुझे और उसी विकट स्थिति में लगा जैसे कोई स्याह छाया हाथ में वही भयंकर खड्ग लिये बढ़ रही है धीरे-धीरे मेरी ओर। वह रहस्यमयी स्याह छाया कौन थी और किसकी थी? क्या किसी नारी की थी? हाँ, नारी की थी वह छाया। उसके आकार-प्रकार से ऐसा ही लगा मुझे। अब तक मेरे बिल्कुल करीब आ गयी थी वह और उसका खड्ग

वाला हाथ उठने ही वाला था मेरे ऊपर और तभी भय-कंपित स्वर में चीख पड़ा मैं और उस निस्तब्ध प्रांगण में एकबारगी गूँजकर चिथड़े-चिथड़े हो गयी मेरी वह हृदय-विदारक चीख और उसी के साथ खुल गयी मेरी आँखें भी। चारों ओर सिर घुमाकर देखा, सान्याल महाशय के कैम्प में पड़ा था मैं एक चारपायी पर जिसके पास बैठे थे सान्याल महाशय के साथ एक डॉक्टर भी।

"क्या हो गया है मुझे? यहाँ कैसे और कब पहुँचा मैं?" थोड़ा उठने की कोशिश की मैंने।

"नहीं नहीं उठिये मत।" डॉक्टर मेरे ऊपर झुकते हुए बोला, "अभी आराम करिये बाद में सब मालूम हो जायेगा आपको और बाद में जो कुछ मालूम हुआ उससे आश्चर्यचकित हो उठी मेरी आत्मा।"

❑ ❑ ❑ ❑

सान्याल इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि रात्रि के समय अपनी झोपड़ी में किसी को भी नहीं रहने देते साधक कालीचरण। उस दिन पूरी रात बारिश होती रही। सवेरा हुआ और फिर दोपहर। मैं नहीं आया तो सान्याल और उनकी पत्नी का चिन्तित होना स्वाभाविक था। शंका-कुशंकाओं से भर उठा पति-पत्नी का मन। अपने एक साथी को लेकर मुझे खोजने निकले सान्याल महाशय। तालाब से कुछ पहले झाड़ी में पड़ा था मैं बेहोश। सारा शरीर सना हुआ था कीचड़ से। किसी प्रकार बैलगाड़ी पर लादकर लाया गया मुझे कैम्प में। पूरे सात दिनों तक अचेत पड़ा था मैं। इस बीच क्या-क्या नहीं किया, कौन-कौन-सा उपाय नहीं किया और किस-किस डॉक्टर और वैद्यों से इलाज नहीं कराया मेरा सान्याल महाशय ने। लेकिन सफलता नहीं मिली। यदि उस दिन होश न आया होता मुझे और चेतना न लौटी होती तो लोग जिला के सदर अस्पताल ले जाते और फिर वहाँ क्या-क्या होता मेरे साथ वह अंतर्यामी ही जानता है। जब थोड़ा स्वस्थ हुआ तो प्रश्नों की झड़ी लगा दी सान्याल महाशय ने—"उस भयानक बरसाती रात में कौन-कौन-सी ऐसी अनहोनी घटी जिससे बिल्कुल बेहोश पड़े रहे आप कीचड़ में? जरा सोचिये आपको कुछ हो जाता तो क्या जवाब देता मैं आपके परिवार वालों को।"

थोड़ा रुककर सिगरेट सुलगाते हुए जरा गम्भीर स्वर में बोले सान्याल महाशय—"यह बतलाइये, आपके मस्तक पर लाल सिन्दूर का लम्बा टीका कैसे लगा था और किसने लगाया था, अभी भी उसका दाग आपके मस्तक पर है।"

लाल सिन्दूर... टीका....यह शब्द सुनते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं और उसी के साथ मेरा सारा शरीर झनझना उठा एकबारगी। लगा जैसे बिजली के नंगे तार का स्पर्श हो गया हो मेरे शरीर से और उसी के साथ उस अंधेरी और काली बरसाती रात में शुरू से लेकर अन्त तक चेतन और अचेतन अवस्था में जो-जो घटनायें घटी थीं

और उस महासाधक से तंत्र के विषय में जो-जो चर्चायें हुई थीं वह सब कुछ मेरे स्मृतिपटल पर उभर आया एकबारगी और फिर पूरी कथा सुना दी मैंने सान्याल महाशय को और अन्त में कहा—"बन्धु! यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उच्च कोटि के योगी और महाकाली के महासाधक हैं साधक कालीचरण इसमें सन्देह नहीं। जिस पर लौकिक वातावरण की सृष्टि उन्होंने की थी वह सब उनकी योगमाया थी। उस यौगिक कौतुक का क्या उद्देश्य था यह मेरी समझ और बुद्धि के परे है। लेकिन यह तो निर्विवाद सत्य है कि उस अवस्था में उन्होंने तंत्र के जिन गूढ़, गोपनीय और रहस्यमय विषयों को अनावृत किया था आध्यात्मिक और साधना की दृष्टि से अति मूल्यवान और महत्वपूर्ण हैं, इसमें सन्देह नहीं।"

"क्या वहाँ जाने पर उस परम सिद्ध पुरुष का दर्शन हुआ मुझे?"

"नहीं, दर्शन हुआ भी तो उस समाधि का। झोपड़ी के बगल वाले पीपल के नीचे उस महापुरुष की समाधि बनी हुई थी मिट्टी के चबूतरे के रूप में। पीपल के सूखे पत्ते बिखरे हुए थे समाधि पर और जंगलों के पीछे छिपे सूरज की हल्की किरणों में लिपटा धूप का एक छोटा-सा टुकड़ा चिपका हुआ था उन सूखे पत्तों के बीच। एक खिन्नता-भरी उदासी बिखरी हुई थी चारों ओर वातावरण में। झोपड़ी के भीतर झाँककर देखा, साँय-साँय कर रहा था वहाँ। माँ महामाया की मूर्ति अपने स्थान पर थी जिस पर कभी के चढ़े जवा पुष्प सूख गये थे। उस महासाधक का तख्त भी अपने स्थान पर था पूर्ववत् लेकिन उस पर कोई बैठा नहीं था। बैठने वाला चला गया था इस संसार से हमेशा-हमेशा के लिए।"

अभी बैरागी और देवकी से सम्बन्धित प्रश्न उलझे हुए थे मस्तिष्क में और जब यह सुनने में आया कि बैरागी और देवकी को वहाँ के लोग नहीं जानते। किसी ने भी अपनी आँखों से देखा तक नहीं है उन दोनों को तो और दयनीय हो गयी मेरी स्थिति। शून्य हो गयी मति-गति। क्या वे दोनों भी उस परम योगी की योग-माया के कोई विशिष्ट अंग थे? हे भगवान्! कौन करेगा साधक कालीचरण के मायाजाल के रहस्यों को अनावृत।

●

१

श्मशान की सिद्ध भैरवी

लगभग चालीस वर्ष पूर्व, कार्तिक का महीना था। हवा में हल्की सिहरन थी। साँझ की स्याह बिखर चुकी थी चारों तरफ। मैं रोज की तरह गालों पर हाथ धरे लाली घाट की सीढ़ियों पर बैठा जीवन और मृत्यु के दर्शन पर चिन्तन कर रहा था। उस दिन न जाने क्यों चित्त अत्यधिक व्याकुल था। अपने आपमें एक अजीब-सी शून्यता का अनुभव कर रहा था मैं।

समय व्यतीत होता जा रहा था और उसी के साथ साँझ की स्याह कालिमा भी रात्रि की प्रगाढ़ता में परिवर्तित होती जा रही थी धीरे-धीरे। वातावरण में गहरी नीरवता छायी हुई थी। श्मशान भी खामोश था उस समय। कुछ देर पहले कोई लाश जलाई गयी थी, जिसकी चिता की राख अभी गर्म ही थी। उस गर्म राख के सीने से अभी भी धुँए की पतली-सी लकीर निकल कर हवा में चक्कर काट रही थी।

पूरब के आकाश के स्याह-पटल पर शुक्र तारा झिलमिला रहा था। अपलक निहारने लगा मैं उसी की ओर। फिर जैसे अपने आपसे बोल पड़ा, "कहाँ मिलेगी मुझे शांति.... कैसे समझाऊँ मैं अपने मन को....."

उसी समय किसी के खिलखिला कर हँसने की आवाज सुनायी पड़ी तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं। चारो तरफ सिर घुमा कर अँधेरे में देखने की कोशिश की। सीढ़ियों की बगल में लाश रखने के लिए एक चबूतरा बना था। अँधेरे में डूबे उसी टूटे-फूटे चबूतरे पर बैठी एक भिखारिन मेरी ओर देखती हुई हँस रही थी। अधेड़ उम्र, जटा-जूट जैसी केश-राशि धूल में सनी हुई थी। गन्दे शरीर पर मैली-कुचैली और फटी-पुरानी साड़ी लिपटी हुई थी। बगल में एक सोटा, गठरी और अल्युमुनियम का एक कटोरा पड़ा था, जिसमें सबेरे का सूखा भात था। निश्चय ही उसी भिखारिन के हँसने की आवाज थी वह।

लेकिन वह भिखारिन क्यों हँसी थी? मैं समझ न सका। मगर जब उठ कर चलने लगा तो वह मेरे सामने आ कर खड़ी हो गयी और उसी तरह खी-खी कर हँसती हुई बोली—"समझती थी कि एक मैं ही पागल हूँ, पर तू तो मुझसे भी बढ़ कर पागल निकला रे!" और तभी दुर्गन्ध का एक तेज भभका न जाने किधर से आकर मेरे चारों ओर बिखर गया। निश्चय ही वह दुर्गन्ध भिखारिन के गन्दे कपड़ों से निकली थी। उसी के साथ-साथ पास ही कहीं कोई मरियल कुत्ता भी रो पड़ा

एकबारगी चीख कर। मुझसे अब और नहीं रुका गया वहाँ अतः अँधेरे में जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर आ गया मैं। भिखारिन फिर खी-खी कर हँस पड़ी। मैंने एक बार सिर घुमा कर उसकी ओर देखा, इसके बाद तेज कदमों से बढ़ गया।

मेरे एक तांत्रिक मित्र थे उन दिनों। उनका नाम था तारानाथ भट्टाचार्य। वह कालीबाड़ी में रहते थे। एक दिन न जाने कैसे बातों ही बातों में मैंने उस भिखारिन की चर्चा उनसे कर दी। मेरी बात सुन कर भट्टाचार्य महोदय पहले तो मुस्कराये, फिर सहसा गम्भीर हो गये। वह क्यों मुस्कराये और फिर क्यों गम्भीर हो गयी उनकी मुखमुद्रा, मैं समझ न सका। भौंचक्का-सा देखता ही रह गया मैं उनकी ओर।

कुछ क्षण के बाद वह गम्भीर स्वर में बोले—"जो भिखारिन तुमको श्मशान में मिली थी, जानते हो वह कौन थी?"

क्या जवाब देता। मैं तो एक दुर्गन्धमयी मैली-कुचैली पागल-सी भिखारिन से मिला था, जो मुझे भी पागल समझ कर खी-खी कर हँस पड़ी थी।

अचानक भट्टाचार्य महाशय ने बताया, "वह पागल भिखारिन नहीं, उच्चकोटि की तांत्रिक संन्यासिनी है।"

शवसाधिका

ऐं? क्या कहा आपने? चौंक कर बोला मैं—वह तांत्रिक संन्यासिनी है?

"हाँ। उच्चकोटि की शवसाधिका है वह। उसे शव सिद्ध है। इसके अलावा कई और प्रकार की दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त हैं उसे। उसकी उम्र कितनी है यह कोई नहीं बतला सकता। मैं भी नहीं जानता।" भट्टाचार्य महाशय पल भर रुक कर बोले, "किसी रियासत की राजकुमारी थी वह। नाम था स्वर्णा। जब स्वर्णा सोलह वर्ष की हुई तो रियासत के राजतांत्रिक ने उसे दीक्षा देकर अपनी भैरवी बना लिया। इसके लिए स्वयं रियासत के महाराज ने स्वीकृति दी थी।"

"उस राजतांत्रिक का नाम क्या था?"

"राजेश्वरानन्द अवधूत।" भट्टाचार्य महोदय अतीत में खोये हुए बताने लगे, "राजेश्वरानन्द अवधूत स्वयं उच्चकोटि के शव-साधक थे। पिशाच सिद्ध था उन्हें। स्वर्णा के सहयोग से उन्होंने अपनी साधना के अंतिम लक्ष्य कुण्डलिनी को जागृत करने का प्रयास किया था। शायद इसी अनुष्ठान के निमित्त भैरवी भी बनायी गयी थी वह, लेकिन अपने प्रयास में वह सफल न हो सके। हाँ, स्वर्णा अवश्य सफल हो गयी। उसकी प्रसुप्त कुण्डलिनी एकाएक ही जागृत हो गयी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने स्वयं अपनी आँखों से कुण्डलिनी से सम्बन्धित उसके कई चमत्कारों को देखा है।"

थोड़ा रुक कर भट्टाचार्य महाशय बोले, "राजेश्वरानन्द काशी के ही थे। उनका शरीर तो अब नहीं है, मगर उनका रहस्यमय गुप्त साधनाश्रम अभी भी यहीं

कहीं है। लोगों का कहना है कि उस रहस्यमय आश्रम से पारलौकिक जगत् का अगोचर सम्बन्ध है। आज भी कभी-कदा गुप्त रूप से संचरण-विचरण करने वाले मानवेतर शक्तिसम्पन्न योगी और तांत्रिक उस आश्रम में आते हैं, मगर उन्हें न कोई एकबारगी समझ सकता है और न पहचान ही सकता है।''

यह सब सुन कर मेरा मन उद्भ्रान्त-सा हो गया। पूरी रात नींद नहीं आयी। बार-बार उस भिखारिन का रूप मेरे सामने थिरक उठता था।

आखिर जैसे-तैसे सबेरा हुआ ही था कि मैं श्मशान पहुँचा और इधर-उधर खोज करने लगा। कई लोगों से पूछा भी मैंने, मगर न वह भिखारिन मुझे मिली और न उसका पता ही चला। हताश और निराश होकर लौट आया मैं।

इसके बाद भी मैं रोज श्मशान जाता रहा, पर उस भिखारिन का दर्शन नहीं हुआ मुझे। समझ में नहीं आया कि वह कहाँ चली गयी?

धीरे-धीरे तीन-चार महीने का समय गुजर गया। एक दिन मैं अपने मित्र के साथ पिक्चर देखने गया था। 'नावेल्टी' में 'चैतन्य महाप्रभु' फिल्म लगी थी। भीड़ काफी थी। टिकट मिलना मुश्किल देख कर मैं खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि क्या किया जाये? तभी मेरी नजर एक प्रौढ़ा नारी पर पड़ी। उसका व्यक्तित्व असाधारण था। शायद उसके असाधारण व्यक्तित्व ने ही मुझे आकर्षित किया था। उम्र पैंतीस-चालीस के लगभग रही होगी, लेकिन चेहरे पर अभी भी किशोरवय-सा लावण्य था। दूध में आलता मिला देने से जो रंग बनता है, वैसा ही था उस प्रौढ़ा सुन्दरी के शरीर का रंग। बाल भी काफी घने और काले थे। महाराष्ट्रियन स्त्रियों की तरह बालों में चम्पा की वेणी लगा रखी थी उसने। हाथों में सोने की जड़ाऊँ चूड़ियाँ पड़ी थीं। कीमती कश्मीरी शाल लपेटे थी वह अपने शरीर के चारो ओर। मस्तक पर सिन्दूर का बड़ा-सा गोल टीका लगा था। चेहरा दप-दप करके जैसे किसी अज्ञात तेज से दमक रहा था। आँखें साधारण नहीं थीं। वहाँ भी विचित्र किस्म का आकर्षण था। उसकी आँखों में अजीब-सी स्थिरता, गहरायी और असीम करुणा भरी थी।

जब मैं निराश होकर अपने मित्र के साथ लौटने को हुआ तो वह मुस्कराती हुई धीरे-धीरे चल कर मेरे करीब आयी और हँस कर बोली—'टिकट नहीं मिला? यह लो।' और उसने बालकनी के दो टिकट मेरी ओर बढ़ा दिये।

एक अपरिचित महिला का इस प्रकार प्रश्न करना, फिर बिना माँगे टिकट भी देना आश्चर्यजनक और कौतूहलमय लगा मुझे। सकपका कर बोला, ''मैं तो आपको जानता-पहचानता भी नहीं। कौन हैं आप?''

मेरा प्रश्न सुनकर वह खिलखिला कर हँसने लगी एकबारगी। दाँतों तले दबे पान का बीड़ा निकलते-निकलते रह गया। मघई पान के रस में डूबी हुई उसकी वह हँसी बड़ी ही मधुर लगी मुझे। वह उसी रस भरे भाव और मुद्रा में बोली, ''मैं स्वर्णा हूँ। श्मशान की वही पगली भिखारिन, जो उस रात तुमको मिली थी।''

एकबारगी चौंक पड़ा मैं। फिर अपने को सम्भाल कर बोला—"क्या कहती हैं आप? मुझे विश्वास नहीं होता। कहाँ आप और कहाँ वह दुर्गन्धयुक्त पागल भिखारिन।"

यह सुन कर उस प्रौढ़ा रूपसी ने जवाब तो नहीं दिया, मगर एक क्षण के लिए मैंने जो कुछ देखा, उसने मुझे एकदम स्तब्ध और रोमांचित कर दिया। उस एक क्षण में मैंने उस प्रौढ़ा महिला को उसी भिखारिन के रूप में देख लिया था। उसके बाद उसने कब मुझे टिकट दिये, कब मैंने उसके हाथ से टिकट लिये और कब हाल में जाकर पिक्चर देखी, इसका जैसे कुछ होश ही न रहा मुझको। लगातार एक तन्द्रा-सी मुझ पर और मेरी चेतना पर छायी रही। हाँ, उतना अवश्य स्मरण है कि उस महिला के रूप में वह भिखारिन रहस्यमय ढंग से बराबर मेरे साथ बनी रही। फिल्म भी देखी थी उसने। उसके अस्तित्व की मुझे बराबर अनुभूति होती रही।

आखिर शो खत्म हो गया। जब सिनेमा हाल से बाहर निकला तो देखा वह भी मेरे साथ चल रही थी। सहसा मेरे कान में फुसफुसा कर बोली, "शराब पिलायेगा?"

"ऐं ! शराब? शराब... क्या आप शराब पीयेंगी?"

"हाँ रे! बहुत दिनों से नहीं पी है। बहुत प्यास लगी है रे!"

नावेल्टी (अब दीपक टाकीज)के बगल में एक सँकरी-सी गली है। उसी गली में उस समय 'संगम' बार था। खाने-पीने का अच्छा प्रबन्ध था उसमें। मैं स्वर्णा को उसी बार में ले गया। फिर खूब छक कर मदिरा-पान किया। मुर्गा भी उसने खाया। बिल आया दो सौ बीस रुपये का। अपने मित्र से रुपये लेकर बिल चुकाया मैंने। मेरे पास रुपया कहाँ था इतना।

दूसरे दिन मेरे मित्र फिर मिले। कहने लगे—शर्माजी, बड़े ही आश्चर्य की बात है। जो रुपये मैंने दिये थे वे तो मेरी जेब में ही पड़े हैं। भाई यह चमत्कार तो मेरी समझ में नहीं आया। कौन थी वह महिला? क्या तुमसे फिर भेंट हुई उनसे?

हँस कर टाल दिया मैंने। जवाब भी क्या देता? यदि मित्र महोदय को वास्तविकता से परिचित भी कराता भी तो मुझको बेवकूफ ही समझते वह महाशय।

उसी दिन तारानाथ भट्टाचार्य भी मिल गये मुझको। मैंने उन्हें एक-एक करके सारी घटनायें बतलायीं। सब कुछ सुनने के बाद वे बोले, "तुमको तो बतलाया ही था कि उच्चकोटि की तंत्र-साधिका है स्वर्णा। कुण्डलिनी जागृत है उसकी। स्वर्णा को कुण्डलिनी के ही कारण मानवेतर शक्ति प्राप्त है। वह अपनी शक्ति के बल पर असम्भव से असम्भव कार्य कर सकती है इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं।"

फिर एक दीर्घ अन्तराल। उस चमत्कारी संन्यासिनी के दर्शन दुर्लभ हो गये। खोजने का प्रयास भी किया मगर असफल रहा।

आखिर थक-हार कर बैठ गया।

एक रोज साँझ के समय मैं अपने कमरे में बैठा कुछ लिख-पढ़ रहा था, तभी अचानक आ गयी स्वर्णा। मैं आश्चर्यचकित हो उठा। उस समय भी वह भिखारिन की वेशभूषा में नहीं थी वह, बल्कि बिल्कुल किसी राजकुमारी की तरह एकदम राजसी परिधान में सज-धज कर आयी थी उस समय। आयु भी कम ही लग रही थी। जान पड़ता था कि पच्चीस-छब्बीस वर्ष की है। कमरे में घुसते ही वातावरण में जैसे इत्र का सैलाब उमड़ आया हो। चौंक कर मैंने पूछा—"अरे, आप? यहाँ कैसे आयीं? मेरा मकान कैसे मिला आपको? इतने दिनों तक रहीं कहाँ आप?"

इस प्रकार एक साथ मेरे कई प्रश्न सुन कर वह एकबारगी हँस पड़ी। फिर बोली—"यह आप-आप क्या लगा रखा है तुमने?... अरे, तुम मुझे खोज रहे थे न? पागल हुए जा रहे थे मेरे लिए, इसलिए सोचा मिल लूँ, नहीं तो..."

"नहीं तो क्या?"

फिर हँसने लगी वह। बोली—"तुम न जाने कितने योगियों से मिले हो। न जाने कितने साधक-साधिकाओं से भी मिले हो। उन सबकी स्मृतियाँ तुम्हारे साथ हैं। सोचा, चलो मैं भी तुम्हारे मस्तिष्क के किसी कोने में स्मृति बन कर हमेशा के लिए रह जाऊँ। कभी तो याद करोगे तुम।"

स्वर्णा को क्या हो गया है कि इस तरह की बहकी-बहकी-सी बात कर रही है? कहीं शराब तो पी नहीं रखी है उसने?

मेरा अनुमान सही निकला। शराब पी रखी थी उसने। उसके मुँह से शराब का एक तेज भभका निकला और वातावरण में घुल-मिल गया।

मैंने नाक पर रूमाल रख लिया।

"अच्छा तो.... तुम... शराब से घृणा करते हो?" लड़खड़ाते स्वर में बोली स्वर्णा, "देखना एक दिन शराब ही तुम्हारी सिद्धि बन जायेगी। बिना शराब के जीवन में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकोगे तुम। समझे?"

सचमुच, आज भी उस तांत्रिक संन्यासिनी की स्मृति सुरक्षित है मेरे मस्तिष्क में। लगभग चालीस साल का लम्बा अर्सा गुजर गया, मगर आज भी वह महान् साधिका मेरे मानस-पटल पर छाई हुई है। जब कभी उसकी स्मृतियों में डूब जाता हूँ तो ऐसा लगता है कि वह मेरे सामने ही आकर खड़ी हो गयी है और मेरी ओर देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रही है।

चमत्कार

सावन-भादों का महीना था। कुछ देर पहले तक आसमान साफ था, मगर देखते ही देखते हवा तेज हो गयी और काले-भूरे बादलों से भर कर एकदम काला हो गया आसमान। पहले टप-टप टपकीं बूँदें टपकीं, फिर झर-झर कर बरसने लगा

पानी। उद्दाम हवा का तूफानी विलाप भी गूँज उठा बारिश के लय के साथ। धीरे-धीरे उसकी गति तेज ही होती गयी।

थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद अचानक शराब की माँग कर बैठी स्वर्णा। कहने लगी—''शराब चाहिये, प्यास लगी है। गला सूख रहा है। जल्दी जाकर ले आओ कहीं से।''

मैं घबरा गया। शराब पीने को कौन कहे, उसे स्पर्श तक नहीं किया था मैंने कभी। उस समय इतना पैसा भी नहीं था कि किसी को भेजकर ही मँगवा लेता।

शायद मेरे संकोच और असमर्थता को समझ गयी वह साधिका। उसने एक बार गहरी नजर से मेरी ओर देखा, फिर दोनों हाथों को हवा में हिलाया।

उसकी यह रहस्यमयी क्रिया मेरी समझ में नहीं आयी, मगर दूसरे ही क्षण आश्चर्य और कौतूहल के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। देखा—उसके दोनों हाथों में न जाने कब और कैसे विलायती शराब से भरी हुई दो बोतलें आ गयी थीं। मुस्करा कर वह बोली, ''ले तू, नहीं लाया तो मैंने ही मँगवा ली।''

मैं क्या बोलता? मुँह बाये शराब की बोतल की ओर देखता रहा। फिर दोनों बोतलें खाली हो गयीं। कुछ ही क्षणों में सारी शराब पी गयी वह। उसका चेहरा तमतमा उठा और आँखें अड़हुल के फूल की तरह लाल हो गयीं।

हवा में हाथ हिला कर कीमती शराब की बोतल उत्पन्न करने का चमत्कार देख कर मैं उसका रहस्य जानने के लिए उत्कंठित हो उठा। योगी अथवा साधकों के द्वारा किसी भी वस्तु की सृष्टि तीन प्रकार से हुआ करती है—योगबल से, विज्ञानबल से और प्रेतबल से। यह मैं जानता था और यह भी जानता था कि प्रेतबल से इस प्रकार का कार्य करना निम्न कोटि की सिद्धि है। न वह यथार्थ होता है और न तो स्थायी ही।

सहज भाव से मैंने पूछा, ''आपने शराब की बोतल किस शक्ति के बल पर मँगवाई है?''

''आन्तरिक मन:शक्ति की सहायता से, जिसे विज्ञानबल भी कहा जाता है। आन्तरिक मनोबल ही एकमात्र विज्ञानबल है।''

''फिर योगबल क्या है?''

''जिस प्रकार मन में आकर्षण-विकर्षण है उसी प्रकार प्राण में भी आकर्षण-विकर्षण है। यह वेद विज्ञान का विषय है। वेद में प्राण के आकर्षण-विकर्षण को येतिच-प्रेतिच कहते हैं। श्वास-प्रश्वास उसके स्थूल अथवा भौतिक रूप हैं। प्राणबल ही एकमात्र योगबल है।''

''क्या दोनों की सहायता से समान रूप से सृष्टि अथवा निर्माण सम्भव है?''

''हाँ! जहाँ आकर्षण और विकर्षण तत्त्व की मात्रा समान एवं अधिक होगी, वहाँ उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। फिर भी योगबल सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उससे मौलिक सृष्टि होती है।''

''मौलिक सृष्टि से आपका तात्पर्य समझा नहीं मैं।''

''शरीर में बहुत से ऐसे स्थान हैं, जहाँ शून्य के सिवाय और कुछ नहीं है। योगियों का कहना है कि जहाँ शून्य अथवा अभाव है, वहाँ शक्ति का केन्द्र समझना चाहिए। शरीर में दस-बारह शक्ति-केन्द्र हैं, जिनमें कुछ मन:शक्ति के केन्द्र हैं तो कुछ प्राणशक्ति के। विद्युतशक्ति की तरह उस शक्ति की भी धनात्मक और ऋणात्मक धारायें हैं। पहली धारा में आकर्षण क्रिया और दूसरी धारा में विकर्षण क्रिया काम करती है।''

मैंने कहा, ''जैसा कि बतलाया गया है—मन और प्राण के दो रूप हैं, पहला है बाह्य रूप और दूसरा है आन्तरिक रूप। आपके सिद्धान्त का सम्बन्ध किस रूप से है?''

''दोनों के आन्तरिक रूप से। आन्तरिक मन और प्राण को ही सूक्ष्ममन और सूक्ष्मप्राण कहते हैं। बाह्य मन और प्राण के संयम से सूक्ष्ममन और सूक्ष्मप्राण पर अधिकार किया जाता है। प्राण पर अधिकार योग का और मन पर अधिकार तन्त्र का विषय है। सूक्ष्मप्राण पर अधिकार हो जाने पर उसकी आकर्षण-विकर्षण शक्ति की सहायता से किसी भी वस्तु की मौलिक सृष्टि की जा सकती है।''

चेतनतत्त्व-अचेतनतत्त्व

''मगर किसी भी वस्तु की सृष्टि में दो तत्त्व काम करते हैं—चेतन तत्त्व और जड़ तत्त्व, जिसे वैदिक विज्ञान में देव तत्त्व अथवा शक्ति तत्त्व अथवा भूत तत्त्व कहते हैं। मैं मान लेता हूँ कि सूक्ष्म प्राण चेतना अथवा शक्ति तत्त्व है, पर उसके द्वारा सृष्टि के लिए भूत तत्त्व का होना भी तो अनिवार्य है।''

''अवश्य! वायु मण्डल में सभी प्रकार के भूत तत्त्वों के अणु-परमाणु विद्यमान हैं। योगी लोग सूक्ष्मतम प्राण की आकर्षण व विकर्षण शक्ति के माध्यम से उन अणु-परमाणु को केन्द्रित कर इच्छानुसार किसी भी वस्तु की सृष्टि कर देते हैं। सभी प्रकार की भौतिक वस्तुओं में पृथ्वीतत्त्व मुख्य होता है। शेष तत्त्व गौण होते हैं। इसलिए यौगिक सृष्टि में पृथ्वी तत्त्व के अणु-परमाणुओं को मुख्य अथवा मूलआधार बनाया जाता है। योगी की इच्छाशक्ति भी वहीं केन्द्रित होती है। शेष तत्त्व चेतना की सहायता से वस्तु अथवा पदार्थ के निर्माण में सहयोग देते हैं। प्राकृतिक सृष्टि और यौगिक सृष्टि के मूल से कोई अन्तर नहीं है, और अन्तर है भी।''

''वह क्या?''

"प्राकृतिक सृष्टि स्वयंभू सृष्टि है। उसके आधार पर किसी की इच्छा नहीं है, इसलिए प्रकृतिप्रदत्त वस्तु धीरे-धीरे नाश की ओर उन्मुख हो जाती है। प्रकृति में जहाँ निर्माण है, वहीं नाश भी है, मगर यौगिक सृष्टि में यह बात नहीं। वह स्वयंभू सृष्टि नहीं है। उसके पीछे योगी की इच्छा काम करती है। इच्छा के आधार पर भूततत्त्व और चेतनतत्त्व मिलकर वस्तु या पदार्थ का निर्माण करते हैं, इसलिए जिस वस्तु या पदार्थ की यौगिक सृष्टि होती है, उसका कभी किसी काल में नाश नहीं होता। उसके रूप और गुण में भी किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा विकृति नहीं पैदा होती।"

"मनोबल से कैसे सृष्टि सम्भव है?"

"प्राण सबसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतम है, मगर मन प्राणों से भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है, इसलिए मन की शक्ति और गति भी प्राण शक्ति से अत्यधिक है और यही कारण है कि योग से तंत्र को ऊँचा माना गया। स्वप्न और कल्पना बहिर्मन का विषय है। बहिर्मन सपने देखता है और कल्पना करता है। यही दो विषय बहिर्मन के हैं, मगर जब वही सपना और कल्पना अन्तर्मन की सीमा में प्रवेश करते हैं और अन्तर्मन का विषय बनते हैं तो उसके रूप और गुण दोनों बदल जाते हैं। सपना अतीन्द्रिय दर्शन एवं ज्ञान व कल्पना संकल्प का रूप धारण कर लेती है। एक हो जाता है अर्थात् अतीन्द्रिय दर्शन व ज्ञान और दूसरा हो जाता है संकल्प। मतलब यह कि सपना और कल्पना का चरम विकसित रूप अतिन्द्रिय दर्शन और संकल्प है।"

"इन दोनों का चरम विकास कैसे सम्भव है?"

"इसके लिए केवल एक ही उपाय है और वह है एकमात्र ध्यान, और वह ध्यान भी ऐसा कि जिसमें चित्त एकाग्र और विचारशून्य हो। कहीं कोई विकार न हो। विचारशून्य और विकाररहित ध्यान ही हमें बहिर्मन से आन्तर मन में ले जा सकता है। हम इसमें जितना सफल होंगे, उतना ही मन के आन्तरिक रूप को पकड़ सकेंगे। एक बात और समझ लो तुम वह यह है कि मन के दोनों रूप जहाँ जिस सीमा पर मिलते हैं—वहीं समाधि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मतलब यह कि हम मन के आन्तरिक रूप के द्वारा समाधि की स्थिति में पहुँचते हैं। विचारशून्य अवस्था का ही दूसरा नाम समाधि है।

"जैसा मैंने बताया कि आन्तरिक मन के दो विषय हैं। पहला है संकल्प और दूसरा है अतीन्द्रिय दर्शन व ज्ञान। आन्तरजगत् की ये दो महान् शक्तियाँ हैं—इसमें सन्देह नहीं। यदि इन दोनों महान् शक्तियों की उपलब्धि हो जाये तो निस्सन्देह मनुष्य एक विशेष सीमा तक अपने आपमें मानवेतर कार्य कर सकने की क्षमता उत्पन्न कर सकता है। संकल्प में बड़ी प्रबल और असीम शक्ति है। संकल्पशक्ति के द्वारा वह इच्छानुसार किसी भी वस्तु अथवा पदार्थ की रचना और सृष्टि कर सकता है। इसके

अलावा वह जो चाहे कर सकता है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। इसी प्रकार अतीन्द्रिय दर्शन और ज्ञान के द्वारा वह एक स्थान पर बैठे-बैठे ही सैकड़ों-हजारों मील दूर घटने वाली घटनाओं और सम्बन्धित दृश्यों को केवल आँखें बन्द करके देख-सुन और समझ सकता है।''

स्वर्णा ने पलभर रुककर आगे बतलाया, ''संकल्प सृष्टि के अन्तर्गत क्रम से चार प्रक्रियायें हैं। पहली है संकल्प, दूसरी है वस्तु का ध्यान, तीसरी है उस ध्यान के सहयोग से सीमा यानी समाधि की स्थिति में पहुँचना और चौथी प्रक्रिया है सम्बन्धित वस्तु के रूप-गुण और स्वभाव का उस स्थिति में गहन बोध करना। मैंने इन्हीं प्रक्रियाओं द्वारा शराब की बोतलों की सृष्टि की थी।''

''तो आपको दूसरी शक्ति भी उपलब्ध होगी?''

मेरी बात सुनकर हँसने लगी स्वर्णा। फिर बोली, ''तुम तो बिल्कुल बच्चों जैसी बातें करते हो। जब साधक को एक सिद्धि या शक्ति प्राप्त हो जाती है तो दूसरी सिद्धि अथवा शक्ति प्राप्त होने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती उसे लेकिन प्रयास बराबर करते रहना चाहिये। अच्छा, अब बोलो, तुम चाहते क्या हो?''

अब तक यह सब देख-सुन कर मैं स्वर्णा के व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक आकर्षित हो चुका था। मेरे मस्तिष्क में उस समय तरह-तरह की जिज्ञासायें उमड़-घुमड़ रही थीं। मन में तरह-तरह के विचारों के तूफान उठ रहे थे। क्या अतीन्द्रिय शक्ति की सहायता से मनुष्य भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल की घटनाओं और उनसे सम्बन्धित दृश्यों को देख सकता है? जान-समझ सकता है? अथवा बतला सकता है? मैंने प्रश्न किया?

क्यों नहीं? जिसे अतीन्द्रिय शक्ति उपलब्ध है, उसके लिए यह सब अत्यन्त सरल है।

एकाएक मैंने पूछा, ''अच्छा! क्या आप अतीन्द्रिय शक्ति का कोई चमत्कार दिखा सकेंगी इस समय?''

''क्या देखना चाहते हो? बोलो?''

''मेरे एक मित्र हैं। नाम है विपिन। चार साल से वह गायब हैं। काफी खोजा गया, मगर कोई पता नहीं चला उनका। क्या आप बता सकती हैं कि वह महाशय कहाँ हैं?''

स्वर्णा ने ध्यान की मुद्रा में आसन लगाकर थोड़ी देर के लिए आँखें बन्द कर लीं फिर उसी स्थिति में कहने लगी, ''मैं तुम्हारे मित्र का तीनों काल बतलाऊँगी। पहले भूतकाल सुनो। १८ जनवरी को सायंकाल तुम्हारा मित्र सिनेमा देखने के लिए कहकर घर से निकला, मगर सिनेमा नहीं गया। उसके पास उस समय दो हजार रुपये नकद और लगभग पाँच हजार रुपये के जेवर थे। वह एक लड़की के चक्कर

में था। उसी को लेकर कराची चला गया। उस लड़की का नाम था सावित्री। पूरे दो महीने कराची रहने के बाद वे दोनों बम्बई चले गये। वहाँ उन्होंने शादी कर ली।''

इतनी सारी बातें मुझे मालूम नहीं थीं। बाद में पता लगाया तो १८ जनवरी को सायंकाल विपिन के जाने तथा रुपये एवं जेवर की बात सच निकली।

स्वर्णा ने आगे बतलाया, ''बाद में विपिन को धोखा देकर उसकी पत्नी किसी पारसी युवक के साथ गोवा चली गई। उसकी बेवफाई से टूटा विपिन इस समय बम्बई में अकेला रह कर एक फिल्म स्टूडियो में नौकरी कर रहा है। वह घर आना चाहता है, मगर लज्जा और संकोचवश उसकी आने की हिम्मत नहीं हो रही है।''

थोड़ा रुककर स्वर्णा ने आगे कहा, ''यह तो हुआ तुम्हारे मित्र का भूत और वर्तमान काल। अब भविष्य थोड़ा जान-समझ लो। दीपावली के ठीक दो दिन पहले वह घर वापस लौट आयेगा। मगर अकेला नहीं आयेगा, उसके साथ उसकी दूसरी पत्नी भी होगी।''

कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वर्णा की कही हुई ये सारी बातें भी अक्षरश: सच निकलीं।

प्रेतलीला

श्यामल आकाश का बदन जलाती हुई बिजली चमकी। प्रकाश की नीलीरेखा ओर-छोर-हीन आसमान के एक कोने से दूसरे कोने तक कौंध गयी। बारिश की गति भी तीव्र हो गयी। गीली बरसाती हवा का एक तेज झोंका आया और ठण्डी हवा का सैलाब कमरे के भीतर फैल गया। कमरे में जलती लालटेन की पीली लौ एक बार सिहर कर थम गयी।

शराब की दोनों बोतलें खाली हो चुकी थीं। स्वर्णा ने सुषुप्ति-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर भर्राये स्वर में कहने लगी वह—''अशरीरी अथवा सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं की सहायता से भी मनचाही वस्तुओं और पदार्थों को प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं, उनके द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान की किसी भी घटना की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसे तमोबल कहते हैं। विज्ञानबल का ही एक अंग समझना होगा इसे। आन्तरिक, मानसिक शक्ति के साथ-साथ मंत्रशक्ति का भी प्रयोग होता है। इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए योगी भी होना आवश्यक है। मन, प्राण और मंत्र तीनों की शक्ति, इच्छा में केन्द्रित होनी चाहिये तभी अशरीरी आत्माओं से सम्पर्क स्थापित हो सकता है, वर्ना नहीं। तभी इच्छानुसार कार्य भी होता है और उनसे सहायता भी मिलती है हर दिशा में, मगर खतरा भी है साथ-साथ।''

''ये जो लोग पान-सुपाड़ी, लौंग-इलायची अथवा फल-फूल, मिठाई-भभूत आदि दर्शकों के सामने हवा में हाथ हिलाकर पैदा करते हैं—वह सब क्या है?''

''मामूली प्रेतलीला समझो। नेत्रबंध भी कह सकते हो उसे, मगर ऐसी सृष्टि में स्थायित्व नहीं होता। उसका उपयोग भी निरर्थक होता है। कोई लाभ नहीं। वासना और कामना लिये हुए जो लोग मरते हैं, वही प्रेत होते हैं। प्रेतात्मायें सूक्ष्म शरीरधारी नहीं, वासना शरीरधारी होती हैं। अपनी वासनाओं के अनुरूप स्वयं अपने शरीर की रचना कर लेती हैं वे।''

यह सब सुनकर प्रेतों के सम्बन्ध के साथ और कुछ जानने की उत्सुकता जागृत हो गयी मेरे मन में। एक साथ कई प्रश्न कर डाले मैंने जिनके उत्तर में स्वर्णा ने बतलाया कि शरीर एक यंत्र के सिवाय और कुछ नहीं है, महत्त्वपूर्ण है आत्मा और उसके बाद मूल्य है मन का, आत्मा और मन बस यही दो है महत्त्वपूर्ण।

''क्या प्राण का कोई प्रयोजन नहीं है?''—मैंने बीच में टोक कर प्रश्न किया, ''क्या जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है?''

''आत्मा, मन और शरीर—ये तीनों जिस सूत्र में बँधते हैं और बँधकर जिसे जीवनीशक्ति के रूप में प्रकट होते हैं—वही है प्राण। साधारण जीवन के लिए प्राण का मूल्य और महत्त्व है, मगर योगी और साधकों के लिए उसका न कोई महत्त्व है, न मूल्य। इसलिए कि वे बिना प्राण के भी जीवित रह सकते हैं और आत्मा तथा मन से शरीर का सम्बन्ध बनाये रख सकते हैं। शरीर में प्राण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण केन्द्र है हृदय! आत्मा और मन से शरीर का प्राण-सम्बन्ध इसी केन्द्र के द्वारा जुड़ता है। प्राण की आकर्षण-विकर्षण शक्ति से हृदय बराबर धड़कता रहता है, जिसके फलस्वरूप शरीर से मन का और मन से आत्मा का तारतम्य बराबर बना रहता है। साधारण लोगों की भाषा में इसी का नाम जीवन है, मगर योगीगण हृदय की धड़कन को बन्द कर सकते हैं। बिना प्राण के भी जीवित रह सकते हैं वे और बिना प्राण के शरीर से मन और आत्मा का सम्बन्ध भी बनाये रख सकते हैं।''

स्वामी ब्रह्मयोगी

''तुमने स्वामी ब्रह्मयोगी का नाम अवश्य सुना होगा। उन्होंने सन् १९६० में कलकत्ता, रंगून, ऑक्सफोर्ड आदि विश्वविद्यालयों में अपने हृदय की धड़कन को बन्द करने के कई प्रयोग किये थे। वह दस से पच्चीस मिनट तक अपने हृदय की धड़कन को बन्द कर लेते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक साथ दस डॉक्टरों ने उनकी जाँच की क्योंकि ब्रह्मयोगी ने कहा था कि जब मेरी हृदय गति बन्द हो जाये तो आप समझ लीजिये कि मैं मर गया या जीवित हूँ, इस पर दस्तखत कर दें, अत: दस डॉक्टरों ने उनके मृत्यु के प्रमाणपत्र पर दस्तखत किये कि यह आदमी मर गया... मरने के सभी लक्षण पूरे हो गये।

''लेकिन पच्चीस मिनट के बाद ब्रह्मयोगी वापस लौट आये। हृदय फिर धड़कने लगा। साँस फिर चलने लगी। नाड़ी फिर दौड़ने लगी। आखिर ब्रह्मयोगी

अपना मृत्यु-प्रमाण पत्र जब मोड़कर जेब में रखने लगे तो उन डॉक्टरों ने विनम्रता से कहा, ''कृपा करके वह प्रमाण-पत्र हमें वापस दे दें, क्योंकि इसमें हम फँस सकते हैं.... हमने लिख दिया है कि आप मर चुके हैं।''

''जानते हो ब्रह्मयोगी ने क्या कहा? वह बोले, ''इसका अर्थ यह हुआ कि तुम जिसे मृत्यु कहते हो, वह मृत्यु नहीं है। हृदय की धड़कन बन्द होने से मरने का कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है। हम सिर्फ इसलिए मर जाते हैं, क्योंकि हमें यह पता नहीं कि अब इस हृदय को फिर कैसे धड़काया जा सकता है।''

''निश्चय ही जिसे हम या डॉक्टर मृत्यु कहते हैं, वास्तव में वह मृत्यु नहीं है। जहाँ तक हम सम्बन्धित हैं, वह मृत्यु है, क्योंकि हम अपने को बाहर से जानते-समझते हैं। फेफड़े से जानते हैं, हृदय से नहीं। शरीर से जानते हैं आत्मा से नहीं। परिधि से जानते हैं, केन्द्र से नहीं। परिधि मर जाती है, और उसी को हम मृत्यु कहते हैं। हमें केन्द्र के अस्तित्व का कोई पता नहीं है इसलिए हम मृत्यु मानते हैं। वह केवल मान्यता है। अगर हमें अपने केन्द्र का पता चल जाये तो फिर कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु से बड़ा इस जगत् में कोई असत्य नहीं है, लेकिन मृत्यु से बड़ा कोई सत्य भी नहीं जान पड़ता इस जगत् में। मृत्यु बड़ा ही गहन सत्य है, इसे समझना मुश्किल है। हम बाहर जीते हैं और बाहर मृत्यु ही सब कुछ है। अगर हम भीतर जा सकें तो जीवन ही सब कुछ है। बाहर है मृत्यु और भीतर है जीवन।''

स्वर्णा पलभर रुक कर बोली, ''अब मैं मुख्य विषय पर आती हूँ। मन बीच में है। उसके एक ओर शरीर है और दूसरी तरफ है आत्मा, मगर एक बात का ख्याल रखना होगा आत्मा स्वतन्त्र है, वह कभी भी परतन्त्र नहीं हो सकती। मन परतन्त्र है मगर वह प्रयास से स्वतन्त्र हो सकता है। शरीर परतन्त्र है, वह कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। मन और शरीर दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं—इस तथ्य को भी ध्यान में रखना होगा। बिना मन के शरीर कुछ नहीं कर सकता। वह मृतक है बिना मन के। मन भी बिना शरीर के कुछ कर सकने में असमर्थ है। जब आत्मा मन के साथ जुड़ती है तो शरीर अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि मन की वासनाओं की तृप्ति बिना शरीर के नहीं हो सकती। प्रेत-बाधा के मूल में यही कारण है। यदि प्रेत है तो मनुष्य के शरीर में क्यों प्रवेश करते हैं यह समझने की बात है।

''प्रेतात्मा वह है जिसका शरीर तो छूट गया है लेकिन मन उससे अलग नहीं हुआ है। मन शरीर की माँग करता है, क्योंकि मन की सारी वासनायें शरीर के द्वारा ही पूर्ण हो सकती हैं—तृप्त हो सकती हैं।

''मरते समय सारी इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं और मन लीन हो जाता है आत्मा में, लेकिन जैसे ही शरीर में आत्मा प्रवेश करती है, वैसे ही शरीर में सारी इन्द्रियाँ प्रकट होकर अपना-अपना काम करने लग जाती हैं और मन उन इन्द्रियों के

द्वारा हुये कार्यों को अनुभव भी करने लग जाता है। मन से शरीर का सम्बन्ध होते ही इन्द्रियाँ अपने आप प्रकट होती हैं। प्रेतात्माओं के मन तो वासना से लबालब भरे हुए हैं, लेकिन शरीर की तरह इन्द्रियाँ नहीं हैं। यह अभाव ही उनके दु:खों के कारण हैं और यही कारण है प्रेतों के जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करने का। प्रेत का जो मन है, वह उस व्यक्ति के शरीर और इन्द्रियों की सहायता से अपनी वासनाओं को पूरा करने लग जाता है।''

स्वर्णा पुन: पलभर रुकी, इसके बाद बताने लगी, ''प्रेत का मतलब केवल इतना ही है कि जिसके पास शरीर नहीं है मन है, मगर वह भी वासना से भरा हुआ है। सामान्यत: मरते ही व्यक्ति को दूसरा शरीर मिल जाता है। इधर मरे और उधर जन्में। कोई अन्तर नहीं पड़ता। जीवन के प्रति जिसके मन में प्रबल लालसा है, उसका जन्म तत्काल सम्भव है। जन्म उस व्यक्ति का जल्दी नहीं होता और प्रेत-योनि भी उसी व्यक्ति को मिलती है, जिसका मन मरते समय आत्मा में लीन नहीं हुआ होता। ऐसी अवस्था में यदि मन बुरी व तामसिक वासनाओं से भरा है तो उस व्यक्ति को प्रेतयोनि मिलेगी। यदि मन अच्छी व राजसी वासनाओं से भरा है तो उस व्यक्ति को सूक्ष्मशरीर मिलेगा। प्रेतात्मा एवं सूक्ष्मात्मा में सिर्फ यही अन्तर है। इसी प्रकार जिस मृत व्यक्ति का मन सात्विक गुणों, भावों तथा वासनाओं से भरा है और मरते समय वह आत्मा से अलग रह गया है तो उस मृत व्यक्ति की आत्मा को देवात्मा कहते हैं।

तीन प्रकार की आत्मा

''इस प्रकार पारलौकिक जगत् में तीन प्रकार की आत्मायें हैं। पहली है प्रेतात्मा, दूसरी है सूक्ष्मात्मा और तीसरी है देवात्मा। इस दृष्टि से पारलौकिक जगत् भी तीन मुख्य भागों में विभक्त है। पहले से देवात्मायें निवास करती हैं। दूसरे में सूक्ष्मात्मायें और तीसरे में प्रेतात्मायें करती हैं निवास। तमोबल का सम्पूर्ण विषय पारलौकिक जगत् से ही सम्बन्धित है।''

मैंने पूछा—''मरते समय मन आत्मा में कैसे लीन हो सकता है।''

''एकाग्रता से।'' स्वर्णा ने बताया, ''मरते समय मन कहीं भटक नहीं रहा है अथवा किसी प्रकार वासना में डूबा हुआ नहीं है तो ऐसी स्थिति में वह अपने आप आत्मा में लीन हो जाता है। मरते समय शरीर से आत्मा अलग होते समय मन स्थिर और एकाग्र रहे, इसी कारण मरते समय लोगों को धार्मिक पुस्तकें पढ़कर सुनाई जाती हैं .....भगवान् का नाम सुनाया जाता है। इन सबसे केवल इतना ही लाभ है कि मन कुछ क्षणों के लिए स्थिर व एकाग्र हो जाता है। यदि उन्हीं कुछ क्षणों में आत्मा ने शरीर छोड़ दिया तो समझ लो कि मन उसमें लीन हो चुका है।

"तीनों प्रकार की आत्मायें अपनी-अपनी सीमा में भटकती रहती हैं शरीर पाने के लिए, लेकिन उन्हें तभी शरीर मिलता है, जब उनके मन की प्रमुख वासनायें क्षीण हो जाती हैं और वह आत्मा में लीन हो जाता है। इसमें एक दिन भी लग सकता है और एक हजार वर्ष भी। वे तीनों प्रकार की आत्मायें अपनी-अपनी वासनाओं के अनुरूप मनुष्य की अच्छी-बुरी सहायता करने के लिए बराबर तैयार रहा करती हैं। अनजाने में सहायता किया भी करती हैं। पारलौकिक जगत् के रहस्यों से जो परिचित हैं और तमोबल पर जिनका अधिकार है, वे लोग इन तीनों प्रकार की आत्माओं से इच्छानुसार सम्पर्क स्थापित कर सकने में समर्थ होते हैं और सम्पर्क स्थापित करके उनसे इच्छानुसार सहयोग अथवा सहायता भी प्राप्त करते हैं।

"प्रेतात्माओं की स्थिति तो तामसिक वासनाओं के कारण पागलों जैसी होती है, इसीलिए उनसे किसी प्रकार का स्थायी सहयोग नहीं प्राप्त किया जा सकता है। वे केवल मंत्रबल के प्रभाव के वशीभूत होकर भभूत या लौंग, इलायची आदि ही ला सकती हैं। इनसे कहीं अधिक प्रबल और शक्तिशाली होती हैं सूक्ष्मात्मायें। इनसे जो सहयोग व सहायता प्राप्त होती है, उसमें थोड़ा स्थायित्व रहता है। इनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए मंत्रबल के साथ-साथ प्रबल इच्छाशक्ति का होना आवश्यक है। मंत्र और इच्छा इन दोनों की मिश्रित शक्तियों के वशीभूत होकर वे सूक्ष्मात्मायें एक विशेष सीमा तक मनुष्य की सहायता करती हैं। मनोनुकूल कार्य भी करती हैं।

"तीसरी हैं देवात्मायें। वे बहुत ही क्षमतावाली होती हैं और सूक्ष्मजगत् की सबसे प्रबल एवं अत्यधिक शक्तिसम्पन्न आत्मा समझी जाती हैं। उनसे सम्पर्क स्थापित करने और मनोनुकूल सहयोग प्राप्त करने के लिए विशेष यौगिक क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है।

"विशेष रूप से वे देवात्मायें मनुष्य के विचारों और भावों को प्रभावित करती हैं। आध्यात्मिक एवं बौद्धिक चिन्तन-मनन की दिशा में उनका सहयोग विशेष रूप से प्राप्त होता है। ज्ञान-विज्ञान के तिमिराच्छन्न रहस्यों को समझने तथा उन्हें प्रकाश में लाने की दिशा में भी वे सहायता करती हैं।" स्वर्णा ने कहा—"यह बताने की आवश्यकता नहीं है, अबतक भारतीय साहित्य, संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में जो भी प्रगति हुई है या हो रही है वह सब उन्हीं की अगोचर सहायता से हुई और हो रही है। मनुष्य-मस्तिष्क में फैले हुए सूक्ष्मज्ञान तन्तुओं से उन आत्माओं का सम्बन्ध रहता है। मनुष्य जिस दिशा में सोचता-विचारता है, तत्काल उसी दिशा में वे उसकी सहायता करने लग जाती हैं। वास्तव में सूक्ष्म अथवा पारलौकिक जगत् की इन तीनों प्रकार की आत्माओं का व्यापार अत्यधिक रहस्यमय है। उनकी मति-गति और क्रिया-कलाप भी कम रहस्यमय और विलक्षण नहीं हैं, फिर भी उन्हें मानवीय श्रेणी में ही लिया जाता है, क्योंकि वे कभी मनुष्य थीं और भविष्य में भी उनके मनुष्य होने की सम्भावना है।"

अमानवीय छाया

धीरे-धीरे रात का पहला प्रहर गुजर गया। विषय कुछ ऐसा था कि समय का पता ही नहीं चला किसी को। बारिश का हाहाकार अभी भी था। बीच-बीच में बिजली कौंध जाती थी और उसी के साथ बादल भी बुरी तरह गरज उठते थे।

सम्मोहन-भरी आँखों से स्वर्णा ने फिर एक बार मेरी ओर देखा और भर्राये स्वर में बोली, "फिर प्यास लग गयी रे।"

मैं क्या बोलता! मेरा मन तो चमत्कारों की दुनिया में उलझा हुआ था उस समय। अचानक कमरे का वातावरण कुछ अजीब-सा हो उठा। लालटेन की पीली रोशनी का दायरा एक बार कसमसाया फिर फैल गया, कमरे के दरवाजे अपने आप फिर खुल गये और उसी के साथ एक काली-सी छाया प्रकट हो गई वहाँ। उसे देखकर एकबारगी सहम गया मैं। वह छाया बड़ी ही वीभत्स और भयानक थी। पहले तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि कैसी थी वह छाया, लेकिन बाद में जब उसका आकार-प्रकार स्पष्ट हुआ तो मैंने देखा कि वह एक ऐसी आकृति की छाया थी, जो मनुष्य से मिलती-जुलती होते हुए भी मनुष्य की नहीं थी। काफी लम्बी-चौड़ी काठी का था वह विचित्र व्यक्ति। कोहड़े की तरह बेडौल उसका सिर, मस्तक हद से ज्यादा चौड़ा। कान काफी लम्बे। आँखें बड़ी-बड़ी तथा कानों तक खिंची हुई और उनमें पीले रंग की अजीब-सी चमक थी। नाक भी हद से ज्यादा लम्बी और नुकीली। नीचे का जबड़ा काफी बड़ा और भद्दे ढंग से झूल रहा था। वह उस समय जोर-जोर से साँस ले रहा था, जिसकी आवाज कमरे के निस्तब्ध वातावरण में स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

ऐसा रूप कभी देखने को मिलेगा, इसकी कल्पना भी मैंने नहीं की थी। स्तम्भित हो गया मन-प्राण। भय और विस्मय से रोमांचित हो उठा सारा शरीर। उस निविड़ गीली रात में उस अमानवीय छाया की उपस्थिति अत्यन्त डरावनी लगी मुझे। प्राण सूखने लगा मेरा। न जाने कब और कैसे मेरी दृष्टि अपने आप स्वर्णा की ओर घूम गयी। देखा—उसकी आँखें पहले तो भावशून्य थीं, लेकिन बाद में एकाएक जल उठीं जैसे। उस समय एक अतीन्द्रिय ज्योति थी उन आँखों में। दूसरे ही क्षण स्वर्णा के मुख पर एक पैशाचिक मुस्कान खेल गयी। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। डरा-सहमा और भयभीत-सा दुबका रहा मैं कमरे में एक ओर।

थोड़ी देर बाद सब कुछ सामान्य हो गया। कमरे का वातावरण जैसा पहले था, वैसे ही हो गया। मैं जैसे सोते से जागा तो देखा कि स्वर्णा के सामने चमचमाती थाली में पूड़ी-सब्जी-खीर और तरह-तरह की मिठाइयाँ रखी हुई हैं। एक चमचमाते पात्र में पका-पकाया मांस भी रखा हुआ था। इतना ही नहीं, बगल में शराब से भरी एक बोतल भी थी। निश्चय ही कीमती शराब थी वह।

हे भगवान्! कहाँ से आया यह सब? इस गीली बरसाती रात में खाने-पीने की ये तमाम चीजें कौन और कब रख गया यहाँ? यह सब मैं सोच ही रहा था कि उसी क्षण खिल-खिलाकर हँस पड़ी स्वर्णा। शायद उसने मेरे मन के भाव को समझ लिया। कहने लगी, "क्या करूँ, भूख और प्यास दोनों लगी थी। जानती थी कि तुम तो कुछ खिलाओ-पिलाओगे नहीं, इसलिए सोचा कि अपने साथी से ही कुछ क्यों न मँगवा लूँ खाना-पीना।"

स्वर्णा की बात मेरी समझ में नहीं आयी। बेवकूफों की तरह मुँह बाये उसकी ओर देखने लगा मैं।

जब वह बोतल खाली कर चुकी और खाना भी खा चुकी तो मैंने पूछा— "वह छाया कैसी थी? किसकी छाया थी वह? खाने की थाली और शराब की बोतलें कैसे आयीं? कौन दे गया वह सब?"

मेरी बात सुनकर पहले तो कुछ क्षण चुप रही वह, फिर धीमें स्वर में बोली, "वह पिशाच था।"

"पिशाच?" एकबारगी मेरे मुँह से निकल गया और उसी के साथ सारा शरीर सिहर उठा भय से।

"हाँ, मुझे पिशाचसिद्ध है न! उसी ने यह सब लाकर दिया है। उसके लिए बड़ा ही मामूली काम है यह सब, मगर किसी से कहना मत ये बातें, समझे।" सहजभाव से कहा स्वर्णा ने।

यह सुनकर छाती के भीतर कुछ खाली-सा प्रतीत हुआ। भूत-प्रेत-पिशाच आदि का नाम तो सुना था। पर उनका इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन भी होगा, इसे कभी सपने में भी नहीं सोचा था मैंने। भय, संशय और आतंक के मिले-जुले भाव से मेरा मन-प्राण अवसन्न हो रहा था जैसे उस समय।

स्वर्णा ने बतलाया, "जहाँ उन तीनों प्रकार की आत्माओं के लोक की सीमा खत्म होती है, उसके बाद अन्तरिक्ष में काफी विस्तृत शून्यक्षेत्र है। वह कितना लम्बा-चौड़ा है यह बतलाया नहीं जा सकता। जानकार लोगों का कहना है कि उस क्षेत्र में सूर्य की किरणें और रश्मियाँ भी नहीं प्रवेश कर पातीं, फिर भी हल्का-सा प्रकाश सदैव विद्यमान रहता है वहाँ।"

थोड़ा ठहरकर आगे कहने लगी वह, "अन्तरिक्ष के उसी विस्तृत शून्यक्षेत्र में अनेक प्रकार की ऐसी दुर्धर्ष आत्माएँ निवास करती हैं, जो न कभी मनुष्य थीं और न कभी भविष्य में मनुष्य शरीर धारण कर सकती हैं। वे संसार-चक्र से मुक्त और स्वतन्त्र हैं अपने आपमें। प्रकृति पर उनका पूरा अधिकार होता है। वे चाहें तो प्रकृति में विकृति पैदा कर संसार में भयानक उत्पात कर सकती हैं। भयंकर और प्रलयंकारी स्थिति पैदा कर सकती हैं.... जो चाहे वह करने में समर्थ हैं वे।

सामूहिक रूप से मनुष्यों पर प्रभाव डाल कर वे युद्ध की भी भयानक विभीषिका उत्पन्न कर सकती हैं। उनके अधिकार में बहुत कुछ है। उनकी तमोगुणी शक्ति की कोई सीमा नहीं। उन्हीं आत्माओं को हाकिनी-डाकिनी और पिशाच-बैताल आदि कहते हैं। उनका कोई आकार-प्रकार अथवा रूप-रंग नहीं है, फिर भी वे इच्छानुसार आवश्यकता पड़ने पर किसी भी रूप में प्रकट हो सकती हैं। कोई भी रूप धारण कर सकती हैं। कभी-कदा मनोरंजन अथवा किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे मनुष्य का रूप धारण कर संसार में विचरण भी करती हैं। उन्हें ऐसी अवस्था में पहचानना कठिन है।''

डाकिनी

कुछ क्षण रुककर स्वर्णा ने बतलाया, ''बनारस में ऐसी ही एक डाकिनी काफी दिनों से औरत के रूप में है।''

यह सुनकर अवाक् रह गया मैं। आश्चर्य से मैंने पूछा, ''अच्छा! क्या उससे मिल सकता हूँ मैं?''

''क्यों नहीं। घाट के किनारे की गलियों में वह इधर-उधर घूमती रहती है। भीख माँगती रहती है, मगर उसे समझना और पहचानना कठिन है। कोई यह नहीं कह सकता कि उस भिखारिन के भीतर किसी डाकिनी की आत्मा है। उसे बच्चा भी पैदा होता है, लेकिन मार कर खा जाती है उसको।''

दूसरे ही दिन से मैंने उन घाटों के मुहल्ले की गलियों का चक्कर लगाना शुरू कर दिया। ज्यादा खोजना नहीं पड़ा। एक टूटे-फूटे जर्जर मकान के चबूतरे पर बैठी मिल गयी मुझे वह। गोरा रंग, मगर मैल की पर्तें भी जमी थीं शरीर पर कहीं-कहीं। दमकता, मुस्कराता चेहरा। धूल से भरे बाल, बदन पर लाल किनारी की मटमैली फटी साड़ी, आँखें बड़ी-बड़ी पर गहरी थीं और उस गहराई में अथाह रहस्य भरा था। उसने उसी रहस्यभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर हँस पड़ी। सामने एक कटोरा पड़ा था, जिसमें कई दिनों की सूखी रोटियाँ पड़ी थीं। पास ही टीन के एक डिब्बे में पानी भी भरा रखा था। अचानक बोल पड़ी वह—''खाना खिलायेगा?''

''क्या खायेगी?'' मैंने पूछा

''तेरा सिर....'' फिर खी-खी कर हँसने लगी वह।

बड़ा ही अजीब लगा मुझे उसका व्यवहार। कुछ देर खड़ा-खड़ा उसकी पागलों जैसी हरकतें देखता रहा, फिर लौट आया मैं।

तीन-चार दिनों के बाद अचानक वह फिर मिल गयी मानसरोवर घाट की सीढ़ियों पर बैठी हुई। कुछ आवारा किस्म के लड़के उसे परेशान कर रहे थे। मुझे देखकर वह मुस्करायी।

उसी समय गंगा की धारा में एक लाश बहती देखकर एकाएक चीख पड़ी वह, फिर दोनों हाथ ऊपर उठाकर उसे जोर-जोर से बुलाने लगी। उसके इस व्यवहार से लड़के सहम कर भागे। घाट सुनसान हो गया। चमत्कार ही कहा जायेगा उसे। मैंने देखा, लाश धारा से निकल कर अपने आप घाट की ओर बढ़ने लगी थी। वह उसे बराबर बुलाती जा रही थी। धीरे-धीरे घाट की सीढ़ी से आ लगी वह लाश। पगली लपक कर आयी और लाश का कफन नोचने लगी। दूसरे ही क्षण लाश निर्वसन हो गयी पूरी तरह। गौर से देखा—भले घर के किसी युवक की लगी वह लाश। मरने के बाद भी उसके सौन्दर्य और आकर्षण में कमी नहीं आयी थी। लगता था जैसे गहरी नींद में सो रहा है वह। शरीर का गोरा रंग स्याह पड़ गया था। शायद सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हुई थी।

लगभग एक सप्ताह बाद मुझे वह पगली फिर मिली। हाँ, पगली ही कहूँगा मैं उसको, क्योंकि एक पागल में और उसमें कोई अन्तर नहीं दिखलायी पड़ा था मुझको।

उसके साथ एक युवक भी था उस समय। काफी स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक था वह। दोनों कालीबाड़ी के चबूतरे पर बैठे कुछ खा-पी रहे थे। मुझे देखकर पगली पहले तो चौंकी, फिर मुस्कराने लगी। उनके नजदीक पहुँचा तो एकाएक मैं भी चौक पड़ा। वह युवक कुछ-कुछ जाना-पहचाना-सा लगा। तभी मस्तिष्क में कुछ कौंध गया और उसी के साथ सारा शरीर सनसना उठा मेरा। प्राण आतंक से हिम हो गये जैसे। पगली के साथ वही युवक बैठा था, जिसे मैंने मानसरोवर घाट पर लाश के रूप में देखा था। पहचानने में किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ मुझे। मगर वह जीवित कैसे हो उठा? एक अभूतपूर्व, साथ ही एकदम अविश्वसनीय घटना थी वह। काफी देर तक मैं कभी पगली की ओर तो कभी उस युवक की ओर देखता रहा।

बाद में पता चला कि उस युवक का नाम था रामअवतार पाण्डेय। जिला मिर्जापुर का रहने वाला था वह। एक महीने पहले उसका विवाह हुआ था। सर्प के काटने से ही उसकी मृत्यु हुई थी। प्रचलित प्रथा के अनुसार उसकी लाश को गंगा में प्रवाहित कर दिया गया था।

उसके बाद फिर वह युवक मुझे कहीं नहीं दिखलायी पड़ा। हाँ, वह रहस्यमयी पगली अवश्य मुझे कई बार मिली रास्ते में, और जब भी वह मिली, उसे देखकर आतंकित हो उठता था मैं।

जब मैंने ये सारी बातें स्वर्णा को बतलायीं तो वह कहने लगी, ''उन लोगों के लिए यह सब कोई कठिन काम नहीं है।''

''क्या सचमुच पगली ने उस युवक को जीवित कर दिया था?'' मैंने पूछा?

"नहीं, मृत व्यक्ति को जीवित करने की शक्ति अथवा सामर्थ्य किसी में नहीं है। पगली ने अपने किसी खास काम के लिए उस युवक के शव में किसी आत्मा को प्रवेश करा दिया होगा।"

"क्या कहा?" चौंककर बोला मैं।

"इसमें कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। शव यदि सड़ा-गला नहीं है, उसकी नस-नाड़ियाँ अपनी-अपनी जगह ठीक हैं और सर्प काटने अथवा विष खाने से मृत्यु हुई है तो ऐसे व्यक्ति के शव में विशेष क्रिया द्वारा आसपास भटकती हुई किसी भी अनुकूल आत्मा को प्रविष्ट करा देना सम्भव है, इसलिए आश्चर्य की कोई बात नहीं।"

"इस प्रयोग के पीछे पगली का कौन-सा अभीष्ट है?"

स्वर्णा ने कहा, "तुमको बतला चुकी हूँ कि वह अपने बच्चे को मार कर खा जाती है।"

"हाँ, यह तो बतलाया था।"

"बस, समझ लो कि उस युवक द्वारा शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर बच्चे पैदा करना ही उसका एकमात्र अभीष्ट है।"

यह सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं। फिर न कुछ बोला गया और न कुछ पूछा ही गया मुझसे।

निश्चय ही वह मेरे जीवन का संक्रान्तिकाल था। पूरे चार साल तक मैं स्वर्णा के सान्निध्य में रहा। इस बीच उस महान् साधिका के सम्पर्क में मैंने जिन अविश्वसनीय और अलौकिक चमत्कारों को देखा तथा पारलौकिक अथवा सूक्ष्मजगत् की जिन मानवेतर शक्तिसम्पन्न आत्माओं का मुझे अनुभव हुआ था, सच पूछिये उसने मेरे हृदय में भूत, प्रेत, पिशाच एवं तंत्र-मंत्र तथा उनकी विभिन्न तामसिक साधनाओं एवं विभिन्न क्रियाओं के प्रति गहरी रुचि, जिज्ञासा और असीम कौतूहल की सृष्टि कर दी थी। इस दिशा में और कुछ जानने-समझने तथा खोज करने के लिए व्याकुल हो उठी थी मेरी आत्मा।

मानवेतर शक्ति से सम्पर्क

इसके अलावा एक और लालसा जागी मेरे मन में। वह यह कि मैं उन दुर्धर्ष और असीम मानवेतर शक्तिसम्पन्न आत्माओं से स्वयं सम्पर्क करके आध्यात्मिक तथा भौतिक क्षेत्रों में उनका सहयोग प्राप्त करूँ।

सच बात तो यह थी कि भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र के प्रति मेरे मन में असीम जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि हो गयी थी उस समय। घण्टों गंगा-किनारे गालों पर हाथ धरकर बैठा मैं बस यही सोचा करता था कि काश, किसी तरह मुझे भी मानवेतर शक्ति प्राप्त हो जाती तो...

आखिर मैंने अपने मन की यह बात एक दिन स्वर्णा को बतलायी। पहले तो वह काफी देर तक गंभीर बनी कुछ सोचती रही, फिर एक झटके से उसने सिर घुमाकर मेरी ओर गहरी दृष्टि से देखा। उस समय उसकी दृष्टि में न जाने क्या था कि एकबारगी सहम-सा गया मैं।

''इन सबके चक्कर में मत पड़ो तुम, समझे?'' स्वर्णा का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा मुझे, ''मानवेतर शक्ति प्राप्त करना सबके वश का नहीं होता। जानते हो, इसके लिए बहुत कुछ छोड़ना पड़ता है, गँवाना पड़ता है.... मनुष्य का जीवन सरल और सहज नहीं रह जाता फिर। इसके बाद वह परिवार और समाज में व्यवस्थित नहीं कर पाता अपने आपको। उसका जीवन हर समय एक ऐसी आग की लपटों में झुलसता रहता है, जो कभी बुझाने वाली नहीं होती। उसके भीतर भी हर समय एक ऐसी चिता धू-धू कर जलती रहती है जिसके आगोश में उसकी सारी कामनायें दफन हो जाती हैं।

''फिर वह चाहकर भी कुछ कर नहीं पाता स्वतन्त्र रूप से। वह अपने अस्तित्व को हर समय एक ऐसी स्थिति में अनुभव करता है, जिसके एक ओर तो असीम अलौकिक शक्तियाँ रहती हैं और दूसरी ओर होती है उसकी भस्मीभूत हुई अनगिनत कामनाओं और अभिलाषाओं की राखों का ढेर।

''मुझको ही लो। कभी तुमने मुझे जानने-समझने की कोशिश की? कभी तुमने मेरे जीवन की गहराई में उतरने का प्रयास किया? कभी तुमने मेरे अतीत में झाँकने का प्रयत्न किया? नहीं.... कभी नहीं, उस रात को भी नहीं।''

सच कह रही थी वह। मैंने कभी ऐसी कोशिश नहीं की थी। कभी आवश्यकता ही नहीं समझी मैंने यह सब जानने-समझने की। लेकिन एक बात अवश्य थी—वह यह कि उसकी अनुपस्थिति जब चरम सीमा पर पहुँच जाती तो मेरी आत्मा व्याकुल हो उठती। मन विचलित होने लगता। उसमें कौन-सा आकर्षण था जो मेरे मन-प्राण को झकझोरने लगता? यह सब भी जानने-समझने का प्रयास कभी नहीं किया मैंने।

उस दिन भी ऐसी ही स्थिति थी। पिछले तीन-चार महीने से स्वर्णा से भेंट नहीं हुई थी।

मेरे लिए वह खिन्नता-भरी उदास साँझ थी। सिर झुकाये घाट की सीढ़ियों पर चुपचाप बैठा हुआ स्वर्णा के विषय में ही सोच रहा था मैं उस समय। कबतक उस अवस्था में बैठा रहा, बतला नहीं सकता। मगर जब उठ कर चलने को तैयार हुआ तो उस समय रात काफी गहरा गयी थी।

जब सीढ़ियाँ चढ़कर मैं केदारेश्वर मन्दिर की गली में आया तो अचानक मेरी दृष्टि सामने जाती हुई एक सद्य:स्नाता युवती पर स्थिर हो गयी। एकबारगी खुशी से झूम उठा मैं।

वह युवती और कोई नहीं, स्वर्णा ही थी। मैंने उसे पुकारा और जल्दी-जल्दी लपक कर उसके करीब पहुँचना चाहा, लेकिन मेरा-उसका फासला बराबर उतना ही बना रहा।

चौकीघाट के ऊपर हनुमानजी का एक मन्दिर है। उसकी बगल में घूमकर एक सँकरी गली गयी है। स्वर्णा उसी गली में मुड़कर आगे बढ़ने लगी। काफी तेज चल रही थी वह। मैंने फिर पुकारा, लेकिन इस बार भी उसने नहीं सुना। आखिर बात क्या है? समझ में नहीं आ रहा था। उसकी अपेक्षा तेज गति से चलने पर भी मेरे और उसके बीच का फसला बराबर बना रहा।

कई गलियों को पार करने के बाद आखिर वह पातालेश्वर मुहल्ले के एक मकान के भीतर चली गयी। मकान काफी पुराना और जीर्णशीर्ण था। ऐसा लगता था जैसे काफी लम्बे अर्से से वह वीरान पड़ा हुआ है। दरवाजा भी टूटा-फूटा था। स्वर्णा के पीछे-पीछे मैं भी घुस गया उसके भीतर मगर, जैसे ही मैं भीतर घुसा, वैसे ही सड़ांध का एक तेज भभका मेरे नथुनों में समा गया, ऐसा लगा मानो कहीं किसी कोने में कोई सड़ा-गला मुरदा पड़ा हो। जी मिचलाने लगा। उबकाई-सी आने लगी। किसी तरह अपने को संभाल कर आगे बढ़ा तो पहले एक लम्बा गलियारा मिला। वह भी काफी गंदा और अंधेरे में डूबा हुआ था। टटोल-टटोल कर उसे पार करने के बाद मैं एक छोटे-से आँगन में पहुँचा। वहाँ हल्का-सा प्रकाश हो रहा था और उसी हल्के प्रकाश में मुझे आँगन के चारो ओर छोटे-छोटे कमरे दिखलायी दिये। वे सब भी गंदे और दुर्गन्ध से भरे थे।

वह भयानक दृश्य

हे भगवान्, कहाँ आकर फँस गया मैं। जिसके पीछे-पीछे चल कर वहाँ तक पहुँचा था, उसका कहीं नामोनिशान भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। आखिर गई कहाँ वह? धरती में तो समा नहीं गया उसका अस्तित्व।

मैं आँगन में खड़ा-खड़ा यह सोच ही रहा था कि अचानक मेरी दृष्टि बायीं ओर वाले कमरे की ओर घूम गयी। न जाने क्यों और किस प्रेरणा के वशीभूत होकर कमरे के अन्दर चला गया मैं। वह कमरा जरा साफ लगा मुझे। दुर्गन्ध भी नहीं थी उसमें। मैंने देखा, कमरे के एक ओर नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं। आश्चर्य हुआ मुझे। सोचा निश्चय ही उस कमरे के नीचे तलघर होगा। हो सकता है स्वर्णा उसी में हो। मन में यह विचार आते ही मैं हिम्मत करके धीरे-धीरे उतरने लगा। सीढ़ियाँ आड़ी-तिरछी और धूल से भरी हुई थीं। कोई-कोई बिल्कुल टूटी भी थी।

मेरे नीचे पहुँचते ही दहशत से फड़फड़ाते चमगादड़ चीं-चीं करते हुए सिर और कानों को छूते हुए निकल गये। सचमुच वह काफी लम्बा-चौड़ा कमरा था।

दीवारों के ऊपर कई रोशनदान थे, जिसमें से छनकर न जाने किधर से रोशनी आ रही थी। कमरे में, एक छोटा-सा दरवाजा भी था। उत्सुकतावश जब मैं उस रहस्यमय दरवाजे के करीब पहुँचा तो वहाँ भी नीचे जाने के लिए आड़ी-तिरछी सीढ़ियाँ दिखाई दीं मुझको। आश्चर्य तो हुआ ही इसके अलावा कौतूहल भी हुआ और न जाने कैसे मेरे पैर बरबस उन सीढ़ियों की ओर बढ़ गये।

अन्ततः सीढ़ियाँ उतर कर मैं नीचे पहुँचा तो एकबारगी स्तब्ध रह गया। उस कमरे में पहुँचते ही मेरी नजर जिस पर पड़ी वह थी भयानक शक्ल की एक अधेड़ औरत, जिसे देखते ही एकदम भयभीत हो उठा मैं। प्राण सूख गये मेरे। उस औरत के शरीर का रंग बिल्कुल काला था। सिर घुटा हुआ था। आँखें गोल-गोल और टमाटर की तरह बाहर निकली हुई थीं। दोनों पुतलियाँ अपनी जगह पर विचित्र ढंग से घूम रही थीं। उसका पेट बाहर की ओर निकला हुआ था। उसके हाथ में जलती हुई लालटेन थी, जिसे पकड़ कर निश्चल भाव से वह इस प्रकार खड़ी थी, जैसे पत्थर की बुत हो।

अगर आपके सामने ऐसी भयानक रूप-रंग और शक्ल-सूरत की कोई औरत आकर खड़ी हो जाये तो उसे देखकर आपकी जो हालत होगी, समझ लीजिये वैसी दशा मेरे मन की हो रही थी उस समय।

उस कमरे में गहरी नीरवता छायी हुई थी, साथ ही एक विचित्र-सी उदासी और अबूझ खिन्नता-सी व्याप्त थी वहाँ। लालटेन की पीली रोशनी में उस औरत की जो छाया कमरे की दीवार पर पड़ रही थी, उससे कमरे का वातावरण और भी अधिक भयानक हो उठा था। खामोशी का गहरा एहसास हो रहा था।

हाँ, एक बात बतलाना तो भूल ही गया मैं। कमरा हद से ज्यादा लम्बा और चौड़ा था। दीवार तथा फर्श दोनों को लाल रंग के पत्थरों से बनाया गया था। रोशनदान तो नहीं थे, लेकिन अचानक न जाने कहाँ से ताजी हवा का एक झोंका आया और उसी के साथ पलक झपकते पूरे कमरे में राल, गुग्गुल, चन्दन और अगरबत्ती की मिली-जुली सुगन्ध फैल गयी। एकबारगी चौंक पड़ा मैं। कहाँ से आयी थी वह सुगन्ध ? इसी का पता लगाने के लिए कमरे में चक्कर काटने लगा मैं।

जब मैं कमरों में चारों ओर चक्कर लगा रहा था, उसी समय एक गुप्त दरवाजा अपने आप खुला और दूसरे ही क्षण एक भयानक शक्ल के व्यक्ति ने अपने कोंहड़े जैसा सिर निकाल कर बाहर झाँका। उसकी आँखें गुड़हल के फूल की तरह थीं, जैसे शराब पी रखी हो उसने। निर्दयता और क्रूरता का कुछ अजीब-सा भाव था उसकी आँखों में। कुछ क्षण झाँकने के बाद उसने अपना सिर भीतर कर लिया। इसके साथ ही वह गुप्त दरवाजा अपने आप बन्द हो गया।

इस बात की मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि उस रहस्यमय कमरे में कोई गुप्त दरवाजा अथवा गुप्त मार्ग भी होगा। थोड़ी देर बाद उस दरवाजे पर धक्का दिया

मैंने। वह सहज ही खुल गया तो पता चला कि उसे बन्द नहीं किया गया था। मेरी आँखें भय और आतंक से फटी-की फटी रह गयीं। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा दृश्य देखने को मिलेगा जीवन में। सारा शरीर पाषाणवत् हो गया मेरा। खून पानी हो गया और मस्तिष्क शून्यप्राण।

रहस्यमय वातावरण

उस रहस्यमय वातावरण में होने वाली पैशाचिक लीला को जो भी देखता, उसकी यही दशा होती। वह भी मेरी ही तरह भय से जड़ हो उठता उस समय।

उस रहस्यमय गुप्त दरवाजे के उस पार जो वातावरण था और उस वातावरण में जो कुछ देखा मैंने वह सब इस दुनिया से परे अनजाना लोक-सा प्रतीत हो रहा था।

मैं वाराणसी में पैदा हुआ हूँ। वाराणसी के ही वातावरण में साँस ली है और यहीं की संस्कृति तथा संस्कार में पला हूँ। वाराणसी के कोने-कोने से परिचित हूँ और इसके हर रूप को अच्छी तरह जानता हूँ, मगर वाराणसी का एक रूप ऐसा भी है जो उसकी धरती के नीचे है इससे अब तक अपरिचित ही था मैं। कभी किसी के मुँह से सुना था कि काशी में अभी भी उच्चकोटि के कई सन्त, महात्मा, योगी, तांत्रिक और साधक गुप्तरूप से निवास करते हैं, परन्तु उनके गुप्त निवास-स्थान काशी में कहाँ हैं, इसे बहुत ही कम लोग जानते हैं। जो लोग जानते भी हैं, वे न जाने क्यों किसी को बतलाते नहीं।

लेकिन मेरे सामने अब वह रहस्य अनावृत्त हो चुका था और यह जान गया था कि वे लोग इसी प्रकार काशी की धरती पर नीचे न जाने कब के बने तलघरों में रहते और साधना-उपासना करते होंगे।

वह कमरा भी काफी लम्बा-चौड़ा था और उसकी भी दीवारें तथा फर्श लाल पत्थरों से बने थे। दीवारों पर खूँटियों के सहारे कई नर-कंकाल झूल रहे थे। कुछ मानव-खोपड़ियाँ भी रखी हुई थीं, जिन पर लाल सिन्दूर लगा था। मैं समझ गया निश्चय ही वहाँ नरबलि होती रही होगी कभी।

कमरे के एक ओर एक काफी ऊँची और चौड़ी पत्थर की बेदी थी, जिस पर पद्मासन की मुद्रा में एक मानव-कंकाल बैठा हुआ था। उसकी खोपड़ी हद से ज्यादा बड़ी थी। उसके चारों ओर सुनहरे रंग का प्रभामण्डल था। इसके अलावा उस कंकाल के विभिन्न भागों से भी रूपहली-सुनहरी रश्मियाँ फूट रही थीं। कभी-कभी वह कंकाल अपने आप काँपता उसके बाद स्थिर हो जाता था। उस समय पलभर को ऐसा लगता था कि उसमें चेतना आ गयी हो।

वेदी के ठीक नीचे एक हवनकुण्ड बना था, जो शायद काफी गहरा था। उसमें से सुगन्धित धूम्र निकल-निकल कर चारों ओर फैल रहा था। शायद वही सुगन्ध मुझे मिली थी। हवनकुण्ड के चारों तरफ लोहे और ताँबे के कई त्रिशूल गड़े

थे। उन सब पर भी लाल सिन्दूर पुता हुआ था। थोड़े फासले पर बहुत बड़ा एक खड्ग रखा था। वह बड़ा विकराल और भयानक था तथा उस पर ताजा खून के धब्बे थे, जिसे देखकर लगा कि थोड़ी देर पहले ही किसी की बलि दी गयी होगी। कमरे के बायीं ओर भी पत्थर की तीन-चार वेदियाँ थीं, जिन पर ताजे शव लिटा कर रखे थे, जिनके सिरहाने चौमुखा दीप जल रहे थे। शवों के चेहरों को छोड़कर शेष अंग लाल कपड़े से ढँके थे।

रहस्यमय साधना स्थली

सब कुछ देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि शायद कापालिक सम्प्रदाय के किसी उच्चकोटि के साधक की साधना-स्थली है वह। कमरे में कई युवा भैरवियाँ और साधक भी थे। भैरवियों की उम्र अट्ठारह-बीस वर्ष के भीतर ही थी। वे सभी उन्मत्त थीं। उनकी खुली हुई घनी काली केशराशि पीठ पर बिखरी थी। मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका और गले में साँप की हड्डियों की मालायें थीं जो उनके कठोर उरोजों के ऊपर लोटती हुई नाभि तक झूल रही थीं।

मैंने देखा—भैरवियों की आँखें गूलर की तरह लाल थीं और चेहरा तमतमाया हुआ था। निश्चय ही उन सबने आकण्ठ मदिरा-पान किया होगा, लेकिन साधना की आभा और तेज भी उनके चेहरों पर दमक रहा था।

जिस व्यक्ति ने झाँक कर देखा था, वह शायद वहाँ का प्रमुख साधक था। वह कमरे में चारों तरफ घूमता हुआ कभी झुककर किसी शव के खुले हुए मुख की ओर देखता तो कभी संकेत से उन भैरवियों को कुछ समझाता। उसके एक हाथ में चमचमाता हुआ त्रिशूल और दूसरे हाथ में खप्पर था जिसमें शायद मदिरा भरी थी। उसे बीच-बीच में मुँह से लगा कर पी लिया करता था वह, जिससे उसकी भयंकर मुद्रा और डरावनी लग रही थी।

कापालिक और शाक्त सम्प्रदाय के सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुना था मैंने और उनके विषय में बहुत पढ़ा भी था, मगर जो कुछ सुना और पढ़ा था, उसे पहली बार साकार रूप में देख रहा था वहाँ। निश्चय ही बड़ा रहस्यमय और भयानक वातावरण था वह, लेकिन वहाँ अभी तक स्वर्णा नहीं दिखलायी पड़ी थी मुझे। मेरी आँखें बराबर उसी को खोज रही थीं।

अभी तक़ मैं दरवाजे के पास ही खड़ा सब कुछ देख रहा था लेकिन मेरी ओर किसी का ध्यान नहीं था। अब वापस लौटने का विचार हो रहा था मेरा। लेकिन जैसे ही मैंने मुड़ना चाहा, उसी समय मेरी आँखें आश्चर्य से फैल गयीं। आतंक से सिहर उठा मैं।

मेरी दृष्टि अचानक स्वर्णा पर पड़ गयी थी।

वह कब किधर से उस कमरे में आयी यह समझ न सका, क्योंकि मैं दरवाजे के पास ही खड़ा था। यदि वह दरवाजे से होकर कमरे में जाती तो मुझे पता चल जाता।

स्वर्णा के साथ एक नवयुवक भी था, जिसे देखते ही पहचान गया मैं। वह रामअवतार नाम का वही नवयुवक था, जिसकी लाश को जिन्दा किया था पगली ने।

मगर स्वर्णा के साथ वहाँ कैसे पहुँचा वह? इसका मतलब निश्चय ही स्वर्णा वह पगली—दोनों एक-दूसरे की अन्तरंग होंगी। तभी तो... वर्ना.... वह युवक कैसे आ पाता उस स्थान पर भला?

मुझे नहीं देखा स्वर्णा ने। उसकी दृष्टि मुझ पर नहीं पड़ी, मगर मेरी दृष्टि बराबर उसी पर टिकी हुई थी।

सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि स्वर्णा भी वहाँ पूर्णतः निर्वसन थी। आज तक मैंने उसके अनावृत्त रूप को ही देखा था, यौवन को नहीं। वह मुझे जलती हुई अग्निशिखा-सी लगी उस समय। बड़ी ही बाँकी छवि थी उसकी। मेरा समूचा मन और प्राण एकबारगी हाहाकार कर उठा उस अग्निशिखा को देखकर। कुछ क्षण के लिए अपने आपको भूल गया मैं। साँचे में ढली स्वर्णा की काया को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो रोम की किसी रूपसी युवती की पाषाण-प्रतिमा ही सजीव हो उठी हो उस समय।

नवयुवक रामअवतार अभी तक स्वर्णा के साथ ही था, अब उसे वहाँ का प्रधान लगभग खींचता हुआ खाली पड़ी एक वेदी के पास ले गया और उस पर लिटा दिया उसे। युवक ने कोई विरोध नहीं किया। उसकी स्थिति यन्त्रवत् थी उस समय। जैसे फिर से मुर्दा हो गया हो वह।

उसके बाद जो कुछ मैंने देखा—वह पूर्णतया अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक दृश्य था।

प्रत्येक शव के ऊपर एक-एक भैरवी पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थी। वह नवयुवक, जो अभी कुछ क्षण पहले तक जीवित था, अब फिर शव के रूप में परिवर्तित हो चुका था और उसके सीने पर बैठी थी पद्मासन-मुद्रा में स्वर्णा। निश्चय ही यह सारी प्रक्रिया शवसाधना की थी। मैंने कभी तंत्र-ग्रन्थों में पढ़ा था शवसाधना के सम्बन्ध में। कापालिक और शाक्त सम्प्रदाय में सर्वोच्च साधना मानी जाती है शवसाधना। इसमें शव 'आसन' का काम करता है, जिस पर बैठकर साधक कोई अत्यन्त विशिष्ट और गोपनीय साधना करता है, मगर वह साधना कौन-सी है यह पुस्तकों में नहीं बतलाया गया था।

मुझे इस बात की प्रसन्नता हो रही थी कि अब मैं उस रहस्यमय गुप्त साधना की सारी प्रक्रियाओं और उनकी उपलब्धियों को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखने जा रहा था।

भैरवियाँ

वातावरण में गहरी नीरवता व्याप्त थी। शव पर पद्मासन की मुद्रा में ध्यानस्थ बैठी भैरवियों के चेहरे अलौकिक तेज से दप-दप कर रहे थे। हवन कुण्ड के सामने बैठा भयानक शक्ल वाला प्रधान अग्नि में सुगन्धित सामग्री छोड़ता जा रहा था। कभी-कभी कोहड़े जैसा अपना सिर घुमाकर वह भैरवियों की ओर देख लेता था आँखें फाड़ कर। कभी उसका वीभत्स चेहरा निर्भाव हो जाता था तो कभी क्रूरता, निष्ठुरता और क्रोध के मिले-जुले भाव से भयानक हो उठता था। समय पल-पल बढ़ता रहा.... लेकिन क्या मेरी इच्छा पूरी हुई? क्या मैं शवसाधना की उपलब्धियों को देख-समझ सका? नहीं। शायद मेरे भाग्य में नहीं था वह। प्रधान की कुपित दृष्टि अचानक ही मुझ पर पड़ गयी थी। मुझे देखते ही क्रोध से लाल हो उठा था उसका चेहरा?

हे भगवान्! अब क्या होगा?

कुछ सोचूँ-समझूँ उसके पहले ही उस दानव ने लपक कर बगल में रखा खड्ग उठा लिया और मारने के लिए मेरी ओर दौड़ा। भय और आतंक से बुरा हाल हो रहा था मेरा। पलट कर भागना चाहा, मगर भाग न सका। दो-चार कदम बाद ही औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ा और उसी के साथ चेतनाशून्य हो गया मैं। फिर कब तक उस अवस्था में रहा... यह नहीं बता सकता, मगर जब चेतना लौटी तो मैंने अपने आपको सीलन-भरी अंधेरी कोठरी में पड़ा हुआ पाया। वह कोठरी बहुत छोटी थी। दीवारों से पानी की बूँदें टपक रही थीं और अंधेरा इतना गहरा था कि कुछ सुझाई ही नहीं पड़ रहा था। निश्चय ही वह तहखाना था, यह समझते देर नहीं लगी मुझे।

सिर में भयानक पीड़ा हो रही थी। बदन टूट रहा था। कमजोरी का भी अनुभव हो रहा था। इसके अलावा भूख भी लगी थी और गला भी सूख कर काँटा हो गया था। उस काल-कोठरी में यह भी पता नहीं चलता था कि कब दिन हुआ और कब हुई रात। अपनी शारीरिक और मानसिक स्थितियों से इतना ही समझ सका कि शायद तीन-चार दिन पहले लाया गया होगा मुझे उस स्थान पर।

लेकिन क्या अब मैं कभी नहीं निकल पाऊँगा इस काल-कोठरी के बाहर? क्या इसी तरह यहीं घुट-घुट कर मरूँगा मैं? क्या यही कोठरी मेरी समाधि बनेगी? हे भगवान्! अब क्या होगा? कैसे मिलेगा त्राण? काश! स्वर्णा की खोज में न आया होता तो यह दुर्दशा न होती मेरी। विवशता के मारे आँखों में आँसू आ गये।

भूख, प्यास और कमजोरी के कारण मेरी हालत हर क्षण खराब होती जा रही थी। छाती में अचानक बहुत तेज दर्द होने लगा। साँस लेने में भी तकलीफ होने लगी। मैं समझ गया कि अब मेरे जीवन का अन्त समीप ही है। धीरे-धीरे मेरा सारा शरीर शिथिल होता जा रहा था और आँखें भी बन्द होने लगी थीं। फिर मैं कब निढाल होकर ठंडी फर्श पर लुढ़क गया, पता नहीं।

और जब दुबारा होश में आया तो अपने आपको डॉक्टरों से घिरा पाया। उस समय मुझ पर झुकी हुई मेरे चेहरे की ओर अपलक निहार रही थी स्वर्णा, मैंने देखा—उसकी आँखों में आँसू थे और होंठ थरथरा रहे थे। मुझे होश में आया देख मेरे गले से लिपट गयी वह। उसके आँसुओं से मेरा पूरा चेहरा भींग गया और जब वह अलग हुई तो उसकी आँखों में झिलमिलाते आँसुओं के मोतियों के अलावा एक ऐसा भाव भी था, जो सिर्फ अपने अत्यन्त निकट के लोगों में ही होता है।

उन झिलमिलाते मोतियों, थरथराते होठों और अपनत्व के भाव को देखकर मेरे भी मन के अन्तराल में स्वर्णा के प्रति एक ऐसी कोमल और मधुर भावना अंकुरित हो गयी, जिसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हैं मेरे पास। उस समय ऐसा लगा कि हम दोनों का बड़ा पुराना और बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है।

तान्त्रिक-धर्म और संस्कृतियाँ

जब इन तमाम घटनाओं को मैंने तारानाथ भट्टाचार्य को बतलाया तो वह एकबारगी स्तब्ध रह गये और काफी देर तक मौन बैठे न जाने क्या सोचते रहे, फिर बोले—"तुम तो जानते ही हो कि काशी प्राचीन काल से विभिन्न धार्मिक एवं आध्यात्मिक सम्प्रदायों का केन्द्र रही है।"

"हाँ, यह मैं जानता हूँ। तभी तो इसे विशिष्ट आध्यात्मिक गौरव प्राप्त है।"

उन्होंने कहा, "भारत में जितने धर्म और जितनी संस्कृतियाँ हैं, उन्हीं में से एक तांत्रिक-धर्म और संस्कृति भी है। यदि प्रागैतिहासिक काल को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इस धरती पर तंत्र का प्रादुर्भाव और उसका प्रचार-प्रसार यक्षजाति द्वारा हुआ है और उसका केन्द्र भारत ही रहा है। आर्यों के आने के पहले यहाँ अनेक इतर जातियाँ थीं, उन्हीं में एक यक्षजाति भी थी। यक्षों की अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा थी, जिसमें शक्ति की प्रधानता थी। यदि उनकी परम्परा को हम शक्तिवाद कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

"यक्षों ने शक्ति को नारी के रूप में परिकल्पित किया। उनकी साधना में नारी प्रधान थी, क्योंकि नारी में ही उन्होंने अपनी शक्ति की झलक देखी। उनके लिए नारी विश्वशक्ति थी... और विश्व वासना की प्रतिमूर्ति थी। वासना के नाश के लिए वासना का ही सहारा लेना पड़ता है और उसके लिए नारी आवश्यक है। यक्षों की इसी विचारधारा ने कुण्डलिनी, योग, चक्र, पद्म, नाड़ी ज्ञान, बलि शक्ति के रूप में विभिन्न देवियों की उपासना, शक्तिपूजा, गुह्यपूजा, योनिपूजा, श्मशान के महत्त्व आदि को जन्म दिया।"

पलभर रुककर उन्होंने आगे बताया, "कालान्तर में इसी विचारधारा के आधार पर यक्षों का शक्तिवाद छः भागों में बँट गया। वे ही छहों भाग तंत्र के छः

प्रमुख सम्प्रदाय हैं–[redacted]दाय, [redacted]सम्प्रदाय,[redacted] [redacted] और [redacted]दाय। इन सभी सम्प्रदायों की कई-कई शाखाएँ भी हैं।

कापालिक सम्प्रदाय

"इनमें से कापालिक सम्प्रदाय अपनी भयानक तामसिक साधना के लिए प्रसिद्ध है। चक्रपूजा, योनिपूजा, गुह्यपूजा, नरबलि, पशुबलि, श्मशान-साधना, चिता-साधना आदि के द्वारा अनुष्ठित होने वाली कापालिक साधना का मुख्य लक्ष्य शवसाधना होता है, जिसकी सहायता से कापालिक सम्प्रदाय के साधक मानवेतर शक्तिसम्पन्न सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं से सम्पर्क करते हैं।"

यह सुनकर मैंने कहा, "स्वर्णा ने मुझे इस सम्बन्ध में विस्तार से बहुत कुछ बतलाया है। इतना ही नहीं, उसने पारलौकिक जगत् में निवास करने वाली मानवेतर शक्तिसम्पन्न आत्माओं के सहयोग से मेरे सामने ऐसे-ऐसे चमत्कारों की भी सृष्टि की, जिसने मुझे हतप्रभ कर दिया। सच पूछिये तो वह सब देख-सुन कर ही मेरे मन में तंत्र-मंत्र और भूत-प्रेत के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा जगी।"

भट्टाचार्य महोदय ने आगे बतलाया कि सभी साधनाओं में शवसाधना सबसे भयानक और तामसिक है। उसमें पग-पग पर जान का खतरा रहता है। इसके अलावा बहुत रहस्यमय भी है वह। उसका रहस्य, रहस्य ही बना रहे, उसकी गुह्यता और गोपनीयता की रक्षा हो, किसी प्रकार का विघ्न न पैदा हो और किसी प्रकार आक्षेप-विक्षेप भी न हो इसलिए कापालिक सम्प्रदाय के अनुयायी अपनी साधना-स्थली देश-समाज से एकदम अलग रखते हैं। उनके रहस्यमय क्रियाकलापों पर किसी की दृष्टि न पड़े इसके लिए वे बराबर सतर्क भी रहा करते हैं।

तांत्रिक संस्कृति और वैदिक संस्कृति

हमारे देश में शुरू से ही मुख्य रूप से दो संस्कृतियों का प्रभाव रहा है। पहली है तांत्रिक संस्कृति और दूसरी है वैदिक संस्कृति। [redacted] देन है, अत: वैदिक संस्कृति के उद्भव और विकास के पहले हमारे देश में तांत्रिक संस्कृति का ही व्यापक प्रभाव था। इसीलिए भारतीय संस्कृति के इतिहास में यक्ष-प्रभाव को काफी महत्त्व दिया गया है और सच तो यह है कि भारतीय इतिहास का यह भूला हुआ विषय है, जिसके बिना इतिहास समझा ही नहीं जा सकता।

यक्षवाद से आविर्भूत तांत्रिक संस्कृति का युग वास्तव में शक्ति-युग था। यक्षों की वह आद्यशक्ति दो रूपों में विभक्त थी। एक था पूज्यारूप और दूसरा था भोग्यारूप। स्त्री को गुह्य दीक्षा देकर उसमें दोनों रूपों की परिकल्पना की जाती थी। भारतीय संस्कृति के प्रखर विद्वान् सर जॉन उडरफ ने यक्षों की आद्यशक्ति से देश-

देशान्तरों की स्त्री-शक्तिपूजा की विस्तृत तुलना की है। उनकी दृष्टि में गोधूलि देवता, [redacted] सैविला, इडा, त्रिपुरसुन्दरी, आयोनिक माता, [redacted] द्वारा सृजन होता है), [redacted] की [redacted] और पार्वती के समान विचरण करने वाली अफ्रीका की [redacted]वन-विचार आदि की दीप्त स्वामिनी [redacted] वस्त्र, असीरिया की माता [redacted]ी, गुह्य महाभैरवी आदि सब यक्षों [redacted] शक्ति के ही रूप हैं।

इस प्रकार यदि ध्यान से देखा जाये तो शक्तिपूजा अथवा स्त्री के रूप में शक्तिपूजा की परम्परा अधिकांशतः उन्हीं जातियों में मिलती है जो आर्येतर थीं और जिनकी सभ्यता बहुत ही अधिक प्राचीन हो चुकी है।

गोपनीय साधना-स्थली

दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम काल में देश और समाज पर कापालिक सम्प्रदाय के अनुयायियों का भयंकर प्रभाव था। आदि शंकराचार्य के अवतरण के समय भी कम प्रभाव नहीं था उनका। इसके बाद हिमालय का आन्तरिक क्षेत्र और तिब्बत का हिमाच्छादित पर्वतीय इलाका कापालिकों की शवसाधना का प्रमुख केन्द्र बना। तांत्रिक साधना के लिए वह स्थान भी अपना अलग महत्त्व रखता है, जहाँ शिव और शक्ति का समन्वय हो। इस दृष्टि से काशी सबसे उपयुक्त प्रतीत हुआ साधकों के लिए। काशी में जहाँ एक ओर शिव की उपासना होती है, वहीं दूसरी ओर शक्ति के विभिन्न रूपों की भी साधना होती है। मुगलकाल के पहले तक शिवोपासना की तरह गुह्य तन्त्रों पर आधारित शक्ति की तमाम गोपनीय तथा रहस्यमयी साधनायें प्रकट रूप में हुआ करती थीं काशी में।

काशी के शिवाला घाट से लेकर दशाश्वमेध घाट के अन्तर्गत जितने गंगा तटवर्ती मुहल्ले हैं, वे सब कभी कापालिकों के और शाक्तों के गोपनीय साधना-स्थल थे। उस समय लगभग हर घर में काली की मूर्तियाँ थीं और प्रायः सभी के यहाँ तांत्रिक साधनायें होती थीं। आज भी बहुत से घरों में काली की प्राचीन मूर्तियाँ मिल जाएँगी।

भट्टाचार्य महाशय जोर से साँस लेकर कहने लगे, "मुगल साम्राज्य का कुप्रभाव काशी पर भी कम नहीं पड़ा। काशी विश्वनाथ के मन्दिर की तरह तांत्रिक साधना-स्थलों को भी विध्वन्सित न कर दिया जाय, काशी के अन्य मन्दिरों और देवस्थानों की तरह इन्हें भी तोड़फोड़ कर नष्ट-भ्रष्ट न कर दिया जाय, इसीलिए जमीन के भीतर तलघर और तहखानों की तरह रहस्यमय ढंग से साधनागृह बनाये गये। मगर उनके बारे में मात्र वही लोग जानते थे, जो साधक की श्रेणी में आते थे। आज भी यही बात है।

"साधकों के अलावा कोई नहीं जानता कि कहाँ और किस मुहल्ले में ऐसे भूमिगत साधनागृह हैं ? सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार साधनागृह में चला भी गया तो यदि फिर वह दुबारा वहाँ जाना चाहे तो नहीं जा सकता। वह भूल जायेगा कि कहाँ और किधर से कैसे गया था वह उस रहस्यमय गर्भगृह में।"

भट्टाचार्य महाशय का कहना बिल्कुल ठीक था। मैंने भी कई बार कोशिश की... कई बार अनेकानेक गलियों का चक्कर लगाया, बहुत खोजने का प्रयास किया, मगर वह मकान मुझे फिर नहीं मिला। हाँ, दो-एक जर्जर और टूटे-फूटे मकानों को देखकर यह भ्रम अवश्य हुआ कि हो सकता है यही वह मकान हो, मगर भीतर जाने की हिम्मत नहीं हुई मेरी।

भट्टाचार्य महाशय ने बतलाया कि "मैं कापालिकों के जिस साधना-गृह में गया था, वह अतिप्राचीन है। वहाँ पहले नरबलि होती थी, आज भी शायद दीपावली के अवसर पर होती है। पहले तो वहाँ किसी का जाना ही मुश्किल है और यदि संयोगवश अथवा दुर्भाग्यवश कोई व्यक्ति वहाँ पहुँच भी गया तो उसे फिर बाहर नहीं निकलने दिया जाता। साधना-गृह की गोपनीयता बनाये रखने के लिए उसकी वहीं बलि दे दी जाती है।

"क्या मेरी भी बलि दे दी जाती ?" मैंने हकलाते हुए पूछा ?

"क्यों नहीं ? इसीलिए तो आपको उस काल-कोठरी में रखा गया था।" भट्टाचार्य महाशय बोले, "अगर स्वर्णा ने अथक प्रयास करके आपको वहाँ से निकाला न होता, तो आज मेरे सामने न बैठकर किसी और ही दुनिया में होते आप।"

यह सुनकर पलभर के लिए स्तब्ध रह गया, फिर आश्चर्य से बोला, "अच्छा स्वर्णा ने बचाया ? यह मुझे मालूम नहीं था। उसने भी नहीं बतलाया मुझे। अच्छा.... लेकिन वह क्यों निकाल कर ले आयी मुझे ? क्यों उसने मेरी रक्षा की ? मेरी समझ में नहीं आ रहा है..."

भट्टाचार्य महोदय भी भला इसका क्या उत्तर देते ? वह मौन रह गये।

मैं उठकर कालीबाड़ी से बाहर निकल आया। रास्ते में बराबर स्वर्णा के ही बारे में सोचता रहा। उसका व्यक्तित्व तो पहले ही मेरे लिए रहस्यमय था, लेकिन अब इस घटना से और जटिल हो गया वह रहस्य। एक पिशाचसिद्ध साधिका के पाषाणवत् कठोर हृदय में मेरे प्रति इतनी कोमलता और उदार भावना क्यों आयी और उसकी आँखों में मेरे लिए आँसू क्यों थे ? क्यों थरथराये थे उसके होंठ ?

मैं जितना सोचना और जितना समझने की कोशिश करता, उतना ही और उलझता जा रहा था मेरा मस्तिष्क। आखिर घर पहुँचते ही दोनों हाथों से सिर थाम कर बैठ गया मैं...

पूरी रात नींद नहीं आयी मुझे उस रोज। लगातार करवटें बदलता रहा मैं। बार-बार स्वर्णा के झिलमिलाते आँसू और थरथराते होंठ मेरी आँखों के सामने

थिरक उठते थे, और उसी के साथ अपने गले में उसकी लता जैसी बाँहों के कोमल स्पर्श की अनुभूति भी होती मुझे।

किसी प्रकार भोर की बेला में जरा-सी झपकी लगी तो उसी तन्द्रावस्था में मैंने देखा कि मेरे सामने वही प्रधान कापालिक खड़ा है और अपनी क्रूरता-भरी लाल-लाल आँखों से मुझे घूर रहा है। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा है। उसके हाथ में बलि देने वाला वह भयानक खड्ग भी था, जिस पर लगे खून के धब्बे सूखकर काले पड़ गये थे। वह धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ा, फिर एक झटके से खड्ग वाला हाथ ऊपर उठा कर वह एकदम मेरी ओर झपट पड़ा...

तभी जोर से चीख पड़ा मैं, और उसी चीख के साथ ही मेरी आँखें खुल गयीं। सारा शरीर पसीने से भींग उठा था मेरा। भय से मेरा रोम-रोम काँप रहा था उस समय, मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र-सी हो रही थी।

तन्त्रसाधक चारू बाबू

सायंकाल कालीबाड़ी गया, भट्टाचार्य महाशय से मिलकर मैंने अपनी स्थिति बतलायी—सपने की बात भी सुनाई। बहुत देर तक वह मौन रहे, फिर बोले, "वह प्रधान कापालिक अत्यन्त भयानक प्रवृत्ति का कठोर साधक है। उसके विषय में चारू बाबू से बहुत कुछ सुन रखा है मैंने।"

"कौन चारू बाबू?"

"बहुत बड़े तंत्र-साधक हैं चारू बाबू। उनका पूरा नाम था—[redacted] के बगल वाले मकान में रहते थे। प्राय: अमावस्या की रात्रि में वह कापालिक भेष बदल कर किसी राजा-रजवाड़े की तरह सज-धज कर उनके यहाँ पहुँच जाया करता था।"

"क्यों? किसलिए?"

"मदिरा-पान करने के लिए। दोनों एक साथ बैठकर खूब मदिरा-पान करते थे पूरी रात।"

"अच्छा।"

"हाँ। इसके साथ-साथ वे दोनों भैरवी साधना भी करते थे।" भट्टाचार्य महाशय हो-हो करके हँसे, फिर कहने लगे, "चारू बाबू की एक लड़की थी। नाम था काकुली। मुझे तो अब ऐसा लगता है कि शायद मदिरापान के बहाने वह असुर काकुली के लिए ही वहाँ जाया करता था।

काकुली

बहुत ही सुन्दर और आकर्षक थी काकुली। पन्द्रह-सोलह वर्ष से ज्यादा उसकी उम्र नहीं थी उस समय। चम्पई रंग। सुनहरे रंग की काली चमकीली

केशराशि, नुकीली नाक। मोरनी जैसी आँखें, जिसमें हमेशा सपना-सा तैरा करता था। गुलाब जैसे होठों पर हर समय लाज-भरी मुस्कराहट दमकती रहती थी।

घर में और कोई नहीं था, इसलिए जब वे दोनों मदिरापान करने बैठते तो काकुली को ही दौड़-दौड़ कर कभी पानी लाना पड़ता तो कभी गिलास, कभी भुनी हुई मछली। कब तक बचती वह बेचारी आखिर। एक दिन उस कापालिक की दृष्टि उसके सौन्दर्य की सुगन्ध में लिपटे यौवन पर पड़ ही गयी और वह उस अछूते यौवन का अपनी भयानक साधना में उपभोग करने के लिए लालायित हो उठा।

''चारू बाबू इन सब बातों से अनभिज्ञ रहे हों, ऐसी बात नहीं। सब कुछ जानते-समझते थे वह, लेकिन विवश थे बेचारे।''

''क्यों? विवशता किस बात की थी?''

''वह कुछ महत्त्वपूर्ण तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त करना चाहते थे उस कापालिक से। उसने भी अगली दीपावली को मनचाही दुर्लभ सिद्धियाँ प्रदान करने का आश्वासन दिया था उन्हें, बस इसी लालच के कारण मौन रह गये थे चारू बाबू। आखिर जो होना था, वह होकर ही रहा। उस राहु ने ग्रस ही लिया काकुली को एक दिन।

''यह बात नहीं कि काकुली ने विरोध न किया हो, मगर उस भयानक कापालिक के सामने उसका कोई विरोध टिक ही न सका। अन्त में निढाल होकर अपने आपको भाग्य-भरोसे छोड़ दिया उसने। उसका एक प्रेमी था। उसके साथ विवाह भी तय हो गया था काकुली का लेकिन जब उस प्रेमी ने यह सब सुना तो एक दिन जहर खा कर आत्महत्या कर ली उसने।''

''फिर?'' मैंने चौंक कर पूछा, ''फिर क्या हुआ?''

''फिर क्या होगा।'' विषण्ण भाव से भट्टाचार्य महाशय बोले, ''चारू बाबू को दुर्लभ तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त हुईं या नहीं, यह तो बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन काकुली का रूप और यौवन अवश्य तांत्रिक साधना की बलिदेवी पर उत्सर्ग हो गया। इस घटना को पूरे बीस वर्ष हो गये, मगर काकुली का कोई पता नहीं चला कि वह कहाँ है? कोई यह भी नहीं जानता कि वह जीवित भी है या नहीं? चारू बाबू भी नहीं जानते। घोर पश्चात्ताप के सिवाय और कुछ नहीं रह गया है अब उनके पास। हर समय निराशा के सागर में डूबे रहते थे।''

यह सब सुनकर घोर कष्ट हुआ मुझे।

बोझिल स्वर में आगे बताया भट्टाचार्य महाशय ने, ''काकुली की तरह कई अन्य कन्याओं का भी रूप और यौवन जल कर भस्म हो गया इसी तरह उस कापालिक की साधना की अग्नि में। स्वर्णा को ही ले लीजिये...''

''उसकी उम्र कितनी समझते हैं आप? कभी किसी को वृद्धा भिखारिन के रूप में, कभी किसी को पगली के रूप में तो कभी किसी को आकर्षक रूपसी

तरूणी के रूप में दिखलायी पड़ती है वह। डाकिनी विद्या के बल पर रूप बदलने में माहिर है वह, मगर उसकी सही उम्र और असली रूप क्या है यह कोई नहीं जानता। पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से मैं ही देख रहा हूँ उसे। जैसे वह कालंजयी हो।

''पश्चिम बंगाल के किसी स्टेट की राजकुमारी थी वह। अगाध रूप और सौन्दर्य था और था अकूत यौवन। जिसने उस समय देखा था, उनका कहना था कि साक्षात् कामदेव की रति जैसी लगती थी स्वर्णा।

''लेकिन देवकन्याओं जैसे उसके रूप, यौवन और सौन्दर्य पर शनि की वक्रदृष्टि पड़ ही गयी।

''कामदेव जैसे किसी राजकुमार के बाहुपाश में आलिंगनबद्ध होने और उसकी अंकशायिनी बनने का उसका सुनहला सपना तंत्र की शूली पर चढ़ गया, जिसकी लाश अभी तक उसी शूली पर झूल रही है।

''जानते हैं, उसके जीवन के अमृत कलश में किसने महाविष घोला? उसी कापालिक ने, उसने उस पवित्र सुगन्धित पुष्प को किसी देवता के चरणों पर अर्पित होने के पूर्व ही स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी तामसिक साधना में मसल डाला स्वर्णा को।''

भट्टाचार्य महाशय का कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि लगा जैसे सब कुछ अपनी आँखों से देखा है।

बताने लगे कि स्वर्णा के मन में भी एक युवक की छवि बसी हुई थी। कौन था वह युवक?

चन्दननगर के रायबहादुर राधामोहन गुहाराय का इकलौता बेटा। बड़ा ही होनहार और सुदर्शन युवक था वह। नाम तो उसका कुछ और ही था, लेकिन प्यार से लोग उसे बकुल कह कर पुकारते थे। सचमुच वह बकुल पुष्प की तरह सुन्दर और मोहक था भी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव को अपना गुरु मानता था वह। रामबाड़ी में एक छोटा-सा काली-मन्दिर था। उसी मन्दिर में काली की पाषाण-प्रतिमा के सम्मुख बकुल घण्टों आँखें मूँदे ध्यानमग्न बैठा रहता था। स्वर्णा से अगाध प्रेम करता था बकुल भी। दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। कभी-कदा बकुल स्वर्णा से मिलने चला जाया करता था। तब पद्मा नदी के किनारे बैठकर घण्टों प्रेमालाप करते दोनों। फिर रंगीन सपनों में खो जाते, फिर समय की सुधि ही न रह जाती उन्हें।

स्वर्णा और बकुल के प्रेमप्रसंग से अपरिचित नहीं थे राय साहब। वह सबकुछ जानते-समझते थे। अतः शीघ्र ही उन दोनों को दाम्पत्य-सूत्र में बाँध देना चाहते थे।

लेकिन उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई।

"क्यों?" मैंने पूछा।

"पूरी होने के पहले ही नियति ने अपने चंगुल में दबोच लिया उस असहाय को।"

"क्या मतलब? किसने नष्ट किया स्वर्णा का जीवन?"

"उसी प्रधान कापालिक ने।"

"ऐं?" आश्चर्य से मेरा मुँह खुला का खुला रह गया।

भट्टाचार्य महाशय ने क्षणभर रुककर बताया। उन दिनों बंगाल के राजपरिवार के लोगों ने अपने शत्रुओं और प्रतिद्वन्द्वियों को हर प्रकार और हर दृष्टि से नीचा दिखाने तथा नष्ट करने के लिए बड़े-बड़े राजतांत्रिक पाल रखे थे और उनसे भयानक तांत्रिक प्रयोग और अनुष्ठान करवाया करते थे। चन्दननगर के राज-परिवार में भी एक राजतांत्रिक था। जानते हैं कौन था वह राजतांत्रिक? यही था, प्रधान कापालिक। इसका प्रभाव पूरे राजपरिवार पर था।

"राय साहब का एक प्रतिद्वन्द्वी और परमशत्रु था मदनमोहन मजुमदार। वह बड़ा ही धूर्त, लम्पट और ऐय्याश प्रवृत्ति का था और भी कुछ ऐसी बातें थीं, जिनके कारण राय साहब उससे भयभीत रहा करते थे। फिर एक बार कुछ ऐसी घटनायें घट गयीं कि राय साहब ने हमेशा के लिए उसे अपने रास्ते से हटाना ही जरूरी समझा। इसी में उन्हें अपना कल्याण दिखाई दिया और जब इस सम्बन्ध में उन्होंने प्रधान कापालिक से बातें कीं तो वह सहर्ष तैयार हो गया सहायता के लिए।

"प्रधान कापालिक ने उन्हें आश्वासन दिया था कि वह भयंकर मारण प्रयोग जानता है, जिसके बल पर मजुमदार को चौबीस घण्टों में समाप्त कर देगा। लेकिन उसने एक शर्त लगा दी थी वह यह कि इसके बदले स्वर्णा उसे दे दी जाय।

"स्वर्णा के रूप और यौवन पर उस प्रधान कापालिक की गिद्ध-दृष्टि बहुत पहले से ही गड़ी हुई थी उसे वह अपनी महाभैरवी बनाकर उच्च तांत्रिक साधना करना चाहता था। वास्तव में महाभैरवी के लिए स्वर्णा जैसी सुन्दर तरुणी उसे मिलती भी कहाँ? उसे अवसर की प्रतीक्षा थी, और वही अवसर अब उसे मिल रहा था, तो उसे वह किसी भी मूल्य पर गँवाना नहीं चाहता था।

लेकिन राय साहब ने शर्त को मानने से साफ इनकार कर दिया।

फिर भी उस कुटिल कापालिक ने हार नहीं मानी। बराबर प्रयास में लगा रहा।

स्वर्णा का वियोग

"आखिर कुछ ही दिनों बाद एक ऐसी घटना घट गयी, जिसके फलस्वरूप राय साहब को उस कापालिक की शर्त स्वीकार करनी ही पड़ी। इसकी चर्चा राय साहब ने जब स्वर्णा से की तो उसका गुलाब-सा खिला चेहरा एकदम काला पड़

गया। आँखों से आँसू निकल पड़े। शरीर थर-थर काँपने लगा उसका। पूरी रात रोती ही रही वह। उसके एक ओर पिता का जीवन था, पूरे राज-परिवार का सम्मान था, राज्य की रक्षा का प्रश्न था और दूसरी ओर था उसका प्यार। आखिर विवश होना पड़ा उसे। अपने पिता के लिए, राजपरिवार के लिए और उसकी रक्षा के लिए अपने प्यार को उत्सर्ग कर दिया उसने। सचमुच वह उसका बहुत बड़ा त्याग और बहुत बड़ा बलिदान था। यह सारी स्थिति जब बकुल को मालूम हुई तो वह एकदम बिलख पड़ा। अपने प्यार, भावी पत्नी का वियोग सहन नहीं कर सका बकुल। काली-मन्दिर में जाकर उसने भीतर से कपाट बन्द कर लिया और काफी देर तक प्रतिमा के चरणों को दोनों हाथों से पकड़ कर रोता रहा वह। इसके बाद उसने सहसा बलि देने वाला खड्ग उठाया और दूसरे ही क्षण खच की ध्वनि के साथ उसका सिर कटकर धड़ से अलग हो गया। इसके साथ ही मन्दिर की फर्श खून से गीली हो उठी।

"जब वह दारुण समाचार स्वर्णा को मिला तो वह व्याकुल हो उठी, मगर अब बेचारी क्या कर सकती थी। फिर भी बकुल को बराबर याद करती रही वह। आज भी कभी-कभी उसकी यादों में डूब जाती है वह।"

इतना कह कर भट्टाचार्य महाशय मौन हो गये और अपलक शून्य में निहारने लगे। [redacted] के लम्बे-चौड़े पथरीले आँगन में शाम की स्याही बिखर गयी थी। कदम्ब और गुलमोहर के पेड़ों पर पक्षी चहचहाने लगे थे। शंख-घंटे और नगाड़े के मिले-जुले स्वर वातावरण में गूँजने लगे थे। शायद माँ काली की पूजा-आरती का समय हो गया था।

भट्टाचार्य महाशय के शब्दों ने स्वर्णा के अतीत की कथा साकार कर दी थी मेरे सामने। उस समय स्वर्णा के प्रति मेरे मन में जहाँ पीड़ा थी, वेदना थी, वहीं उस कापालिक के प्रति आक्रोश भी था। घर पहुँचा तो थोड़ी ही देर बाद अचानक स्वर्णा भी आ गयी। उस साँझ को उसकी उपस्थिति बड़ी विचित्र लगी।

वह एकटक बिना पलक झपकाये मेरी ओर देख रही थी।

जीर्ण क्लान्त चेहरा, शंख जैसा रंग और अजीब सम्मोहन से भरी आँखें। क्या था उस दृष्टि में, कह नहीं सकता।

उसके विवर्ण चेहरे की ओर ताकते हुए मैंने कहा, "आइये। आइये। कहाँ थीं आप इतने दिनों? तबीयत तो ठीक है न?"

"पहले तुम मुझे 'आप' कहना बन्द करो आज से।" भर्राये स्वर में स्वर्णा बोली, "मुझे यह अच्छा नहीं लगता। समझे?"

"तब क्या कहूँ?" हँसकर पूछा मैंने।

"तुम... मुझे 'तुम' कह कर पुकारा करो।"

"ठीक है। आज से 'तुम' ही कहूँगा।"

चारपायी पर मेरे समीप बैठती हुई कहने लगी वह, "तुम अभी तारानाथ भट्टाचार्य से मिल करके आ रहे हो न? मुझे सब कुछ मालूम है। सब कुछ जानती हूँ मैं। बोलो, क्या-क्या बातें हुईं उनसे?"

"जब तुमको सब कुछ मालूम ही है तो मेरे बतलाने से लाभ क्या?"

"नहीं, मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूँ।"

"ठीक है। लो सुनो..." और मैंने सब कुछ सुना दिया उसे। फिर अन्त में बोला, "स्वर्णा, एक ओर तुम्हारे पास असीम अलौकिक शक्तियाँ हैं और दूसरी ओर बकुल की तमाम यादें भी हैं तुम्हारे हृदय में। सचमुच तुमने बहुत बड़ा त्याग किया है, स्वर्णा। लेकिन एक बात पूछ सकता हूँ? क्या उस त्याग का मूल्य वे तमाम पैशाचिक शक्तियाँ भर ही हैं, जिनका बोझ उठाये तुम न जाने कितने सालों से जिन्दा लाश की तरह भटक रही हो काशी की अंधेरी गलियों में? सोचता हूँ यदि उन शक्तियों की अपेक्षा त्याग एवं प्रेम का मूल्य और महत्त्व अधिक होता तो उन्हीं शक्तियों की सहायता से तुम अपना बदला ले लेती उस कापालिक से।" न जाने कैसे और किस आवेश में इतना सब बोल गया मैं, समझ में नहीं आया। स्वर्णा चुपचाप बैठी सुनती रही। कुछ बोली नहीं। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। बीच-बीच में आँखों से दो-चार मोती ढुलक पड़ते थे उसके स्याह पड़े गालों पर।

फिर एक झटके से उठी वह और दुबारा मेरी ओर देखे बिना कमरे से बाहर निकल गयी।

मैं उसे जाते हुए देखता रहा। न उसे रोका और न टोका ही। बाद में बहुत अफसोस हुआ, क्यों कह दी मन को चोट लगने वाली इतनी कड़ी बात? नहीं कहनी चाहिये थी। पूरी रात व्याकुल मन लिये करवटें बदलता रहा मैं चारपायी पर।

उसके बाद कई दिन बीते, सप्ताह बीते और फिर कई महीने गुजरे, स्वर्णा नहीं आयी। उसके दर्शन दुर्लभ हो गये। मन को बड़ी ठेस लगी। न जाने कैसा मोह हो गया था उसके प्रति समझ में नहीं आ रहा था। मन की शान्ति छिन गयी थी जैसे। धीरे-धीरे गर्मी का मौसम बीत गया। नीले आकाश में अब काले-भूरे बादलों के टुकड़े दिखलायी देने लगे थे। कभी-कदा रिमझिम बारिश भी हो जाया करती थी।

उस दिन रुक-रुक कर हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी। खिड़की के नजदीक चारपायी पर लेटा हुआ मैं आकाश में बादलों को देख रहा था। फिर न जाने कब झपकी लग गयी। उसी मन:स्थिति में मैंने देखा कि पद्मा नदी के किनारे बालू पर बैठा हूँ और मेरी गोद में सिर रखे स्वर्णा लेटी हुई है। उस समय नि:शब्द शून्य वातावरण में चाँदनी बिखरी हुई थी। चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। अविभूत दृष्टि से अपलक उसकी ओर निहार रहा था मैं। एक सम्पूर्ण नारी लग रही थी वह।

मादक सौन्दर्य, उन्मत्त यौवन से भरपूर... ऐसी कि देखकर एक बार किसी का भी पौरुष सम्मोहित हो जाय। सचमुच राजकुमारी-सी ही लग रही थी स्वर्णा। सुर्ख रेशमी साड़ी। बिना बाँहों का ब्लाउज। अति कमनीय मुख, कानों के पास एक खिंची काजल की पतली रेखायें और शरबती आँखों में छलकती हँसी। नारी-देह की उन्मादक गंध और अपरूप रूप का नशा....

एक झटके से आँखें खुल गयीं। कोई दरवाजा पीटता हुआ कह रहा था, "किवाड़ खोलो।"

उस समय भयंकर बारिश हो रही थी। वातावरण में बरसात का उन्मत्त कोलाहल गूँज रहा था। हवा की साँय-साँय अजीब-सा शोर उत्पन्न कर रही थी।

वही आवाज फिर सुनाई पड़ी, "खोलो, दरवाजा खोलो। मैं भीग रही हूँ न। जल्दी खोलो..."

आवाज पहचान गया मैं। वह स्वर्णा का स्वर था।

झट से उठकर दरवाजा खोल दिया मैंने।

प्रचण्ड वेग से हवा के झोंके बारिश की बूँदें लिये भीतर आ गये। उन्हीं के साथ स्वर्णा भी भीतर आई तो उसका भीगा आँचल हवा से फर-फर उड़ रहा था।

मैंने उसकी ओर देखा—राख जैसा रंग, बदहवास चेहरा, सूजी हुई आँखें। लगा जैसे लगातार कई रातों की जगी हुई है वह। आँखों के नीचे स्याह धब्बे भी दिखाई दे रहे थे।

उसने बुझी-बुझी निगाह से मेरी ओर देखा, फिर विषण्ण स्वर में कहा, "मेरे सारे कपड़े भींग गये हैं। क्या करूँ? पहनने लायक कुछ है तुम्हारे पास।" मेरे यहाँ साड़ी कहाँ मिलेगी? मेरी धोती है, यही पहन लो।

मैंने खूँटी से अपनी धोती उतार कर उसे थमा दी। गीली साड़ी उतार कर उसने मेरी धोती जैसे-तैसे लपेट ली अपने भींगे शरीर पर। फिर मेरे बिल्कुल करीब चारपायी पर बैठती हुई धीरे से बोली—"बहुत याद करते थे न? रोज मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। बोलो, सही है न?"

"हाँ, बिल्कुल सच है। अभी-अभी तुम्हारा ही सपना देख रहा था मैं।"

"क्या?"

और उस 'क्या' के उत्तर में सपने की सारी बातें, एक-एक कर बतला दीं मैंने स्वर्णा को। चुपचाप मौन साधे और मेरी ओर एकटक निहारती हुई सुनती रही मेरे सुनहले, सुन्दर और मोहक सपने की बातें। उसके सुन्दर चेहरे पर कई भाव आये और गये उस समय। फिर नज़रें झुकाकर न जाने क्या सोचने लगी वह। थोड़ा हँसकर मैंने पूछा—"अच्छा यह बतलाओ, इतने दिनों थीं कहाँ तुम? क्या नाराज थी मुझसे?" "भला तुमसे क्यों होऊँगी मैं।" फिर थोड़ा रुककर बोली वह, "तुमने

मेरे सूखे, वीरान और नीरस जीवन में अमृत संजीवनी बनकर प्रवेश किया है। दीर्घ अन्तराल के बाद जैसा मोहक सपना तुमने देखा है, वैसा ही मोहक मैंने भी देखा है सपना तुमको लेकर।''

यह सुनकर थोड़ा स्तब्ध-सा हो गया, कुछ क्षण तक अपलक देखता रहा स्वर्णा की ओर मैं, फिर थोड़ा हँसकर बोला—तो तुम्हारे और मेरे सपने एक ही हैं।

मुस्कुरा कर बोली स्वर्णा—''अच्छा छोड़ो सपनों की बात, लाओ एक गिलास पानी दो।''

''क्या करोगी।''

''मदिरा-पान करूँगी, और क्या करूँगी।'' गिलास और पानी लाकर रख दिया मैंने स्वर्णा के सामने।

उसने हवा में पहले की तरह हाथ हिलाया और दूसरे ही क्षण पहले ही की तरह कीमती अंग्रेजी शराब की बोतल आ गयी हाथों में और उसी के साथ आ गया रुचिकर भोजन की थाली भी। गट्-गट् कर पूरी शराब पी गयी वह साधिका। खाली हो गयी बोतल। फिर भोजन किया उसने। भोजन क्या था। तला हुआ मुर्गा, कबाब और चावल।

स्वर्णा की विवशता

भोजन करने के बाद दूसरे हाथ से मुँह पोंछती हुई गीले स्वर में रुक-रुक कर कहने लगी स्वर्णा—उस दिन मेरे अन्तराल की जो आग भड़का दी थी तुमने, जानते हो, उसी धू-धू कर जलती हुई आग की लाल-पीली लपटों में एक लम्बे अर्से से झुलस रहा है मेरा मन, मेरा प्राण और मेरी आत्मा भी। मेरा जीवन शून्य तो था ही, उस नये आघात ने जेठ, बैसाख की रेगिस्तानी आँधी की तरह मेरे अन्तराल को बुरी तरह झकझोर दिया। झुलस कर रह गया सब कुछ मेरा। मैंने प्रेम किया था बकुल से। वासनारहित आत्मिक प्रेम। वह भी चाहता था मुझे हृदय से। हम दोनों शीघ्र ही परिणय-सूत्र में बँधने वाले थे। लेकिन उस कापालिक ने मेरी समस्त आकांक्षाओं को राख कर दिया एकबारगी। जीवन में चारों ओर शून्य ही शून्य था, शून्य के सिवाय और कुछ नहीं। कभी फिर आयेगी बहार, इसकी आशा नहीं थी जीवन में। फिर भी अपने उजड़े हुए जीवन को अपनाने का संकल्प कर लिया। जीवन रुका था अभिशाप मिला था, उसे बिना प्रतिरोध के ग्रहण कर लिया मैंने। तभी तुमने उस दिन सर्वथा अप्रत्याशित रूप से व्यंग की बौछार कर दी। तुम्हारे एक-एक शब्द ने मेरे टूटे और टूट कर बिखरे हुए मन में हाहाकार उत्पन्न कर दिया एकबारगी।

पाषाणवत् बैठा सुनता रहा मैं स्वर्णा की कथा और अथाह वेदना में डूबी हुई मर्मस्पर्शी व्यथा-कथा। कुछ बोला न गया मुझसे।

स्वर्णा की जो अन्तरंग कथा संक्षिप्त में तारानाथ भट्टाचार्य ने सुनायी थी मुझे लगभग वही कथा थी वह भी। लेकिन स्वर्णा ने जो कथा सुनायी उसमें उसकी अनुभूतियों से भरा मन को द्रवित कर देने वाला भाव भी था जो मेरी आत्मा का स्पर्श कर गया एकबारगी। सब कुछ सुनने के बाद न जाने कैसा हो गया मेरा मन। काफी देर तक अपलक शून्य में ताकता रहा मैं न जाने क्यों।

बाहर प्रचण्ड वेग से हाहाकार करती हुई बारिश हो रही थी। पागल बरसात के उन्मत्त कोलाहल से भर गया था वातावरण। स्वर्णा बोलती जा रही थी, ''मेरे [redacted] हैं जो मेरे संकेत-मात्र से असम्भव-से असम्भव कार्य भी सम्पन्न कर सकती हैं। उनके लिए कुछ असम्भव और कठिन नहीं है। उनकी सहायता से कभी का बदला ले चुकी होती मैं, लेकिन ले नहीं सकी। मेरी एक विवशता थी... और आज भी वही विवशता है।''

''कैसी है वह विवशता। कौन-सी रुकावट है। क्या मैं जान सकता हूँ। क्या तुम मुझे बतला सकती हो।''

नर-कंकाल

कुछ देर तक मौन रही वह। ऐसा लगा मानो अतीत की गहराइयों में कहीं खोकर निर्जीव-सी हो गयी हो। फिर घाटियों में गूँजती हुई-सी उसकी आवाज कहीं दूर से आती हुई लगी। कहने लगी—''तुमने उस गुप्त साधनास्थल की दीवारों पर टँगे नर-कंकालों को देखा होगा। वहीं ऊँची वेदी पर भी एक नर-कंकाल को पालथी मारकर बैठा हुआ देखा होगा।''

मैंने सिर हिलाकर कहा—''हाँ।''

''उन्हीं टँगे हुए नर-कंकालों में एक कंकाल बकुल का भी है यानी मेरे प्रेमी का... भावी पति का।''

यह सुनकर भय और आश्चर्य से भर उठा मैं, लेकिन कुछ बोलूँ उसके पहले ही कहने लगी वह—''उन सभी नर-कंकालों की आत्मायें प्रधान कापालिक के अधिकार में हैं। बकुल की भी आत्मा को अपने कब्जे में कर रखा है उसने। वह अदृश्य रूप से उन आत्माओं से काम तो लेता ही है, इसके अलावा इच्छानुसार उनमें से किसी को मृत शरीर में प्रवेश कराकर अपने किसी आवश्यक अनुष्ठान को भी पूर्ण किया करता है।''

हे भगवान्! मैं क्या सुन रहा हूँ यह सब? क्या यह सब सम्भव है तांत्रिक या पैशाचिक बल पर?

स्वर्णा बताती रही, ''इस कार्य में पगली काफी सहयोग देती है उसे।''

''कौन पगली?''

''अरे वही पगली जिसने घाट पर साँप के विष से मरे हुए एक युवक को जीवित कर दिया था।''

''उस युवक को मैंने साधनास्थल पर भी देखा था, वह भी तुम्हारे साथ...''

''ठीक कहते हो। उस युवक के पार्थिव शरीर में उस समय उन्हीं में से किसी नर-कंकाल की आत्मा काम कर रही थी...''

यह सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं।

स्वर्णा बोलती रहीं, ''पद्मासन की मुद्रा में बैठा वह नर-कंकाल जानते हो किसका है? तिब्बत के एक महान् कापालिक का, जिसका नाम था मिलरेप।

''वह अत्यन्त उच्चकोटि का तांत्रिक तथा शवसाधक और तिब्बत के सियांग मठ का आचार्य था। लगभग सौ वर्ष पहले उसने मठ में ही समाधि ली थी। समाधि के समय उसकी आयु पूरी एक सौ अस्सी वर्ष थी। भयंकर शवसाधक कापालिक की सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा अभी तक अपने कंकाल से सम्पर्क बनाये हुए है।''

''प्रधान कापालिक का नाम तो अवश्य जानती होंगी आप''—मैंने पूछा।

''हाँ'', सवर्णा बोली—''उसका नाम है, कालेश्वरानन्द अवधूत।''

''तांत्रिक मिलरेप का नर-कंकाल कैसे मिला कालेश्वरानन्द को।''

''जब मठ के प्रांगण में मिलरेप के शव को भूमिगत किया जा रहा था, उस समय कालेश्वरानन्द उपस्थित था वहाँ। फिर न जाने कौन-सा खेल खेला कि कुछ ही समय में मठ का सर्वेसर्वा बन बैठा वह। मठ और उस मठ में रहने वाले लोगों पर पूरा अधिकार हो गया उसका। धीरे-धीरे दो वर्ष का समय व्यतीत हो गया। एक दिन अवसर देख कर रात्रि में मिलरेप की समाधि से उसका नर-कंकाल निकाल लिया कालेश्वरानन्द ने। और बाद में न जाने कैसे और किस प्रकार काशी ले आया उस नर-कंकाल को वह। क्यों?'' थोड़ा व्यग्र होकर प्रश्न किया मैंने।

''यह काफी रहस्यमयी बात है।'' स्वर्णा ने कहा—''तुमको ज्ञात होना चाहिए कि उच्चकोटि के तंत्रसाधकों की आत्माएँ शीघ्र पुनर्जन्म को उपलब्ध नहीं होती। कोई तांत्रिक आत्मा दीर्घकाल तक अन्तर्जगत् में निवास करती है और अपने निवास-काल में अपनी समाधि और उस समाधि में स्थित अपने पार्थिव शरीर के नर-कंकाल से बराबर सम्बन्ध बनाए रखती है अगोचर रूप में अपना। इसका क्या रहस्य है यह तो पूरी तरह बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन इतना अवश्य है कि अपनी समाधि के माध्यम से अपने पट्ट शिष्यों को वे आत्मायें तंत्र के गुह्य आयामों की शिक्षा-दीक्षा आदि देती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे नरकंकालों का और भी गोपनीय और रहस्यमयी तांत्रिक महत्त्व है जो अपने आपमें तिमिराच्छन्न हैं। निश्चय ही उस गोपनीय और रहस्यमय तिमिराच्छन्न तांत्रिक महत्त्व को भली-भाँति जानता-समझता रहा होगा कापालिक कालेश्वरानन्द अवधूत। सम्भवत: यह भी भली-भाँति जानता-समझता रहा होगा कि अवश्य ही मिलरेप की आत्मा का अगोचर सम्बन्ध होगा, अपने मौलिक शरीर की अस्थि से।''

हाकिनी-डाकिनी विद्या

थोड़ा रुक कर स्वर्णा आगे बोली—"यदि मेरा अनुमान सच है तो निश्चय ही मिलरेप की आत्मा से कोई भयंकर तमोगुणी तांत्रिक सिद्धि प्राप्त करने के चक्कर में होगा वह कापालिक, वह तांत्रिक सिद्धि क्या हो सकती है"—मैंने थोड़ा असहाय होकर पूछा।

कुछ देर तक न जाने क्या सोचती रही, गालों पर उँगली रखकर स्वर्णा फिर बोली—"जैसा कि मैंने सुना है कि मिलरेप [redacted] की अमोघ सिद्धि उपलब्ध थी। हो सकता है कि उन्हीं दोनों सिद्धियों को प्राप्त करना चाहता हो वह मिलरेप की आत्मा से।"

"हाकिनी और डाकिनी विद्या से क्या-क्या भौतिक लाभ हैं ?"—मैंने पूछा।

"बहुत सारे लाभ हैं रे।" थोड़ा मुँह बनाकर बोली स्वर्णा और फिर सामने रखी शराब को गिलास में उड़ेल कर गट्-गट् कर पी उसने और उल्टे हाथ से मुँह पोछती हुई आगे कहने लगी वह—"जानते हो तुम जो हाकिनी-डाकिनी विद्या तंत्र की सर्वोच्च और अमोघ तमोगुणी विद्या है, इसीलिए उसे ब्रह्मास्त्र विद्या भी कहते हैं। अति कठिनाई और अति परिश्रम से होती है यह विद्या उपलब्ध। सबके वश की बात नहीं है। जिसे यह दुर्धर्ष विद्या उपलब्ध होती है वह मानवेतर शक्तिसम्पन्न होता है, उसके लिए प्रकृति की सीमा में कुछ भी असम्भव नहीं। नियति तो उसके अधिकार में नहीं होती लेकिन प्रकृति कुछ विशेष सीमा तक उसके अधिकार में हो जाती है, अवश्य, इसमें सन्देह नहीं। यह तो निश्चित है कि कापालिक को कौन-कौन-सी योग तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त हैं, वह तो बतला नहीं सकती लेकिन इतना अवश्य मैं जानती हूँ कि काल और उसके प्रभाव पर उसका अधिकार अवश्य है, और इसी कारण इतनी लम्बी आयु हो जाने के बाद भी युवा बना हुआ है वह। यह मैं नहीं कहती हूँ कि काल के प्रभाव से वंचित है वह, काल का प्रभाव पड़ता है अवश्य उस पर लेकिन शनैः-शनैः।" सब कुछ सुनकर मैंने कहा—"कल्पना से परे बड़ी ही आश्चर्यजनक और साथ ही अविश्वसनीय बातें हैं ये।"

नागगन्धा

"इससे भी अधिक आश्चर्यजनक और विश्वसनीय एक और बात है और यह कि मिलरेप की एक भैरवी भी है, जिसका नाम है [redacted] आज भी जीवित है वह। इस समय उसकी आयु लगभग दो सौ पचास वर्ष से कम न होगी। वह भी कालंजयी है। इतनी लम्बी आयु होने पर भी सद्यः नवयुवती ही प्रतीत होती है वह। तंत्रशास्त्र की कई अमोघ और दुर्धर्ष विद्याओं का ज्ञान है उसे। बहुत बड़ी शवसाधिका भी है वह। शवसिद्ध है उसे। इन सबके अतिरिक्त योग-तंत्र की अमोघ गूढ़ और गुह्य विद्या, [redacted] की भी सिद्धि है उस महाभैरवी को, जिसके

द्वारा किसी भी क्षण आवश्यकता पड़ने पर कोई भी रूप बदल सकती है। कभी-कभी तो लोमड़ी, सियार, कुत्ता आदि पशु और तोता, मैना, मुर्गा आदि पक्षियों के रूप में भी अपने आपको परिवर्तित कर लेती है। कापालिक कालेश्वरानन्द उसे अपना परम गुरु मानता है। वह तांत्रिक शिष्य है उसका। पहले असम के ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे किसी निर्जन श्मशान में रहती थी वह कालंजयी भैरवी। लेकिन सुना है कि अब वक्रेश्वर के महाश्मशान में विभिन्न रूप धारण कर विचरण करती रहती है वह। उसको समझ पाना और पहचान पाना अत्यन्त कठिन है। सबके वश की बात नहीं है। सच पूछा जाय तो उसी की मानवेतर शक्ति की सहायता से तांत्रिक सिद्धियों का तमाम खेल खेलता है वह नर-पिशाच।''

''एक बात पूछ सकता हूँ।''

''पूछिये....।''

''तुम उस पिशाच के चंगुल में क्यों फँसी हुई हो। उसने तो कभी का तुम्हारे नारीत्व को निचोड़ कर बलि दे दी अपनी साधना की बलिवेदी पर। अब क्या शेष है।''

''शेष तो कुछ भी नहीं है और उसकी तांत्रिक शक्ति और उसकी तांत्रिक सिद्धि की भी परवाह नहीं है मुझे। यदि परवाह और चिन्ता है तो बकुल की आत्मा की, जो कापालिक के चंगुल में अब तक फँसी तड़प रही है मुक्ति के लिए।''

''समझा नहीं।'' मैंने कहा

''जब मेरे वियोग में बकुल ने माँ काली के सामने अपनी बलि दी उसी समय कापालिक कालेश्वरानन्द ने उसकी आत्मा पर अपना अधिकार कर लिया और तभी से...''

''समझ गया मैं, तुम उसकी आत्मा की मुक्ति चाहती हो।''

''हाँ।'' थोड़ी रुआँसी होकर स्वर्णा बोली—''बकुल की आत्मा की मुक्ति चाहती हूँ मैं। जबतक उसे मुक्त न कर लूँ तबतक कुछ भी नहीं कर सकती मैं। बस यही है मेरी असमर्थता और यही है मेरी विवशता और कारण मैं भी उस पापी के चंगुल में फँसी हुई हूँ। समझ गये न।''

प्रतिशोध

''उस पिशाच के चंगुल से मुक्त होने के बाद फिर क्या होगा।'' मैंने पूछा। ''होगा क्या?'' स्वर्णा बोली—''उसी के साथ मैं भी उसके बंधन से मुक्त हो जाऊँगी, सदैव के लिए स्वतंत्र। फिर देखोगे तुम कैसे लेती हूँ मैं उस पापी से अपना प्रतिशोध। और कैसे लेती हूँ प्रतिशोध उस कृतघ्न से अपने कौमार्य भंग का। तुम नहीं समझ सकोगे मेरे हृदय में जलते हुए प्रतिशोध की ज्वाला को। तुम यह भी नहीं

समझ सकोगे कि बकुल से कितना प्रेम करती थी मैं। और वह भी कितना चाहता था और कितना प्रेम करता था मुझसे कि मेरे वियोग को सहन न कर सका और अपनी बलि दे दी माँ काली के चरणों में उसने। सच पूछो तो हम दोनों का आत्मिक प्रेम था, शारीरिक और मानसिक नहीं... लेकिन क्या करूँ। समझ में नहीं आता। हे भगवान् कैसे क्या होगा?'' इतना कहकर दोनों हथेलियों से अपना चेहरा छिपा लिया और फिर सिसक-सिसक कर रोने लगी वह। उसके अन्तराल में दबी कौन-सी पीड़ा और कौन-सी व्यथा आँसुओं के सहारे बाहर निकलना चाहती थी—समझ न सका मैं।

मेरा भी मन विषण्ण हो उठा न जाने क्यों उस समय। मौन साधे न जाने क्या-क्या सोचने लगा मैं। रात का पहला पहर खत्म होने वाला था। बारिश बन्द हो गयी थी। काले-भूरे बादलों के टुकड़े हवा की लहरों पर इधर-उधर तैर रहे थे नीले आकाश में। कभी-कदा बादलों के उन तैरते हुए टुकड़ों के बीच से अष्टमी का खण्डित चाँद दिखलायी दे जाता था और क्षणभर के लिए उसकी पीली रोशनी बिखर जाती थी कमरे में।

अभी भी सिसक-सिसक कर रो रही थी स्वर्णा। रहा न गया मुझसे। न जाने क्यों? और कैसे? किस प्रेरणा के वशीभूत होकर और न जाने किस भावना में बँधकर सहसा थोड़ा आगे बढ़ा और दोनों हाथ थाम लिये मैंने उस प्रौढ़ा साधिका का। कुछ क्षण बाद धीरे-धीरे उस अभिसारिका ने अपना सिर उठाकर सजल नेत्रों से देखा मेरी ओर एकबार। कौन-सा भाव था उस समय उसके चेहरे पर और उसकी बड़ी-बड़ी सजल आँखों की झील जैसी गहरायी में कौन-सी पीड़ा थी। कौन-सी वेदना थी। और कौन-सी व्यथा जो समझा न जा सकी मुझसे।

स्वर्णा के दोनों हाथ पहले की ही तरह थामें उसकी स्थिर और भावशून्य आँखों में झाँकते हुए मैंने हौले से पूछा—''इसका कोई उपाय नहीं है और कोई रास्ता नहीं है? हो तो बतलाओ मुझे।''

मेरी बात सुनकर कुछ क्षण चुप रही स्वर्णा, फिर धीरे से बोली—मेरी ओर गहरी नजरों से देखते हुए वह, ''उपाय भी है और रास्ता भी है।''

''बतलाओ मुझे। मेरे योग्य जैसा जो कुछ भी होगा वह अवश्य करूँगा मैं तुम्हारे लिए।''

''पहले हाँ तो करो, फिर बतलाऊँगी मैं।'' न जाने किस भावावेश में और न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर हाँ, हाँ, हाँ तीन बार कह दिया मैंने।

उसके बाद स्वर्णा ने जो उपाय बतलाया और बतलाया जो रास्ता, उसे सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं एकबारगी। रोमांचित हो उठा मेरा सारा शरीर। मैंने कभी सोचा भी नहीं था और कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि कभी वह

महाभैरवी ऐसा भी प्रस्ताव रखेगी मेरे सामने। अब सोचता हूँ कि उस समय सिर हिलाकर 'हाँ' न कहा होता और अपनी स्वीकृति न दी होती तो आज मेरी स्थिति ऐसी न होती। स्वयं अपने लिए और अपने जीवन के लिए एक अभिशाप बन गया हूँ मैं। एक गहरा शून्य भर गया है जीवन के कण-कण में। न शरीर के प्रति मोह है और न तो संसार के प्रति किसी प्रकार का आकर्षण।

धूमावती विद्या

जहाँ एक ओर मेरा जीवन अभिशप्त हो गया और भर गया गहरा शून्य, वहीं दूसरी ओर भौतिक सत्ता में प्रवेश का मार्ग भी खोल दिया, उस महायोगिनी ने मेरे लिए, जो योग-तंत्र की बहुत बड़ी और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि समझी जाती है जो विरले ही किसी को प्राप्त होती है।

कुछ मौन साधे देखकर स्वर्णा बोली—"शायद मेरा यह रूप पसन्द नहीं तुमको?"

मैंने धीरे से सिर उठाकर देखा उस प्रौढ़ा की ओर। शायद मेरी आँखों की मूक भाषा पढ़ ली उसने।

मैंने कहना चाहा—तुम भी तो कालंजयी हो, और तुम भी तो रूप बदल लेती हो—कभी श्मशान की वृद्धा भिखारिन तो कभी तन्वंगी श्यामा और कभी कुछ... शायद मेरे मन की भाषा भी पढ़ ली उस त्रिकालदर्शिनी ने।

खिलखिला कर हँस पड़ी एकबारगी स्वर्णा। बड़ी ही विचित्र और रहस्यमयी हँसी, थमने पर बोली—"जानते हो तुम। इस नश्वर काया में पूरे एक सौ साठ वर्ष हो गये मेरी आत्मा को निवास करते हुए। मतलब यह कि मेरी आयु एक सौ साठ वर्ष है।"

थोड़ा रुककर वह आगे बोली—"मैं नागविद्या तो नहीं जानती लेकिन धूमावती विद्या अवश्य जानती हूँ मैं, जिसकी शक्ति से अपनी इच्छानुसार अपने रूप को बदल सकने का सामर्थ्य है मुझे।"

लेकिन वह रूप तो स्थायी न होगा? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में स्वर्णा ने कहा—"रूप का स्थायित्व अपने मनोबल और अपनी इच्छा-शक्ति पर निर्भर है... इस समय मेरी अवस्था कितनी लग रही है तुमको?"

"बस यही लगभग चालीस-पचास के बीच।"

"अच्छा अब बतलाना" यह कहकर पद्मासन की मुद्रा में बैठ गयी स्वर्णा और नेत्र बन्द कर श्वास को भीतर खींच लिया उसने। धनुष की तरह पूरा तन गया एकबारगी उसका सारा शरीर, हे भगवान् यह क्या? आश्चर्य से मेरी आँखें फैल गयीं। अवाक् देखता ही रह गया मैं। क्षण प्रति क्षण असाधारण रूप से उसके आकार-प्रकार और रूपरंग में परिवर्तन होने लग गया। और कुछ ही समय के अन्तराल में पैंतालिस-

पचास की वह अर्धवृद्धा, बीस वर्षीया नवयुवती के रूप में परिवर्तित हो गयी, जिसके अवर्णनीय रूप और नवयौवन से पूर्ण देवकन्या जैसे असाधारण सौन्दर्य को देखकर मेरी आँखें चुधियाँ गयीं एकबारगी। एक मानवी में अकल्पनीय, इतना अगाध सौन्दर्य भी हो सकता है ? सपने में भी सोचा नहीं जा सकता। उसके अंग-प्रत्यंग में नवयौवन की सुगन्ध भरी थी जैसे। लम्बी घनी केश-राशि सारी पीठ पर बिखरी हुई थी, पूरे शरीर पर हल्के पीले रंग की पारदर्शक रेशमी साड़ी के अलावा और कोई अन्त:वस्त्र नहीं था, और उसी झीनें और पारदर्शक आवरण के पीछे से यौवन से तरंगित सुगन्धित शरीर के अंग-प्रत्यंग बाहर झाँक रहे थे।

बड़ी ही मोहक छवि थी स्वर्णा की वह। उसका रूप और यौवन धीरे-धीरे मेरे उष्ण रक्त में फैलता जा रहा था जैसे, उसके सम्मोहन से चाहकर भी मुक्त नहीं हो पा रहा था मैं।

अपूर्व रूप और मोहक शरीर ने जैसे जादू कर दिया था मुझ पर। एकाएक बिजली चमकी ? आकाश में एक चमकीली रेखा खिंच गयी एकबारगी और उसी के साथ बारिश ने जोर पकड़ लिया। बिजली फिर कौंधी। भयानक आकाश में, एकटक देखता रहा मैं स्वर्णा की ओर। हजार प्यालियों के नशे से मदहोश उस स्वप्निल आँखों में मैंने क्या देखा, बतला नहीं सकता। उस समय उसका रूप और जगमगाने लगा था। आँखों में जैसे काजल बहने लगा। कुसुम कोमल गालों पर बिखर गये लावण्य के कण। न जाने कबतक विस्मय से अपलक मैं नवपरिणीता वधू जैसे स्वर्णा को देखता रहा और फिर न जाने कब और किस क्षण आपा खो बैठा मैं। मन और प्राण जिस उत्ताप से जलता रहा उसे शीतलता का प्रलेप अवश्य मिला उन अभिषार के क्षणों में और उन्हीं परम प्राकृतिक क्षणों में मेरे और स्वर्णा के तन-मन के साथ दोनों की आत्माओं का कब मिलन हुआ और दोनों कब एकाकार हुए और कब उसके परिणामस्वरूप उससे आकर्षित होकर बकुल की आत्मा कापालिक कालेश्वरानन्द के चंगुल से हमेशा के लिए मुक्त होकर नवीन शरीर की उपलब्धि के लिए कब स्वर्णा के गर्भ में प्रवेश किया। यह सब भला कौन जान-समझ सकता है, सिवाय नियति के।

स्वर्णा का संकल्प

स्वर्णा का अनुरोध पूरा हो चुका। सपने साकार हो चुके थे उसके। बकुल को पुन: प्राप्त कर चुकी थी वह। भले उस उपलब्धि का रूप दूसरा हो और उस उपलब्धि के बाद उसने अन्त में मुझसे कहा था—इसी रूप में बकुल ने देखा था मुझे। अब इस रूपशिखा में कोई परिवर्तन नहीं होगा। जिस रूप में अपनी प्रेयसी और प्रेमिका को देखा था और देखा था अपनी पत्नी की छवि, उसी रूप में अपनी माँ की भी छवि देखेगा वह भविष्य में। आकाश में बादल छट चुके थे, बारिश भी हो गयी थी

बन्द। भोर होने वाली थी, पूरब का नीला आकाश धीरे-धीरे सफेद होने लगा था। पक्षी चहचहाने लगे थे। अपने स्थान से अचानक स्वर्णा उठी और एक बार मेरी ओर गहरी दृष्टि से देखा और बिना कुछ बोले और बिना कुछ कहे कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर निकल गयी एक झटके से और मैं उसे जाते हुए देखता रहा।

कापालिक कालेश्वरानन्द से अपना प्रतिशोध कब लिया? अपना बदला कैसे लिया? कब लिया? और किस रूप में लिया? स्वर्णा ने, यह मैं नहीं जान पाया। इसका इतिहास अन्धकार में है मेरे लिए। हाँ, मैं इतना अवश्य बतला सकता हूँ कि एक दिन साँझ के समय एक सड़ी-गली और क्षत-विक्षत लाश जिसके मांस को मांसखोर पक्षी नोच-नोच कर खा रहे थे, गंगा की धारा में बहती जा रही थी। ध्यान से देखा मैंने। कापालिक कालेश्वरानन्द की लाश लगी वह मुझे। वातावरण में भयंकर दुर्गन्ध फैल रही थी। नाक पर कपड़ा रख कर जल्दी-जल्दी घाट की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा मैं।

पूरे चार वर्ष मैं स्वर्णा के सम्पर्क में रहा था और इस कालावधि में उस महासाधिका द्वारा जिस अलौकिक चमत्कारों और अविश्वसनीय सिद्धियों के दर्शन मुझे हुए थे, निस्सन्देह अलौकिक थे, जिनका तमोगुणी तांत्रिक साधना भूमि में अत्यन्त महत्त्व और मूल्य है।

स्वर्णा स्वयं अपने आपमें एक परमसिद्ध साधिका और एक अद्‌भुत योगिनी थी, इसमें भी सन्देह नहीं।

हृदय से निकले हुए अनेक अनुरोध और उसकी याचना की रक्षा करते हुए मैंने उसे जो सहयोग दिया था, उससे जहाँ एक दुःखी सन्तप्त और परतंत्र आत्मा सदैव के लिए स्वतन्त्र हो गयी थी, वही भयंकर तमोगुणी तांत्रिक साधना के भयानक और घनघोर जंगलों में दीर्घकाल से भटकने वाली एक असहाय, आश्रयहीन और निर्बल नारी को वास्तविक जीवन भी उपलब्ध हुआ था और उपलब्ध हुआ था मातृत्व भी।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि आज भी स्वर्णा का अस्तित्व है। अब तक तो उसकी आयु काफी हो चुकी होगी, लेकिन उसके रूप, यौवन और सौन्दर्य में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है—सब कुछ पूर्ववत् है। वही रूप, वही यौवन, वही लावण्य, वही सौन्दर्य और वही सुगठित गौरवर्णीय देहयष्टि। अम्लान पुष्प की तरह उसका अस्तित्व आज भी अपनी सुगन्ध बिखेर रही है।

हाँ, यह बतलाना तो भूल ही गया था मैं। स्वर्णा के साथ एक युवक भी रहता है। बहुत ही सुन्दर और आकर्षक युवक है वह। लम्बा कद, गौरवर्ण, सुगठित देहयष्टि, बड़े-बड़े शान्त और निर्विकार नेत्र। चौड़ा और थोड़ा उभरा हुआ मस्तक, लम्बी नासिका, रक्ताभ होठ और रक्ताभ होठों पर सदैव बिखरी रहने वाली मन्द-

मन्द मुस्कुराहट। गर्दन तक झूलती हुई घनी स्याह केश-राशि। शरीर पर कषाय वस्त्र और आयु यही लगभग बीस-बाईस वर्ष। नाम है रत्नकल्प। भला रत्नकल्प यह क्या जानता है कि जो उसकी जननी है, और जिसने उसे जन्म दिया है और जो उसकी माता है—वह कभी किसी काल में उसकी हृदयेश्वरी थी, प्रेमिका थी और थी उसकी प्रेयसी। और वह था उसी का प्रेमी और भावी पति बकुल। कैसा है नियति का चक्र और कैसा है प्रकृति का खेल। अपनी हिमालय-यात्रा-काल में स्वर्णा और रत्नकल्प से मेरी भेंट हुई थी। गौरीशंकर पर्वत की एक गुफा में दोनों निवास करते थे। दोनों को देखा तो बस देखता ही रह गया। कहीं कोई अन्तर नहीं, वही लावण्य और वही नारी-सुलभ आकर्षण। हाँ, एक नयी चीज अवश्य देखने को मिली मुझे स्वर्णा में और वह चीज थी चेहरे पर दप् दप् करता हुआ दिव्यतेज। स्वर्णकान्ति जैसी आभा फूट रही थी जैसे उसके मुख-मण्डल पर, रत्नकल्प में भी एक साधनारत परम योगी के लक्षण दिखलायी दिये मुझे। रत्नकल्प के रूप में बकुल की कथा एकाएक याद आ गयी, प्रेम में पागल होकर माँ काली के चरणों में कैसे बलि दी होगी अपनी बकुल ने? हाहाकार कर उठी होगी उसकी आत्मा उस समय। फिर कैसे एक परम दुर्धर्ष कापालिक द्वारा दी गयी यंत्रणा और यातना को सहन की होगी दीर्घकाल तक उसकी निरीह आत्मा ने? फिर याद आ गयी स्वर्णा को शुरू से अन्त तक की सारी विलक्षण कथा।

थोड़ी देर बैठा रहा गुफा में और जब उठकर चलने लगा तो स्वर्णा के संकेत पर झुक कर चरण-स्पर्श किया रत्नकल्प ने। मैंने सिर घुमाकर देखा स्वर्णा की ओर एकबार। गीली हो गयी थी उसकी आँखें। फिर बहुत दूर तक देखती रही मुझे जाते हुए वह। मेरा भी मन न जाने कैसा हो गया था उस समय। बतला नहीं सकता, इस समय स्वर्णा और रत्नकल्प हिमालय में कहाँ और किस स्थान पर हैं? यह भी नहीं बतला सकता मैं, लेकिन दोनों की स्मृति अवश्य है मेरे मस्तिष्क में, और हमेशा-हमेशा रहेगी इसमें सन्देह नहीं।

●

१०

वक्रेश्वर की भैरवी

जब मैं अपर इण्डिया एक्सप्रेस के प्रथम श्रेणी के कम्पार्टमेण्ट का गेट खोलकर रामपुर स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर उतरा तो सबेरा होने वाला था उस समय। न जाने कैसी उदासी बिखरी हुई थी स्टेशन के वातावरण में। जो चार-पाँच लोग गाड़ी से उतरे थे, वे न जाने कहाँ गायब हो गये थे उस उदासी में। कन्धे पर बैग लटकाये, हाथ में अटैची लिए जब स्टेशन के बाहर निकला तो देखा—सामने झोपड़ी जैसी एक चाय की दुकान थी। एक पन्द्रह-सोलह साल की काली-कलूटी लड़की दोनों पैर मोड़कर चाय बना रही थी दुकान में। चाय पीनी थी मुझे। एक चाय दोगी, मैंने लड़की से कहा। लड़की ने अपना झुका हुआ सिर ऊपर उठाया और एक बार मेरी ओर देखा गहरी नजरों से और फिर केतली से चाय कप में उड़ेलकर धीरे से मुझे कप थमा दिया उसने। बोली कुछ नहीं। न जाने क्यों लड़की की ओर अपलक निहारने लगा मैं चाय पीते समय। रंग अवश्य काला था लड़की का, लेकिन चेहरे पर लावण्य था और था एक विशेष प्रकार का आकर्षण भी। उसकी आँखें भी बड़ी-बड़ी थीं पर वह भी सहज न थीं, कोई रहस्य भरा था वहाँ।

चाय पीकर जब मैं पैसे देने लगा तो लड़की सिर झुकाये ही धीरे से बोली—''माँ तारा का दर्शन करने आये हैं बाबूजी?''

लड़की का स्वर बड़ा कोमल था और था स्निग्ध भी। उसका पूछना बड़ा अच्छा लगा मुझे। सिर हिलाकर मैंने कहा—''हाँ'' और फिर न जाने क्यों पूछ बैठा—''तुम्हारा नाम क्या है?'' यह सुनकर लड़की थोड़ी लजाई, फिर पहले ही की तरह कोमल और स्निग्ध स्वर में बोली—''श्यामा।'' फिर थोड़ा रुककर वह बोली—''मेरा रंग काला है न, शायद इसीलिए मेरे माँ-बाप ने मेरा नाम श्यामा रख दिया।'' फिर न जाने क्यों उदास हो गया उसका चेहरा। श्यामा नाम उसे अच्छा न लगता होगा, इसीलिए हो सकता है उदास हो गयी होगी वह—मैंने सोचा।

''श्यामा तो बहुत अच्छा और बहुत सुन्दर नाम है। माँ तारा का भी एक नाम श्यामा है—प्रसन्न होना चाहिए तुमको।''

यह सुनकर थोड़ी हँसी श्यामा। अब तक दो-तीन और आ गये थे ग्राहक, उनके लिए चाय बनाने में लग गयी। जब मैं चलने लगा तो पलट कर देखा मेरी

ओर एक बार उसने। उस क्षण उसकी बड़ी-बड़ी झील जैसी गहरी आँखों में कौन सा भाव था, समझ न सका।

रामपुर से तारापीठ के लिए एक कच्ची सड़क गयी थी। किसी प्रकार एक ताँगा वाला तैयार हुआ तारापीठ जाने के लिए। सड़क के दोनों ओर धान के खेत थे कुछ दूरतक, उसके बाद चारों ओर मैदान ही मैदान थे, उजाड़ और धूसर। फिर छोटी-छोटी झोपड़ियों का शुरू हुआ सिलसिला। उन्हीं झोपड़ियों में कुछ दुकानें भी थीं, जिनके सामने लकड़ी की बेंचें पड़ी थीं, जिन पर बैठकर लोग चाय पी रहे थे, मिठाइयाँ खा रहे थे और सिगरेट-बीड़ी पी रहे थे। मक्खियाँ सभी जगह भिनभिना रही थीं। सँकरी हो गयी थी वहाँ सड़क। कुत्तों की संख्या भी काफी थी। बीच-बीच में झाड़ियाँ और जंगली पेड़ भी थे, जिनके पास छोटे-बड़े मन्दिर भी बने थे।

शवसाधिका नागगन्धा

पूरे रास्ते सोचता रहा मैं नागगन्धा के विषय में। स्वर्णा ने बतलाया था कि पहले असम में ब्रह्मपुत्र के किसी श्मशान में रहती थी नागगन्धा, अब इस समय रहती है तारापीठ के वक्रेश्वर महाश्मशान में। फिर गूँजने लगे एक-एक शब्द स्वर्णा के मेरे मस्तिष्क में—शवसाधिका है नागगन्धा, शवसाधना के द्वारा कई अमोघ और दुर्धर्ष तान्त्रिक सिद्धियाँ उपलब्ध हैं उस महाभैरवी को, जिनकी सहायता से असम्भव से असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ है वह। तन्त्र की चौंसठ विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ विद्या है धूमावती विद्या और वह सर्वश्रेष्ठ महाविद्या भी उस साधिका को सिद्ध है और जिसकी सहायता से इच्छानुसार कोई भी रूप तत्काल धारण कर सकती है नागगन्धा। यहाँ तक कि किसी भी पशु, पक्षी के रूप में भी अपने आपको परिवर्तित कर सकने में समर्थ है वह धूमावती विद्या के बल पर। एकाएक तन्द्रा भंग हुई मेरी। सामने एक मोड़ था और उस मोड़ के बाद एक नदी थी जो उस समय सूखी हुई थी, नाम था दामोदर नदी, जिस पर एक पुल था और जिसके पार था माँ तारा का क्षेत्र। वशिष्ठ के समय का था वह महाश्मशान जो काफी दूरतक फैला हुआ था और जिसके वातावरण में यमलोक की सारी खिन्नता-भरी उदासी बिखरी हुई थी चारों ओर वातावरण में। और उस उदासी को भंग करता हुआ बोल हरि....हरि बोल और राम राम सत्य है—का शब्द गूँज उठता था कभी-कभी। न जाने कैसा हो गया मन। चारों ओर जल रही थीं चितायें और उनमें से उठने वाली लाल-पीली लपटें हाहाकार कर रही थीं वायुमण्डल में। मैंने देखा उस महाश्मशान के क्षेत्र में कई पंचमुण्डी आसन थे, कई नवमुण्डी आसन थे, जिन पर बैठकर साधकगण साधना कर रहे थे ध्यानस्थ होकर तान्त्रिक सिद्धि-लाभ के लिए। मेरी आँखें उन लोगों में खोज रही थीं नागगन्धा को। अन्त में निराश होना पड़ा। दिन ढलने लगा था। कुछ चितायें बुझकर राख में बदल चुकी थीं, कुछ जलने की तैयारी कर रही थीं और कुछ धू-धू कर जल रही थीं। उन

transmogrification

चिताओं के बीच से निकलता हुआ मन्दिर की ओर बढ़ने लगा मैं। श्मशान में इधर-उधर घूमती हुई कई रक्त वस्त्रधारिणी भैरवियों को भी देखा मैंने। सोचा, उन अर्धनग्न और मुक्तकेशी भैरवियों में कोई नागगन्धा भी हो सकती है, लेकिन नहीं, नागगन्धा का जो व्यक्तित्व मेरे मानसपटल पर अंकित था वह कुछ और ही था। थोड़ा आगे बढ़ने पर चितासाधना करते हुए चार-पाँच साधक दिखलायी दिए। वे हड़िया में पके हुए मांस खा रहे थे, मानव-खोपड़ी में पी रहे थे मदिरा। माँ के मन्दिर से हटकर कई स्थानों पर पशुबलि भी हो रही थी। चारों ओर खून ही खून फैल रहा था। सबकुछ देखकर मन न जाने कैसा होने लगा मेरा। तमोगुणी तन्त्रसाधना का क्या यही स्वरूप है? यदि यही स्वरूप है तो इससे आन्तरिक लाभ क्या है? कौन-सी आध्यात्मिक उपलब्धि होती है साधक की आत्मा को? मन ही मन सोचने लगा मैं? कहाँ ठहरूँगा और रात कहाँ व्यतीत करूँगा, इसका निर्णय करना था मुझे। साँझ घिर आयी थी वक्रेश्वर के महाश्मशान में। चित्त जैसे घबड़ाने लगा था मेरा न जाने क्यों? माँ के मन्दिर के निकट एक पक्की दालान थी जो धर्मशाला कहलाती थी। उसे देखकर मेरे मन को कुछ ढाँढ़स मिला। दालान साफ- सुथरी थी। पीछे की ओर छोटे-छोटे बहुत से कमरे थे। यात्रियों का आवागमन कम था इसलिए एक कमरा मिल गया मुझे आसानी से, मन को शान्ति मिली। झोला और अटैची रखकर और कपड़े बदलकर मन्दिर की ओर चला गया मैं। मन्दिर तक पहुँचने के लिए बहुत-सी विशाल सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं मुझे। उसके बाद बड़ा-सा पक्का चबूतरा था और था नाटमन्दिर। उसके सामने था माँ का मन्दिर। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर माँ की मूर्ति के सामने जा खड़ा हुआ मैं। और भी दर्शक थे पर भीड़ नहीं थी। भवतारिणी की यही वह अद्भुत मूर्ति थी जिसके सम्बन्ध में और जिसके विषय में बहुत कुछ सुना था और पढ़ा था बहुत कुछ। सब कुछ अलौकिक-सा लगा था मुझे उस समय। सोने से मढ़ी हुई मुक्तकेशी और पाषाण-आसन पर विराजमान माँ महामाया तारा का मुख बड़ा ही अद्भुत और भव्य लगा मुझे। लगा जैसे मेरी ओर देखकर हँस रही हैं माँ। और उस हँसी में एक अद्भुत स्नेह झर रहा है गल-गलकर।

तारिणी तरला तन्वी तरुण वल्लरी।
तीव्ररूपा तनुश्यामा तनक्षीण पयोधरा॥

एक भक्त हाथ जोड़े सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में स्तुति कर रहा था माँ की, जिसे सुनकर अच्छा लगा मुझे।

तुरीया तरला तीव्र गमनानल वाहिनी।
उग्रतारा जयाचण्डी श्रीमदे जटाशिवा॥

स्वर के साथ देवी का यह वर्णन अवश्य नहीं मिल रहा था मगर मन के अन्दर यह नीलवाहिनी का रूप ही आकार ले रहा था। धीरे-धीरे फर्श पर बैठ गया मैं। दोनों हाथ जोड़कर माँ के मुख को अपलक निहारने लगा मैं एकाग्र चित्त होकर।

तरुणा शाम्भवी छिन्नमाला च भद्रतारिणी।
उग्रा उग्रप्रभा नीलाकृष्णा नीलसरस्वती॥

दोनों हाथ जोड़े पाषाणवत् बैठा था मैं। आँसू झर-झर कर गिर रहे थे गालों पर आँखों से निकल कर। मुझे अपनी ही सुधि नहीं थी उस समय।

अट्टहास्या करालास्या वरास्या दिति पूजिता।
सगुणा सगुणा राध्या हर इन्द्रदेव पूजिता॥

शब्द अन्तर के किस गुहा-गह्वर में प्रवेश कर रहे थे, सो मैं नहीं जानता था। खाली एक नीरव आलोड़न का अनुभव कर रहा था मैं।

पद्ममाला च पद्माक्षी कामाख्या गिरि नन्दनी।
दक्षिणा चैव दक्षा च दक्षता दक्षिणे रता॥

कुछ बोल नहीं पा रहा था मैं, पर मेरे मन से एक आकुल प्रार्थना उठ रही थी—माँ, मैं पूजा नहीं जानता, प्रार्थना नहीं जानता, स्तुति भी नहीं जानता, तुम्हारी महिमा से भी अपरिचित हूँ मैं। वक्रेश्वर क्यों आया हूँ मैं, सो तुम जानती हो। तुम्हारी क्या इच्छा है वो भी तुम्हीं जानती हो। मैं कौन-सा उद्देश्य लेकर आपके चरणों में अर्पित हुआ हूँ? इससे भी तुम भलीभाँति परिचित हो।

वज्रपुष्प प्रिया रक्त प्रिया कुसुम भूषिता।
माहेश्वरी महादेव प्रिया पद्म विभूषिता॥

कितनी देर तक इसी तरह बैठा रहा मैं, नहीं जानता। फिर मैं धीरे-धीरे उठ कर खड़ा हुआ। दर्शन करने आये लोग घूम-घूम कर मुझे देख रहे थे वे मानों समझ रहे थे कि माँ के पास कोई गहरी वेदना, कोई गहरी पीड़ा और कोई गहरी व्यथा समर्पण करने ये सज्जन आये हैं और उस वेदना को, पीड़ा को और व्यथा को वे जानने-समझने की चेष्टा कर रहे थे सम्भवतः। नाटमन्दिर के पास वाली सीढ़ी से उतरने के लिए पैर बढ़ाया मैंने। अचानक पैर थम गये अपने स्थान पर, जड़वत् हो गये जैसे। देखा सामने सीढ़ी चढ़ते हुए ऊपर आ रही थी श्यामा, चाय बनाने वाली श्यामा। उसे देखकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। यहाँ कैसे? उसके हाथ में जवापुष्प के फूल थे। सोचा, दर्शन करने आयी होगी माँ का। मुझे देखकर मुस्करायी वह, बोली कुछ नहीं, ऊपर चढ़ती आयी और मन्दिर के भीतर चली गयी फिर। वहाँ काफी देर तक खड़ा रहा और श्यामा की प्रतीक्षा करता रहा, लेकिन व्यर्थ। लगा मानो मन्दिर के भीतर ही समा गयी हो वह। मन नहीं माना। स्वयं मन्दिर के भीतर गया और फिर चारों तरफ खोजा उसे,, लेकिन कहीं नहीं दिखलायी दी वह षोडशी बाला। रहस्यमय लग रहा था सब कुछ। रात अधिक हो गयी थी। कमरे में आकर तख्त पर लेट गया मैं। बार-बार श्यामा का चेहरा उभर आता था मानस-पटल पर। इस प्रकार गायब हो जाने का रहस्य, मेरी समझ में नहीं आ रहा था। न जाने कब और किस समय सो

गया मैं। अचानक पायल की मधुर आवाज से नींद खुल गयी मेरी। उठकर बैठ गया मैं। फिर तेजी से पलट कर देखा—एक मझोले कद की साँवली युवती की पीठ मेरी ओर थी। उसके श्यामल काया पर गेरुवे रंग की रेशमी साड़ी थी। उसके लम्बे घने बाल खुलकर कमर तक बिखरे हुए थे। एकाएक पलट कर युवती ने मेरी ओर देखा। उसका चेहरा देखकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। श्यामा से बिल्कुल मिलता-जुलता लगा मुझे उस अज्ञात युवती का चेहरा। उसके चेहरे पर विशेष प्रकार की चमक थी। झील जैसी गहरी आँखों में एक अजीब-सा सम्मोहन था। साड़ी के आवरण को भेदकर बाहर निकल आने के लिए व्याकुल उरोज युगल। मुँह में पान दबाये हुए होठों पर एक मुस्कराहट बिखर गयी। मेरी आँखों में उतरती हुई वह मुस्कराहट रग-रग में बिखरती जा रही थी जैसे और उसी के साथ एक अजीब-सी बेचैनी पकड़ती जा रही थी मेरे मस्तिष्क को। तनावग्रस्त हो गया था मेरा सारा शरीर। विचित्र स्थिति हो गयी मेरे तन-मन की। सोचा, उस सम्मोहक निमन्त्रण को स्वीकार कर लूँ दोनों हाथ फैलाकर। पान रँगे होठों की मुस्कराहट शायद मेरे उद्देश्य को भाँप गयी थी। कुछ ऐसा लगा कि सम्मोहन से भरी झिलमिल करती आँखें सहम-सी गयी हैं, पर उसमें अस्वीकृति का कोई संकेत नहीं उभरा था। और भय की छाया भी नहीं फैली थी। उन्नत उरोज, सम्मोहक आँखें और रसभरी मुस्कराहट मेरी उत्तेजना को बढ़ा रही थीं। वासना और भावना का एक अपूर्व-सा अन्तर्द्वन्द्व छिड़ गया था मेरे मानस में।

वह रहस्यमयी युवती

अब वह रहस्यमयी युवती मेरे बिल्कुल करीब सट कर खड़ी हो गयी। उस समय उसके निश्चल चेहरे पर प्रेम के सागर छलक रहे थे और उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों से झर रहा था अमृत निर्झर। अपनी मूक भाषा में क्या कहना चाहती थी उसकी आँखें? मेरी समझ में नहीं आया उस समय। कुछ देर खड़ी रहने के बाद धीरे-धीरे चलकर कमरे के बाहर निकल गयी वह रहस्यमयी युवती और उसी के साथ मेरा मोह भी भंग हो गया एकबारगी।

मन्दिर में माँ की आरती-पूजा हो रही थी भोर की। शंख, घंटे की ध्वनि गूँज रही थी वातावरण में। मैंने तुरन्त स्नान किया, कपड़े बदले और माँ का दर्शन करने के लिए मन्दिर की ओर चल पड़ा मैं। बड़ी अद्‌भुत छवि थी माँ महामाया की उस समय। न जाने कब तक दोनों हाथ जोड़े ध्यानस्थ खड़ा रहा मैं माँ की मूर्ति के सामने।

भैरवी

और जब वापस लौटा तो देखा—नाटमन्दिर के सामने मोटे खम्भे की टेक लगाकर कम्बल के आसन पर एक भैरवी बैठी थी। भैरवी का चेहरा देखकर

सकपका-सा गया मैं। श्यामा और रात वाली रहस्यमयी युवती के चेहरे से मिलता-जुलता-सा लगा मुझे उस भैरवी का चेहरा। हे भगवान्! कौन सी लीला है यह?

कस कर लपेटी हुई थी लाल रंग की साड़ी। शरीर का ऊपरी भाग एक प्रकार से अनावृत्त था। बड़े-बड़े पुष्ट स्तन स्पष्ट दिखलायी दे रहे थे। दोनों बाँहों पर, माथे पर और गले में भस्म की पतली रेखा। माथे पर गोल सिन्दूर का टीका। बड़ी-बड़ी फाँक जैसी आँखें कुछ-कुछ रक्ताभ। गले में मोटी-सी रुद्राक्ष की माला, जिसमें उलझी हुई थी स्फटिक और लाल मूँगे की माला भी। दोनों हाथों की कलाइयों में शंख के वलय। शरीर का रंग काला, मुँह का नक्शा सुन्दर और आकर्षक, मगर खूब स्थिर और कठोर। मेरुदण्ड को सीधा किये तन कर बैठी हुई थी वह भैरवी। पास ही एक लम्बा-सा चमचमाता हुआ त्रिशूल रखा था। सुडौल और तगड़ा शरीर था उसका। बैठने पर भी लम्बी लग रही थी वह। उम्र पैतीस से चालीस तक की होगी, मगर मुँह की ओर देखकर उम्र की बात याद नहीं आती थी।

भैरवी की बड़ी-बड़ी काली आँखों की अपलक दृष्टि के एक अव्यर्थ आघात से ठिठक कर खड़ा हो गया मैं।

उस दृष्टि को देखते ही मुझे लगा कि वह काफी देर से मेरी ओर स्थिर होकर लगी हुई थी। अब आँखें मिलते ही मानो हठात् मेरा सारा शरीर बेबस और पंगु हो गया था। ऐसी बेधने वाली तीक्ष्ण और स्थिर दृष्टि मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। मुझे लगा कि इन आँखों के द्वारा यह नारी किसी भी व्यक्ति को पास खींच ले सकती है और उसके बाद बड़े इत्मीनान से पास रखा त्रिशूल उसके कलेजे में उतार दे सकती है।

विमूढ़ होकर ताकता रहा मैं। दूसरी ओर मैं अपना मुँह घुमा न सका और न तो हिल-डुल ही सका।

खूब धीरे-धीरे भैरवी की पलकें एक बार गिरीं। पुकार कर या इशारे से नहीं बल्कि पलकें गिराकर ही उसने मुझे मानो अपने निकट बुलाया। एक बार पलकें गिरतीं देखकर मेरा भी होश जैसे लौट आया। तुरन्त सम्हल गया मैं। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर कुछ सीढ़ियाँ उतर कर चबूतरे पर से सिंहद्वार की ओर तेजी से चल पड़ा मैं।

सिंहद्वार के बाहर आकर लम्बी साँस ली मैंने। कलेजा अब भी धड़क रहा था मेरा। वहाँ खड़े-खड़े मैंने घूमकर एक बार नाट मन्दिर की ओर देखा और देखते ही फिर एक बार वही झटका लगा मुझे। भैरवी स्थिर दृष्टि से मेरी ओर ही अपलक देख रही थी। उस दृष्टि में क्रोध का आभास था। मैं जहाँ भी जाऊँ, जितनी भी दूर जाऊँ मानो वह इच्छा करे तो मेरा बहुत कुछ सर्वनाश कर सकती है। मैं क्षणभर भी नहीं रुका। झटपट सीढ़ियाँ उतर कर नीचे श्मशान की ओर जाने वाले मार्ग पर आ गया। शान्ति की लम्बी साँस ली मैंने। ऐसा अनुभव जीवन में कभी नहीं हुआ था

मुझे। इधर-उधर टहलता रहा मैं, जिससे जो भय की छाया थी वह हट गयी। मगर सन्ध्या के समय मन्दिर के सामने आकर खड़े होते ही फिर वही बेचैनी होने लगी। उसे मन के जोर से दूर हटाकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा मैं। मन्दिर में तो जाना ही पड़ेगा। सिंहद्वार पार कर फिर ठिठका मैं। फिर निश्चिन्त हो गया। नाटमन्दिर की वह जगह खाली थी। मन्दिर में आरती हो रही थी। माँ एलोकेशी के सोने-से दमकते मुखमण्डल की ओर अपलक निहारता रहा मैं दोनों हाथ जोड़ कर। लगा जैसे माँ हँस रही हैं और उस हँसी में एक अद्‌भुत स्नेह गल-गल कर झर रहा था। मैं मन ही मन माँ से कह रहा था—माँ, तुम अन्तर्यामी हो। जिस उद्देश्य को लेकर वक्रेश्वर आया हूँ उसे पूरी कर दो माँ, महामाया। तन्त्र पथ अति कंटकाकीर्ण है उस पथ पर चलना सभी के बस की बात नहीं है। मैं तो चल पड़ा इस पथ पर खोज की दृष्टि से। मुझे अपनी खोज में सफलता चाहिए माँ एलोकेशी लेकिन तुम्हारी अनुकम्पा के बिना यह सम्भव नहीं दीखता मुझे।

अब मन काफी शान्त था। चित्त में भी स्थिरता थी। नाट मन्दिर में भैरवी को देख करके भी परवाह नहीं की मैंने। एक बार घूमकर भी उसकी ओर नहीं देखा। दर्शन और प्रार्थना समाप्त करके चला आया।

दूसरे दिन अपराह्न में श्मशान में घूमने की इच्छा न जाने क्यों जागृत हो गयी। देखा, हर वृक्ष के नीचे नर-कंकालों की हड्डियाँ और खोपड़ियाँ थोड़ी-बहुत पड़ी हुई थीं। शवों के गद्दे-तकिये भी काफी संख्या में थे। बगल में हाहाकार करती हुई दो-तीन चिताएँ जल रही थीं, जिनके निकट दो भैरवियाँ आसन लगाकर चितासाधना कर रही थीं। दोनों की आयु बहुत ही कम थी, बस यही बीस-पच्चीस के लगभग। दोनों के चेहरे पर तेज था। कुछ दूर पर एक तान्त्रिक बैठा कुल्हड़ में मदिरापान कर रहा था और बीच-बीच में उन दोनों भैरवियों को तीक्ष्ण दृष्टि से देख भी लेता था वह। उसकी आयु भी कम थी। शरीर से मजबूत और स्वस्थ था वह तान्त्रिक। समझते देर न लगी, तन्मय होकर चिता-साधना करने वाली उन दोनों भैरवियों का निश्चय ही गुरु था वह इसमें सन्देह नहीं।

चिता-साधना

कभी किसी से सुना था कि चिता में जलने वाले शव की मृतात्माएँ अपनी चिता के आस-पास मँडराती रहती हैं और जब तक उनका शरीर जलकर राख में बदल नहीं जाता तब-तक वहाँ रहती हैं वे और चिता-साधक अपने मन्त्र शक्ति तथा साथ ही अन्य तान्त्रिक क्रियाओं की सहायता से मृतात्माओं को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करते हैं। तन्त्र में इसी को चिता-साधना कहते हैं। चिता-साधक उन वशीभूत मृतात्माओं से अनेक प्रकार का सहयोग लेते हैं।

काफी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा भैरवी की चिता-साधना की तान्त्रिक क्रियाओं को देखता रहा मैं। कभी-कभी सिर घुमाकर उनके तान्त्रिक गुरु की ओर भी देख लेता था जो अभी भी बराबर मदिरा-पान करता जा रहा था और साथ ही साथ खाता जा रहा था मांस का टुकड़ा भी। ऐसे महाश्मशान की कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। मेरा दम घुटने लगा, वहाँ से हटकर सहसा सहस्रमुण्डी आसन के पक्के चबूतरे जाकर बैठ गया मैं। मन को शान्ति मिली। सहस्रमुण्डी के पाषाण-आसन पर बैठकर कितने योगी और कितने तन्त्र साधक साधना कर चुके हैं यह बात तारानाथ भट्टाचार्य ने बतलायी थी मुझे। यह भी बतलाया था कि सभी लोग वहाँ नहीं बैठ सकते। आसन पर बैठने के लिए मन का एकाग्र और स्थिर होना आवश्यक है।

दिन-रात के सोलह घंटे जो सज्जन उस आसन पर व्यतीत करते थे और बीच-बीच में तारा-तारा कहकर हुंकार कर उठते थे, उनका नाम था भोलाराम बाबा। भोलाराम बाबा तन्त्र मार्ग के साधक थे। गहरे लाल रंग का चोंगा बराबर पहने रहते थे। सारे मुँह पर काली-काली दाढ़ी-मूँछ भरी हुई थी। वैसे मिलनसार आदमी थे। नया आदमी देखते ही हर प्रकार की खोज-खबर लेते थे। मेरे साथ भी बातचीत जमाने की चेष्टा की थी उन्होंने पर चेष्टा व्यर्थ होने के बाद तारा माँ के चिन्तन में लग गये।

सहस्रमुण्डी पर थोड़ी देर बैठने के बाद मन्दिर की ओर चल पड़ा मैं। मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ते ही सिंहद्वार के पास ही हाथ में लम्बा भयानक त्रिशूल लिए भैरवी के सामने एकाएक पड़ गया मैं, लम्बा शक्तिशाली डील-डौल था। गम्भीरता के बावजूद काला चेहरा सुन्दर ही लगा। पहले दिन की तरह दृष्टि उतनी अन्तर्भेदी नहीं थी, फिर भी अपलक और कठोर अवश्य थी।

एक तरफ हटकर निकलने के लिए उद्यत हुआ मैं। एकाएक कण्ठ स्वर सुनकर खड़ा हो गया ठिठक कर। इस कण्ठ स्वर में भी न जाने कैसी मोहनीशक्ति थी।

''किसी की खोज में आये हो या केवल माँ का दर्शन करने ?''

प्रश्न सुनकर मूक हो गया मैं एकबारगी। बोला न गया मुझसे कुछ।

मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही थी भैरवी। उसकी दृष्टि पैनी होती जा रही थी। एकाएक स्वाभाविक होकर आगे बढ़ गया मैं। कलेजे में कँपकँपी हो रही थी उस समय। कैसी थी वह कँपकँपी, समझ में नहीं आया।

सीढ़ियाँ उतरकर जाते ही दाहिनी ओर सहस्रमुण्डी का पाषाण-आसान था। चारों ओर घना अन्धकार बिखरा हुआ था। वातावरण स्तब्ध था, हवा की सरसराहट भी चौका देती थी। चबूतरे पर चढ़कर आसन लगाकर बैठ गया मैं, किसी प्रकार का भय नहीं लगा मुझे और भी तीन-चार साधक बैठे हुए थे ध्यानस्थ। भोलाराम बाबा भी थे। मगर स्पष्ट किसी का चेहरा नहीं दीख रहा था।

स्थिर होकर कुछ देर बैठने के बाद ही मेरा मन शान्त होकर किसी अतल गहरायी में डूब गया। वह एक विचित्र अनुभूति थी, एक अद्‌भुत शान्ति की अनुभूति। कौन गया उठकर और कौन आया फिर इसका ध्यान नहीं रहा मुझे। समर्पण के एक नये प्रवाह में विभोर था मैं।

मुझे पता नहीं कितना समय व्यतीत हो गया। दो-तीन घण्टे भी हो सकते हैं या इससे भी अधिक। अपने बिल्कुल समीप किसी के जोर से साँस लेने की आवाज सुनकर धीरे से आँखें खोलकर मैंने देखा, साथ ही मेरा रोम-रोम सिहर उठा एकबारगी। केवल गजभर की दूरी पर दो जलती हुई आँखें मेरे चेहरे की ओर स्थिर होकर देख रही थीं। क्या वे मशाल की तरह जलती हुई किसी बाघिन की आँखें थीं। काँप उठा मैं। नहीं, ये किसी नारी की आँखें थीं। कब वह आयी और बैठ गयी थी, इसका पता तक नहीं चला मुझे। उसका शरीर पत्थर की तरह निश्चल था, केवल आँखें अंगारे की तरह जल रही थीं। सहस्रमुण्डी पर तब एक भी आदमी नहीं था, भोलाराम बाबा भी नहीं थे।

मेरा सारा शरीर निस्पन्द, अवश हो गया एकबारगी।

तारा....माँ.... तारा।

आसन के बगल में ही एक पेड़ के नीचे से भोलाराम बाबा का गम्भीर स्वर तैरता हुआ आया और उसी क्षण मानो मुझे होश आया, शरीर की नस-नस में एक बिजली-सी दौड़ गयी मानो। उठकर सीधा खड़ा हो गया मैं।

और उसके बाद अंधेरे में ही रास्ते की ओर चल पड़ा मैं।

दूसरे दिन।

दोपहर का समय था।

श्मशान की ओर न जाकर दूर नदी के किनारे जा रहा था मैं। नागगन्धा के विषय में ही सोच रहा था उस समय। नदी की दूसरी ओर काफी दूर-दूर तक खेत थे आलू के और ईख के। मजदूर खेतों में काम कर रहे थे, पूरा इलाका सुनसान और निर्जन था। तीन दिन आये हो गया था मुझे, नागगन्धा से भेंट न हो सकी, हाँ, माँ का अपूर्व दर्शन-लाभ अवश्य हुआ मुझे। इससे मन को काफी शान्ति मिली थी इसमें सन्देह नहीं। मगर यहाँ भी एक बड़ा दैवयोग प्रतीक्षा कर रहा था मेरा। क्या इसकी कल्पना की थी मैंने। सामने ही एक पीपल के पेड़ की छाया में दोनों पैर फैलाये भैरवी बैठी थी। पास ही चमचमाता त्रिशूल जमीन में गड़कर खड़ा था जिसके ऊपर एक मानव-खोपड़ी टँगी थी। त्रिशूल के नीचे एक काले रंग की कुतिया बैठी भैरवी की ओर ताक रही थी। सामने तीन मिट्टी के पात्र भी रखे थे। मुझे पहले ही देख लिया था भैरवी ने। आँख से आँख मिलते ही वह तनकर पल्थी मारकर बैठ गयी, और अपलक देखने लगी मेरी ओर। ठिठक कर खड़ा हो गया अपने स्थान पर मैं।

सनसनाने लगा था मेरा पूरा शरीर। कई भैरवियों से मेरा सामना हुआ था लेकिन ऐसी भैरवी से कभी नहीं, क्षणभर के लिए मुझे लगा कि दौड़कर भाग खड़े हों। मगर भैरवी की आँखों ने ही मानो रोक दिया मुझे, भैरवी ने मेरी ओर कुछ देर ताककर उँगली उठाकर अपने पास बुलाया मुझे। जाकर खड़ा हो गया मैं उसके सामने।

"बैठो!" शान्त और गम्भीर थी भैरवी। उसके चितवन में गहरापन था पर तीक्ष्णता नहीं थी। तीन हाथ की दूरी पर बैठ गया मैं। मिट्टी का पात्र दिखाते हुए भैरवी ने पूछा—"पियोगे?"

"क्या है इसमें?"

"कारणवारी यानी मदिरा।"

मैंने सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

रमणी के होठों के बीच हलकी व्यंग की रेखा आयी या नहीं, पता नहीं चला। उसने हाथ बढ़ाकर मदिरा से भरा एक पात्र उठा लिया। उसके तरल पदार्थ का कुछ अंश बिना मुँह लगाये ऊपर से ही गले में डाल लिया, घूँट निगलने के साथ ही उसके सारे शरीर में मानो एक झंकार-सी उठी। आँख और मुँह सिकोड़कर उसने वह झंकार शान्त होने दी। रमणी के अंगों का सुप्त यौवन मानो एक बार हिल-डुल कर स्थिर हो गया। एक लम्बी साँस ली उसने। फिर उसने सामने न जाने कब से बैठी कुतिया की ओर देखा जो उस समय ऊँघ रही थी। मेरा ध्यान उधर नहीं था उस समय लेकिन जब मैंने कुतिया के स्थान पर एक सुन्दर तरुणी को देखा तो आश्चर्यचकित रह गया एकबारगी। कुतिया कहाँ गयी? अभी-अभी तो यही बैठी ऊँघ रही थी। यह युवती किधर से और कब आ गयी? सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह युवती न काली थी न गोरी थी और न तो साँवले रंग की ही थी। उसके यौवन से भरपूर सुगठित शरीर का रंग हल्का नीला था, बाल काफी घने और काफी लम्बे थे। जिसका रंग काला नहीं बल्कि भूरा था। उसकी आँखें भी बड़ी-बड़ी और भूरी थीं।

अलौकिक अनुभूति

मैं कुछ और सोचता-समझता कि तभी भैरवी की आवाज कानों में पड़ी, उधर क्या देखता है? वह मेरी संगिनी है, मुझसे मिलने के लिए ऊपर से आयी है। तू बता, कल रात आसन छोड़ इस तरह भाग क्यों गया?

कुतिया को युवती के रूप में और वह भी विलक्षण रूप में परिवर्तित देखकर घबड़ा-सा गया था। थोड़ा भयभीत भी हो गया था मैं, किसी प्रकार अपने आपको संभाला और फिर उल्टा प्रश्न किया—"तुम मुझे कल से इस तरह भय क्यों दिखा रही हो?"

भैरवी के मुख पर अतिसूक्ष्म हँसी की रेखा दिखायी दी जो किसी भी पुरुष को अपने जादू में बाँधने में सक्षम थी तुम डर क्यों रहे हो?

"जिस उद्देश्य से यहाँ आया था वह पूरा नहीं हो पा रहा है"—मैंने धीरे से कहा। "क्या उद्देश्य है?"

कोई उत्तर नहीं दिया मैंने। मौन रहा।

उत्तर न पाकर भैरवी की लाल-लाल आँखों ने एक बार मेरे मुँह पर चक्कर काटा। बोली—"क्या विघ्न हो रहा है?"

मैंने इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया। भैरवी ने फिर पात्र उठाया, तरल पदार्थ गले के नीचे उतारा। शरीर में फिर उठी झंकार। फिर बोली—"तुम्हारी आयु कितनी है?"

मैंने इस बार उत्तर दिया—"तीस के आस-पास है।" मेरी बात सुनकर, उसकी जाँच के लिए भैरवी ने मानो मुझको एक बार नीचे से ऊपर तक देखा।

"मेरी पैतालिस के ऊपर है। अब तेरा भय कुछ कम हुआ।" वह बोली।

उसकी आँखों में कौतुक की छटा थी। मुझे मानो विश्वास नहीं हुआ। विश्वास करना और भी कठिन था क्योंकि दूसरा पात्र एक ही बार में गले से उतर कर खाली हो गया और भैरवी के शरीर में फिर एक बार झंकार उठी। उसकी आयु जो भी हो, मेरा भय कम होने के बजाय बढ़ा ही।

"कहाँ रहते हो?" दूसरी तरह का प्रश्न था और स्वर भी दूसरी तरह का।

"वाराणसी।"

"घर में कौन-कौन है?"

"माता-पिता हैं, दो भाई हैं, कोई बहन नहीं है। और मैं हूँ बस।"

"शादी हुई है?"

"नहीं। शादी नहीं की मैंने।"

"क्यों?"

"इसका उत्तर मेरे पास नहीं है।"

न जाने कैसे एक अनुभूति के आवेग में निष्कपट होकर सब कुछ बतला दिया मैंने।

भैरवी ने स्थिर होकर सब सुना। उसके बाद भी वह नीरव निश्चल रही लेकिन दृष्टि मानो बहुत दूर कहीं चली गयी थी। उसी स्थिति में अपना हाथ आगे बढ़ाकर तीसरा पात्र भी उठा लिया और उसमें भरा हुआ सारा तरल पदार्थ गले के नीचे उतार लिया। मगर इस बार पहले की तरह झंकार नहीं उठी। मैं स्तब्ध-सा बैठा रहा भैरवी के सामने। मेरे पीछे वह रहस्यमयी युवती भी बैठी हुई थी।

भैरवी ने खाली पात्र नीचे रखा। हाथ की उलटी तरफ से मुँह पोछते-पोछते उसने मेरी ओर देखा। क्षणभर में ही दृष्टि बदल गयी थी। दोनों आँखों से मानो आग निकल रही थी। फिर एकाएक गरज उठी भैरवी—"दूर हो जा। दूर हो जाओ यहाँ से। दूर हो जा।"

घबरा कर उठ आया मैं। एकाएक क्या हो गया भैरवी को? समझ में नहीं आया। मेरा बाह्यज्ञान मानो लुप्त हो गया था। रास्ते में चलते-चलते होश आया मुझे। थोड़ा आगे बढ़ने पर भोलाराम बाबा दिखलायी दिये। एक घने पेड़ के नीचे खड़े थे वह। पास आने पर हँसते हुए बोले—"भैरवी तो दिन में ही कारण-पान कर रही है। तुम्हारी उससे क्या बातें हो रही थीं?"

अभी भी मेरा मस्तिष्क झनझना रहा था। कोई उत्तर न दे सका मैं।

मेरे साथ भोलाराम बाबा चलते-चलते फिर बोले—"कल रात तुम्हारे पास उसे बैठा देखकर एक बात मन में आयी, बुरा न मानना—उस उन्मत्त भैरवी से कुछ बचकर के रहने की चेष्टा करियेगा। बड़ी प्रबल शक्ति है उसके पास। किसी भी युवा पुरुष को देख लेती है तो उसे छोड़ती नहीं फिर। अपने मायाजाल में फँसाकर उसका पूरा पौरुष अपने में खींच लेती है वह। समझ गये न बन्धु।"

इस बार मैंने पूछा—"वह कहाँ से आयी है?" "पचास साल से बराबर इसी वक्रेश्वर में देख रहा हूँ मैं" भोलाराम बाबा बोले—"कोई अन्तर नहीं आया अब तक इतने लम्बे समय के बीच उसके रूप-रंग और शरीर में। जैसी आयी थी वैसी ही है अभी भी।" थोड़ा रुककर वह आगे बोले—"सुना है पहले असम में ब्रह्मपुत्र के किसी श्मशान में रहती थी वह। उसका गुरु कोई तिब्बती लामा तांत्रिक था। उसी की भैरवी थी वह। अपने लामा तांत्रिक गुरु से उसने कई प्रकार की दुर्लभ तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, ऐसा सुना है मैंने।"

यह सब सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। कहीं यह भैरवी ही नागगन्धा तो नहीं है जिसकी खोज में इतनी दूर से चलकर आया हूँ मैं। "आपको ये सब कैसे मालूम हुआ?"

"अरे भाई! तांत्रिक हूँ न। इसलिए यहाँ आने वाले तंत्र-साधकों और भैरवियों की भी खोज-खबर रखनी पड़ती है। न रखूँ तो आपस में मेलजोल कैसे बढ़ेगा?" भोलाराम बाबा थोड़ा सहिष्णु होकर बोले, "तब तो आपको भैरवी का नाम भी मालूम होगा।"

"क्यों नहीं।"

"क्या नाम है उसका?"

"नागगन्धा।"

भोलाराम बाबा के मुँह से नागगन्धा शब्द सुनते ही मेरे सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी एकबारगी। झनझना उठा पूरा शरीर। कुछ क्षण के लिए शून्य अवसन्न हो गया जैसे पूरा मस्तिष्क। विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह रमणी शवसाधिका नागगन्धा होगी। लेकिन विश्वास करना पड़ा मुझे। निश्चय ही तिब्बत के महातांत्रिक लामा मिलरेप की शिष्या नागगन्धा ही थी वह भैरवी इसमें सन्देह नहीं।

भोलाराम बाबा का साथ छोड़ कर पलटा और लगभग दौड़ता हुआ उस पेड़ के पास पहुँचा जहाँ अभी भी भैरवी पूर्ववत् बैठी मदिरा-पान कर रही थी और बीच-बीच में आकाश की ओर भी देख लेती थी। वह रहस्यमयी नीलवर्णा युवती धीरे-धीरे बोल रही थी कुछ।

मुझे देखकर एक बार जोर से अट्टहास करती हुई हँसी। नशे के कारण तमतमा रहा था चेहरा उसका उस समय। हँसी थमने पर बोली—"खोज पूरी हो गयी न। बोल क्या चाहता है तू नागगन्धा से?" कुछ बोला न गया मुझसे, कुछ कहा भी न गया मुझसे। भैरवी की ओर देखता रहा मैं मुँह बाये। थोड़ा थमकर भैरवी फिर बोलने लगी—"स्वर्णा ने हिमसमाधि ले ली और उसका पुत्र रत्नकल्प अपनी माँ की समाधि के निकट रहकर योग-साधना कर रहा है। वाराणसी में अवश्य तुमसे मिलने आयेगा एक न एक दिन।"

मौन सुनता रहा मैं। नीलवर्णा सुन्दरी मेरी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी, उस समय। पहली बार मेरे मन में उठा, कौन है यह रमणी? निश्चय ही इस जगत् की नहीं है यह। फिर....।

साँझ घिरने लगी थी। सूर्य कभी का अस्त हो गया था। खेतों के बाद जंगल था। वहाँ हुआँ-हुआँ करने लगे थे सियारों के झुण्ड और उनके साथ नदी के पार कुत्ते भी भौंकने लगे थे। धीरे-धीरे भयप्रद होता जा रहा था चारों तरफ का वातावरण। मेरी खोज पूरी हो गयी थी। नागगन्धा भी भैरवी के रूप में मिल गयी थी। स्वर्णा का भी समाचार अनायास मिल गया था। रत्नकल्प वाराणसी में कभी मिलने आयेगा मुझसे—इसकी भी जानकारी हो गयी थी। सोचने लगा—अब?.... क्या वापस लौट जाऊँ। हाँ, यही ठीक रहेगा। भोर में माँ की आरती का दर्शन कर निकल जाऊँगा इस महाश्मशान की भूमि के बाहर।

क्या दूसरे दिन माँ दर्शन कर सका? क्या माँ की आरती देख सका और क्या वक्रेश्वर के बाहर जा सका घर वापस लौटने के लिए?

नहीं! अभी तो मुझे नागगन्धा की तांत्रिक सिद्धि का चमत्कार जो देखना था?

नागगन्धा का दिव्य रूप

देखते ही देखते घोर तिमिराच्छन्न वातावरण सुनहले प्रकाश से भर गया और उसी के साथ बदल गयी वहाँ की भौगोलिक स्थिति भी। न नदी थी, न खेत थे, न जंगल था और न था वह वृक्ष जिसके तले भैरवी बैठी थी। अब तो और ही कुछ था। चारों ओर हिमाच्छादित उत्तुंग हिमशिखर थे जो सुनहले प्रकाश से चमक रहे थे और उन हिमपर्वतों से घिरी हुई एक विस्तृत घाटी थी जिसकी भूमि चाँदी की तरह चमक रही थी। वातावरण में शान्ति का साम्राज्य था। घाटी के एक ओर ऊँचे

और घने वृक्षों की कतारें थीं जिनकी छाया में तपस्वी और साधकों की मण्डलियाँ बैठी हुई थीं।

एक प्रकार से मेरी भौतिक स्मृति तिरोहित हो गयी थी मस्तिष्क से। एक नये जंगल का और नये वातावरण का बोध हो रहा था मुझे उस समय। अपने आपमें प्रफुल्ल, प्रसन्न और आत्मलीन था मैं, और तभी सामने दिखलायी दी नागगन्धा। वह उस नीलवर्णा रहस्यमयी युवती के साथ मेरी ओर आ रही थी। उस समय नागगन्धा का वह रूप नहीं था जिसे वक्रेश्वर में देखा था मैंने। किसी अभिषारिका नायिका की तरह लग रही थी वह। दमकता हुआ चेहरा, बड़े-बड़े नेत्रों में साधना की अपूर्व चमक, और भव्य आकर्षक व्यक्तित्व, गौरवर्ण शरीर पर रेशमी गैरिक वस्त्र। बाल खुले हुए नहीं थे। कसकर बँधे हुए थे और जूड़े में ताजे फूलों की बेड़ियाँ थीं, गले में स्फटिक और मोतियों की मालायें झूल रहीं थीं। मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। उस रूपांगना का अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखकर मातृत्व की भावना जागृत हो उठी मेरे हृदय में। लगा जैसे साक्षात् महामाया जगदम्बा खड़ी हों मेरे सम्मुख। मन विगलित हो उठा एकबारगी, मेरी ओर देखकर धीरे-धीरे मुस्करा रही थी नागगन्धा। मैंने देखा—उस मुस्कराहट में मधुरता थी, कोमलता थी और था स्नेह। मेरे समीप आकर मन्द स्वर में बोली वह महासाधिका—"कैसा लगा यह स्थान?" पहले तो मुझसे कुछ कहा ही न गया। किसी प्रकार अपने आपको सम्भाला और फिर अटक-अटक बोला—"सुन्दर और मोहक। ऐसा रमणीक स्थान विश्व में कहीं नहीं होगा। जिसे वास्तव में आत्मशक्ति कहते हैं उसका अनुभव कर रही है इस समय मेरी आत्मा।"

योगचेतना और भोगचेतना

मेरी बात सुनकर पूर्ववत् मन्द और स्निग्ध स्वर में बोली नागगन्धा—"यह सूक्ष्म जगत् का अत्यन्त सूक्ष्मतम भाग है। इसके ऊपर मनोमय जगत् है। इस स्थान पर प्राण और मन की शक्ति अत्यन्त प्रबल है और साथ ही काल का प्रवाह भी मन्दतर है यहाँ। यही सब कारण है कि यहाँ का जीवन काफी लम्बा है। इतना लम्बा कि उसकी अवधि में एक साधारण मनुष्य दस बार जन्म ले सकता है और दस बार मर भी सकता है। प्राणशक्ति और मन:शक्ति से भी मनुष्य की प्राणशक्ति और मन:शक्ति बीसगुनी अधिक है। मनुष्य के पास इच्छा तो है लेकिन उसमें शक्ति नहीं है, इसीलिए किसी भी इच्छा को पूर्ण करने के लिए मनुष्य मन:शक्ति के साथ-साथ कर्मशक्ति की सहायता लेता है। लेकिन यहाँ कर्म नहीं है। कर्म का पूर्ण अभाव है। इसलिए कोई भी इच्छा बिना कर्म किए स्वत: पूरी हो जाती है क्योंकि उसमें अपनी स्वशक्ति होती है।" थोड़ा रुककर नागगन्धा आगे बोली—"तुमको ज्ञात होना चाहिए कि कर्म के अभाव के कारण यहाँ न जन्म है और न तो मृत्यु ही है। इन दोनों का भी यहाँ अभाव है। उन दोनों के स्थान पर देहान्तरण अथवा लोकान्तरण

है। इन दोनों से आपका तात्पर्य क्या है?'' मेरे यह पूछने पर नागगन्धा ने कहा—''देहान्तरण का अर्थ है एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करना और लोकान्तरण का अर्थ है—एक लोक से दूसरे लोक में प्रवेश करना। इन दोनों अवस्थाओं में पहले शरीर से और पहले लोक से आत्मा का सम्बन्ध चेतना के स्तर पर बराबर बना रहता है। यदि स्थायी रूप से देहान्तरण करना होता है, आत्मा पहले शरीर को सदैव के लिए त्याग देती है। इसी प्रकार स्थायी रूप से लोकान्तरण करना होता है तो पहले लोक को भी सदैव के लिए त्याग देती है वह, लेकिन ये दोनों कार्य भी होते हैं चेतना के स्तर पर ही।''

''चेतना से आपका क्या तात्पर्य है?'' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में वह साधिका बोली—''एकमात्र चेतना ही ऐसी वस्तु है जो एक योगी और एक भोगी में अन्तर पैदा कर देती है। योगी का प्रत्येक कार्य चैतन्ययुक्त होता है। वह प्रत्येक कार्य चाहे वह छोटा या बड़ा, चेतन की अवस्था में करता है। जब वह शरीर छोड़ता है तो उस समय भी चैतन्य रहता है वह। जन्म भी लेता है तो उस अवस्था में भी चैतन्य रहता है वह। दोनों अवस्थाओं में उसकी चेतना बनी रहती है। दोनों अवस्थाओं का अनुभव करता है वह। उसी प्रकार जैसे हम किसी वस्तु का त्याग करते समय या उसे अपनाते समय उसका बोध रखते हैं।

''इसके ठीक विपरीत भोगी होता है। कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे चैतन्ययुक्त अवस्था में करता हो वह। प्रायः उसके प्रत्येक कार्य में चेतना का अभाव रहता है। वह जो भी कार्य करता है, अपनी बुद्धि और अपने मन के आश्रय से करता है और यही कारण है कि जीवन के क्षेत्र में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाता है वह। बुद्धितत्व और मनःतत्व के ऊपर चेतनतत्व है जो आत्मा की अपनी स्वतन्त्र ऊर्जा है और है स्वतन्त्र शक्ति। और उसी की साधना योग-साधना है और है तन्त्रसाधना।''

''क्या भोगी में चेतना का अभाव रहता है?'' ''नहीं, अभाव नहीं रहता। वह रहती है, लेकिन जीवनीशक्ति के रूप में रहती है और एकमात्र यही कारण है कि भोगी मरते समय भी और जन्म लेते समय भी गहन मूर्च्छा की अवस्था में रहता है। उसे इसका बोध ही नहीं रहता कि कब वह मर गया, कब उसका शरीर उससे छूट गया। कब उसने दूसरा जन्म तो लिया और प्राप्त कर लिया कब दूसरा शरीर।''

सोचने लगा मैं। कितना गम्भीर और कितना गूढ़ तथ्य है आध्यात्म का, यह जिससे एक योगी या साधक ही भलीभाँति परिचित हो सकता है, साधारण व्यक्ति नहीं।

थोड़ा रुककर बगल में खड़ी नीलवर्णा युवती की ओर संकेत करती हुई नागगन्धा बोली—''यह एक यक्षकन्या है। यक्षजाति के लोगों के शरीर के रंग नीले होते हैं। कभी-कभी मुझसे मिलने के लिए यह आ जाती है वक्रेश्वर। कभी किसी

रूप में तो कभी किसी रूप में। मनुष्यों की तरह यक्षलोक, किन्नरलोक अथवा गन्धर्वलोक में किसी का कोई नाम नहीं होता। सभी बेनाम होते हैं। अपनी ओर से मैंने इस यक्षिणी को नाम दिया है ज्योतिर्मयी। पूरे सौ वर्षों से मेरे साथ इसका सम्बन्ध है।''

मैंने सिर घुमाकर ज्योतिर्मयी की ओर देखा—वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी उस समय। उसकी मुस्कराहट में कोई मूक आमन्त्रण था जिसे समझ न सका मैं, उस समय।

धीरे-धीरे हम तीनों आगे बढ़ने लगे और अन्त में एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक काफी लम्बा-चौड़ा सरोवर था, जिसमें झर-झर कर झरने का स्वच्छ और निर्मल जल गिर रहा था। बड़ा ही मोहक, अति सुन्दर और अति आकर्षक था वहाँ का वातावरण। उस विशाल सरोवर के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे और विभिन्न रंगों के फूलों की क्यारियाँ थीं, जिनसे खिले हुए फूलों की सुगन्ध चारों ओर वायुमण्डल में फैल रही थी।

सरोवर से हटकर कुछ दूर पर वृक्षों के झुरमुटों के बीच साधकों की कई मण्डलियाँ साधनारत दिखलायी दीं मुझे। मण्डलियों के साधक अपने-अपने स्थान पर पाषाणवत् बैठे हुए थे। लगा जैसे किसी भी वस्तु से उनका कोई लगाव नहीं है। और अपने आपमें आत्मलीन हैं। कुछ साधक और साधिकायें इधर-उधर घूम रही थीं। कोई किसी से कोई बात नहीं कर रहा था। सभी मौन थे। सभी स्थिर थे अपने आपमें और सभी थे अपने आपमें लीन। सरोवर के किनारे स्थित एक लम्बी-चौड़ी पाषाणवेदी की ओर संकेत करती हुई नागगन्धा बोली—''यह वेदी मेरी साधना का पीठ स्थान है।''

''पीठ स्थान है। समझा नहीं''—मैंने जिज्ञासु भाव से कहा।

नागगन्धा का अन्तरंग कथा-प्रसंग

मेरी बात सुनकर एक दीर्घ श्वाँस ली नागगन्धा ने फिर मन्द किन्तु गम्भीर स्वर में कहना शुरू किया—''यह एक लम्बी और साथ ही अत्यन्त रहस्यमयी कथा है और ऐसी कथा है जिस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह रहस्यमयी कथा मेरे सैकड़ों वर्षों के दीर्घकालीन जीवन का एक लम्बा इतिहास है, जिसको पहली बार तुमको ही सुनाने जा रही हूँ मैं। तुमको नहीं सुनाऊँगी तो भला किसको सुनाऊँगी। तुम्ही तो योग्य पात्र हो मेरी कथा को सुनने के लिए।''

यह सुनकर मुँह बाये देखने लगा नागगन्धा की ओर और साथ ही सोचने भी लगा कि कौन-सी ऐसी कथा है और कौन-सा ऐसा इतिहास है जो अपने आपमें रहस्यमय है और है तिमिराच्छन्न। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह लगी कि अपनी कथा सुनाने के लिए मेरा ही चयन क्यों किया उस भैरवी ने?

धीरे-धीरे कहने लगी नागगन्धा—"राजस्थान के अरावली पर्वतों की गोद में बसे मानगढ़ की राजनर्तकी थी मैं और मेरा नाम था चन्द्रप्रभा।"

"ऐं! क्या कहा आपने—राजनर्तकी?" आश्चर्यभरे स्वर में बोला मैं।

"हाँ! राजनर्तकी! चन्द्रप्रभा नाम के अनुरूप शरद पूर्णिमा की रूपहली चाँदनी जैसा मोहक रूप, रंग और सौन्दर्य। चाँद जैसा ही मुखड़ा। पूरे राजस्थान में चर्चा होती थी उस समय मेरे रूप, रंग, सौन्दर्य और नृत्य की। पूरा मानगढ़ मेरा सम्मान करता था। मेरी एक झलक पाने के लिए लोग तरसते रहते थे। महाराज मानगढ़ की अत्यन्त प्रिय नर्तकी थी मैं। अरावली पहाड़ की तराई में मेरे लिए एक आलीशान हवेली बनवाई थी महाराज ने। दर्जनों दास-दासियों के साथ उस भव्य और विशाल हवेली में रहती थी मैं। आज भी हवेली है वह, लेकिन पूरी तरह खण्डहर में बदल चुकी है। कोई यह नहीं सोच सकता है कि कभी किसी समय राजनर्तकी चन्द्रप्रभा के घुँघरुओं की झंकार से गूँजता रहा होगा हवेली का रंगीन वातावरण।"

इतना कहकर जैसे अतीत में खो गयी वह महासाधिका। थोड़ी देर बाद आगे शुरू की अपनी कथा उसने—"नर्तकी अवश्य थी मैं, लेकिन वासना की दृष्टि से मेरे शरीर का अभी तक किसी ने स्पर्श नहीं किया था, यहाँ तक कि महाराज ने भी नहीं। उनका तो कहना था कि चन्द्रप्रभा कला और सौन्दर्य की साक्षात् देवी है और ऐसी देवी की पूजा करनी चाहिए।"

योगी बालानाथ

मानगढ़ किले के बाहर एक अति सुरम्य और प्राकृतिक छटा से भरपूर रमणीक स्थान था और उस मनोरम स्थान में एक कुटिया थी और उस कुटिया में एक परमतपस्वी महात्मा निवास करते थे, जिनका नाम था बालानाथ। सिद्ध पुरुष थे बालानाथ। उनकी कुटिया के सामने से शेर भी सिर झुकाकर जाता था। कभी-कभी बाबा के दर्शन के लिए चली जाती थी मैं उनकी कुटिया में। बोलते बहुत ही कम थे बाबा। घण्टों मौन साधे बाबा की कुटिया में बैठी रहती थी मैं। विचित्र-सी शान्ति का अनुभव होता था बाबा के निकट मेरी आत्मा को।

बाबा सन्त थे, महात्मा थे, योगी थे और परमसिद्ध भी, इसमें सन्देह नहीं। छोटी-सी मिट्टी की बनी कुटिया थी बाबा की, ऊपर घास-फूस का छाजन था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि किसी भी ऋतु का प्रभाव कुटिया पर नहीं पड़ता था। घोर वर्षा में भी एक बूँद पानी नहीं टपकता था कुटिया में। बड़े से बड़े आँधी-तूफान में भी कुटिया का मामूली छप्पड़ इधर-उधर नहीं होता था। निश्चल रहता था वह।

बाबा को नित्यक्रिया करते हुए किसी ने नहीं देखा था आज तक। बाबा क्या खाते थे, क्या पीते थे और कब सोते-जागते थे, यह भी कोई नहीं जानता था। उनकी कुटिया में पानी से भरी एक गगरी और दो-चार मिट्टी के ही बर्तन थे। इनके

अलावा और कुछ नहीं। बाबा के शरीर पर एक चादर और एक लंगोटी ही रहती थी बारहो मास। अपने आपमें बाबा स्वयं एक रहस्यमय व्यक्ति थे इसमें सन्देह नहीं।

बरसात का मौसम था। तीन-चार दिनों से लगातार झर-झर कर घोर वर्षा हो रही थी अरावली की सुनसान घाटी में। जन्माष्टमी का पर्व था। उस रात दरबार में राधाकृष्ण की लीला से सम्बन्धित एक नृत्य प्रस्तुत करना था मुझे। जब कभी ऐसा अवसर आता था तो सबसे पहले बाबा का आशीर्वाद लेने अवश्य जाती थी उनकी कुटिया में। पालकी पर बैठकर उस दिन भी गयी मैं। अपनी कुटिया में बैठे हुए थे बाबा निर्विकार भाव से। मैंने उनका चरणस्पर्श किया। धीरे-धीरे बाबा के नेत्र खुले और उन्होंने स्थिरभाव से मेरी ओर देखा और फिर पूछा—"क्या आज राजसभा में नृत्य और गायन है तुम्हारा?"

हाँ! महाराज! उसी के लिए आशीर्वाद लेने आयी हूँ मैं, मैंने कहा विनम्र स्वर में।

बहुत देर तक मौन रहे बाबा और फिर गम्भीर स्वर में बोले—"आज तुम्हारे नृत्य का प्रदर्शन देखने के लिए और देखने के लिए तुम्हारी गायन कला को एक ऐसा व्यक्ति भी उपस्थित होगा नृत्यशाला में जो बहुत बड़ा तांत्रिक है और है कालीविद्या का बहुत ऊँचा साधक। उसकी तांत्रिक शक्ति अति प्रबल है। जो चाहता है उसे तत्काल पूरा कर लेता है वह। वास्तव में मानवेतर शक्ति से सम्पन्न है वह महातांत्रिक, लेकिन उसकी तमोगुणी तंत्रसाधना में एक भयंकर त्रुटि रह गयी है और उसी त्रुटि को दूर करने के लिए वह अपनी योग्य भैरवी की खोज में भटकता हुआ आया है मानगढ़।"

तांत्रिक सेवड़ासिंघा

"उस तांत्रिक का नाम तो आप जानते ही होंगे"—थोड़ा व्यग्र और अशान्त होकर पूछा मैंने बाबा से। "हाँ! जानता हूँ! उसका नाम है सेवड़ासिंघा! यदि उसकी दृष्टि तुम पर पड़ गयी तो बेटी! तुम्हें फिर छोड़ेगा नहीं वह तांत्रिक। अपनी भैरवी बनाकर ही रहेगा वह।"

यह सुनकर भीतर ही भीतर काँप-सी गयी मैं एकबारगी। सोचने लगी मन-ही मन—क्या करेगा वह मुझे अपनी भैरवी बनाकर? सच बात तो यह थी कि भैरवी का क्या अर्थ होता है इससे परिचित नहीं थी मैं उस समय।

रात में महफिल लगी। महाराज और महारानी सोने के सिंहासन पर बैठे हुए थे। सभासद और अन्य दर्शकगण भी अपने-अपने स्थानों पर बैठे हुए थे। गुलाबजल, केवड़ाजल के अलावा, बेला, चमेली, जूही के फूलों की मिली-जुली सुगन्ध से भरा हुआ था नृत्यशाला का मोहक वातावरण। अनवरत घोर वर्षा हो रही थी उस समय। रह-रहकर चमक उठती थी बिजली और उसी के साथ गरज उठते

थे सावन-भादो के मेघ भी। सभी की नजरें मुझ पर, मेरे रूप पर और मेरे सौन्दर्य पर लगी हुई थीं और मेरी नजर खोज रही थी, महातांत्रिक सेवड़ासिंघा को उस भरी नृत्यसभा में। दरबार में उपस्थित सभी जन मेरे परिचित थे। कोई नया व्यक्ति वहाँ नहीं लगा मुझे। मन में शंका उठी। बाबा की बात असत्य कभी नहीं हो सकती। मेरी नजर अवश्य धोखा खा रही है इसमें सन्देह नहीं।

महाराज के इशारे पर कार्यक्रम शुरू हुआ। तानपूरे मिलाये गये। पखावज सँवारी गयी। जब मेरे मुँह से आवाज निकली तो मंत्रमुग्ध हो गया पूरा दरबार। फिर तो मेरे कण्ठ से निकले राग मेघमल्हार के स्वर उस सुगन्धित वातावरण में गूँज उठे। मेरा स्निग्ध कण्ठ और मँजी हुई आवाज महफिल में जैसे टँग गयी। राग मेघमल्हार के बाद महाराज को प्रणाम कर एक बन्दिश छेड़ दी—

कान्हा ने मोको डगर चलत दीन्ही गारी
मैं परधर की नार बिरानी,
मोको डगर चलत दीन्ही गारी...

रागपूरिया धनश्री की बन्दिश में गोपीकृष्ण का वह गीत दरबार पर हल्के कोहरे की भाँति छा गया एकबारगी। और जब मेरा गायन समाप्त हुआ तो लगा, जैसे किसी का चलाया हुआ सम्मोहन का जाल चट-चट कर टूट गया हो।... और उसी समय सभा के बीच से एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति अपने स्थान से उठा और तनकर खड़ा हो गया। सभी उपस्थित लोगों की दृष्टि उसकी ओर घूम गयी एक साथ। मैं भी ठगी-सी देखने लगी उस अपरिचित को। बड़ा ही सजीला और बाँका जवान था वह व्यक्ति। लम्बा कद, गोरा रंग, गठीली देह, चौड़ी छाती, चौड़ा मस्तक, कन्धे तक झूलते हुए काले घुँघराले बाल, ऊपर की उठी हुई घनी काली मूँछें, दोनों हाथों की गोरी-गोरी उँगलियों में कीमती रत्नों की अँगूठियाँ और गले में पुखराज, पन्ना, नीलम, मोती और स्फटिक की झूलती हुई मालायें।

उस व्यक्ति ने झुक कर प्रणाम किया दोनों हाथ जोड़कर महाराज को और फिर मन्द मृदु किन्तु थोड़े कठोर स्वर में कहा—"महाराज! मेरा नाम सेवड़ासिंघा है। तंत्र-मंत्र की जितनी भी विद्यायें हैं उनमें निपुण हूँ और इसके अलावा संगीतकला का भी ज्ञाता हूँ मैं। पूरे देश का भ्रमण करते हुए अन्त में आया हूँ आपके राज्य में और मेरी इच्छा है कि थोड़ा अवसर मुझे भी देने की कृपा करें सेवा करने की।"

"आप कहना क्या चाहते हैं—स्पष्ट करिये"—महाराज ने राजोचित गम्भीर स्वर में पूछा?

"राजनर्तकी चन्द्रप्रभा से गायन-युद्ध।"

सभा में भेष बदलकर महातांत्रिक सेवड़ासिंघा उपस्थित होगा और अन्त में मुझसे गायन-युद्ध करने की आज्ञा माँगेगा महाराज से इसकी कल्पना भी नहीं की थी सपने में भी मैंने। स्वयं मैं स्तब्ध थी और पूरी सभा भी।

अनजाने में उस महातांत्रिक के विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित तो हो ही गयी थी मैं। और जब मैंने यह सुना कि गायन-युद्ध मुझसे करना चाहता है वह तो सिर उठाकर देखा मैंने उसकी ओर एक बार, परन्तु पहले से ही देख रहा था वह मुझे।

उफ्! कैसी थी उसकी नशीली आँखें! लगा जैसे हजार प्यालियाँ पी रखी हों उसने। शेर की आँखों का पीलापन लिए हुए चमक थी उसमें। झील जैसी गहरी, स्थिर और निर्विकार आँखों में एक अजीब सम्मोहन भरा था, जो किसी को भी अपनी ओर सम्मोहित कर सकने में समर्थ था।

गायन के लिए राजाज्ञा

गायन-युद्ध के लिए राजाज्ञा मिल गयी सेवड़ासिंघा को। महाराज बोले—"कौन-सा राग छेड़ोगे तांत्रिक?" सेवड़ासिंघा जरा-सा झुककर विनम्र स्वर में बोला, "यह समय तो तोड़ी का है महाराज! मैं हनुमानी तोड़ी सुनाऊँगा, जिसे गुणीजन अंजनीतोड़ी भी कहते हैं।"

तानपूरे मिला लिये गये। और उस महातंत्रसाधक ने हनुमानजी का ध्यान करते हुए पहले गुनगुनाया—

वन्दे सिन्दूर वर्णामं लोहिताम्बर भूषितम्।
रक्तांगं राग शोभाठ्यं शोण पुच्छं कपीश्वरम्...

फिर उस महातांत्रिक ने एक ध्रुपद आरम्भ किया—

प्रथम मान ओंकार देवन पति महादेव
ज्ञान मान नारद वेद मान ब्रह्मा...

सेवड़ासिंघा और राजनर्तकी चन्द्रप्रभा के गायन ने सभा को स्तम्भित कर दिया एकबारगी। आधा घण्टे के बाद महातांत्रिक ने ध्रुपद को प्रबन्ध बना डाला। प्रबन्ध के अन्तरे अलग-अलग ताल में बद्ध होते हैं। एक तरह से जैसे रागमाला में भिन्न-भिन्न राग पिरो दिये जाते हैं—उसी प्रकार प्रबन्ध, देखा जाय तो तालमाला होती है। सेवड़ासिंघा कभी दीपचन्दी ताल पर उतरता तो कभी चाचर पर। कभी झुमरे पर तो कभी झप पर। तांत्रिक के क्लिष्ट गायन के आगे राजनर्तकी चन्द्रप्रभा बहक कर गलत मात्रा लगाने लगी, जिससे वह बेताला हो गया और बेसुरा भी। उसने तानपूरा रखकर प्रणाम किया और पीछे हट गयी वह। पर सुरताल में मग्न वह महासाधक तल्लीन होकर गाता ही रहा। और जब गायन समाप्त हुआ तो चारों ओर सभा में तालियाँ बजने लगीं और उसकी जय-जयकार हुई। महाराज ने सेवड़ासिंघा की प्रशंसा करते हुए कहा—"वाह आप तो इन्द्र की सभा के तुम्बरू है।" महाराज

के बगल में बैठी हुई महारानी भी काफी प्रभावित हो चुकी थीं सेवड़ासिंघा के व्यक्तित्व से और काफी आकर्षित भी हो चुकी थीं उसकी गायन-वादन कला से।

राजनर्तकी चन्द्रप्रभा की माँग

"मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ सेवड़ासिंघा। तुम्हारी जो इच्छा हो वह माँग सकते हो तुम मुझसे", राजोचित गर्व के साथ बोले महाराज। यह सुनकर कुछ क्षण मौन रहा सेवड़ासिंघा, फिर सिर घुमाकर पूरी सभा की ओर देखा और अन्त में मुझ पर अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए धीर-गम्भीर स्वर में उसने कहा—"मुझे आपकी राजनर्तकी चन्द्रप्रभा चाहिए महाराज। यदि आप देना ही चाहते हैं तो चन्द्रप्रभा को दे दीजिये मुझे।"

यह सुनकर पूरी सभा स्तब्ध हो गयी। लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। अवाक् और स्तब्ध हो गये महाराज भी, इसकी कल्पना नहीं की होगी शायद उन्होंने। घोर निस्तब्धता छा गयी वातावरण में एकबारगी।

थोड़ी देर बाद उस निस्तब्धता को भंग करती हुई महाराज की आवाज गूँजी। उन्होंने कहा—"मेरे राज्य का अनमोल रत्न है चन्द्रप्रभा, एक कलाकार के रूप में सम्मान करता हूँ मैं इस नृत्यांगना का, वह केवल राजनर्तकी ही नहीं बल्कि मेरे राज-परिवार का एक विशिष्ट अंग भी है। वचन दे चुका हूँ मैं तुमको, इसलिए स्वीकार है तुम्हारी माँग। ले जा सकते हो तुम इस अनमोल रत्न को अपने साथ।" गला भर आया था महाराज का अन्तिम वाक्य के साथ।

अचानक आकाश के सीने को चीरती हुई बिजली कड़की और उसी के साथ बादल भी गरजे उस समय, वर्षा की गति तेज हो गयी।

महाराज का आदेश सुनकर खड़ी हो गयी मैं और उनको प्रणाम किया मैंने और गम्भीर स्वर में कहा—"राजन! पहली बार पैरों में घुँघरू बाँधते समय मैंने शपथ ली थी कि भविष्य में कभी किसी से यदि मैं अपनी संगीतकला में और गायनकला में पराजित हो गयी तो पैरों से हमेशा के लिए घुँघरू उतारकर संन्यासिनी का जीवन व्यतीत करूँगी। मैं पराजित हो चुकी हूँ महाराज, पूरी तरह पराजित। अब मैं संन्यास लूँगी, इसके लिए आज्ञा दें महाराज।"

चन्द्रप्रभा का संन्यास

उस समय न जाने क्यों इतनी उत्तेजित थी कि महाराज की आज्ञा की बिना प्रतीक्षा किये शीघ्रता से सभागार के बाहर निकली और घोर वर्षा में भीगती हुई, जल्दी-जल्दी चलकर बाबा बालानाथ की कुटिया पर पहुँची मैं उस अराजकता-भरी रात में। मेरी आत्मा की पवित्रता, शुद्धता और सत्यता से परिचित थे बाबा। अपना लिया उन्होंने अपनी शिष्या के रूप में, दूसरे ही दिन संयोगवश गुरु पूर्णिमा थी।

बाबा ने विधिवत् संन्यास-दीक्षा दी फिर दी गुरु मन्त्र दीक्षा। और मेरा नाम रखा नागगन्धा। अब मैं चन्द्रप्रभा से संन्यासिनी नागगन्धा हो गयी थी। मेरे शरीर पर गैरिक वस्त्र था और पैरों में थी खड़ाऊ। उसी समय मुझे ले चले योग तंत्र पर बाबा। शीघ्र ही सहजसमाधि में लीन रहने लगी मैं।

इतना कहकर मौन हो गयी नागगन्धा। ऐसा लगा मानो गहरायी में डूबकर कुछ सोच रही हो वह। "फिर क्या हुआ?" धीरे से पूछा मैंने।

मेरा प्रश्न सुनकर उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा और कहा—"होगा क्या? जो होना था वही हुआ।"

"क्या हुआ?"

"मानगढ़ का नाश। एक दिन में खण्डहर में बदल गया पूरा मानगढ़। आज भी अरावली पर्वत की गोद में खण्डहर के रूप में परिवर्तित होकर सिसकियाँ ले रहा है वह, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं है उसकी दर्द-भरी सिसकियों को।"

"कैसे हुआ यह सब?" व्यग्र और उत्तेजित होकर प्रश्न किया मैंने।

"जब देखा कि मैं उसको मिलने वाली नहीं हूँ तो उस तांत्रिक की दृष्टि महारानी रत्नावली की ओर घूम गयी। महारानी भी कम सुन्दर और कम रूपवती नहीं थीं। सुन्दर और रूपवती के साथ-साथ बुद्धिमान और पतिव्रता भी थीं वह।"

क्या महारानी तंत्रविद्या में निपुण थीं

थोड़ा रुककर आगे बतलाने लगी नागगन्धा—"महारानी रत्नावली की तंत्रविद्या में न केवल रुचि थी बल्कि वह इस विद्या में पारंगत भी थीं। उनकी इसी रूचि के कारण मानगढ़ में तांत्रिकों, जादूगरों, कालीविद्या के ज्ञाताओं, ज्योतिषियों और पराविद्या के विद्वानों का आना-जाना था। ऐसे लोगों का महारानी हृदय से स्वागत करती थीं। महाराज भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे, वह भी ऐसे लोगों को खूब महत्त्व देते थे।"

सेवड़ासिंघा तांत्रिक तो था ही इसके अलावा गायनकला में भी निपुण था, इसलिए महाराज और महारानी दोनों सम्मान और आदर करते थे उसका। परिणाम यह हुआ कि प्राय: वह नित्य आने-जाने लगा महल में और राजसभा में भी। कोई रोक-टोक नहीं थी उसके लिए।

सेवड़ासिंघा पूरी तरह मुग्ध हो गया था महारानी रत्नावली के रूप, लावण्य, सौन्दर्य और यौवन पर। उनकी एक झलक पाने के लिए सदैव व्याकुल रहने लगा वह। महारानी को अपनी भैरवी बनाने के लिए किसी भी अमोघ तंत्रविद्या का प्रयोग कर सकता था वह। एक दिन न जाने कैसे महल के उस भाग में पहुँच गया जो महारानी का व्यक्तिगत कक्ष था, और महाराज भी आज्ञा लेकर प्रवेश करते थे उस कक्ष में।

उस समय महारानी का श्रृंगार कर रही थीं उनकी दासियाँ। सेवड़ासिंघा को अपने कक्ष में देखकर एकबारगी चौंक पड़ीं महारानी। आश्चर्य हुआ उनको, लेकिन बोलीं कुछ नहीं। श्रृंगार के समय उनका रूप, यौवन और लावण्य और अधिक निखर आया था। चेहरा भी अपूर्व तेज से दमक रहा था उनका।

रानी का सम्मोहक रूप

महारानी का वह श्रृंगारिक रूप देखकर सम्मोहित हो उठा वह तांत्रिक। विक्षिप्त हो उठा वह जैसे। वहाँ रुका न गया उससे। तुरन्त कक्ष के बाहर निकल आया वह। उसके मनोभाव को समझते देर न लगी महारानी रत्नावली को। वह चाहतीं तो फटकार सकती थीं, झिड़क सकती थीं और मानगढ़ से निकाल भी सकती थीं उसे, लेकिन ऐसा उन्होंने किया नहीं, क्यों? इसका उत्तर स्वयं उन्हीं के पास था। महाराज ने सेवड़ासिंघा से प्रभावित होकर सारी सुख-सुविधायें प्रदान की थीं उसको। किसी चीज का अभाव न था उस तांत्रिक को। रहने के लिए सुन्दर और भव्य महल था। सेवा के लिए दर्जनों दास-दासियाँ थीं। बहुमूल्य रत्नों का भण्डार था। क्या नहीं था उसके पास। जो नहीं था वह थी मन की शान्ति। बिल्कुल अशान्त, विक्षिप्त और अस्थिर हो चुका था वह महातांत्रिक। हर समय उसके मन-प्राणों पर छायी रहती थी महारानी रत्नावली की मनमोहक छवि। मन ही मन उसने निर्णय कर लिया था कि हमेशा-हमेशा के लिए अपनी अमोघ तांत्रिक विद्या के बल पर महारानी को अपने अधिकार में कर लेगा और अपनी भैरवी बनाकर के ही छोड़ेगा उसे।

रानी को प्रभावित करने के लिए रंगमहल में सेवड़ासिंघा ने तंत्रविद्या की तमाम कलाएँ दिखायीं। रानी रत्नावली आसन पर बैठीं आम दर्शकों की तरह उसकी कलाएँ देख-देख मुस्कराती रहीं। सेवड़ासिंघा को अशर्फी का तोड़ा देकर विदा किया उन्होंने। चलते समय सेवड़ासिंघा ने प्रसाद देना चाहा महारानी को, लेकिन महारानी ने अस्वीकार करते हुए कहा कि स्त्रियों को तांत्रिक का दिया हुआ प्रसाद नहीं खाना चाहिए। यह उनके गुरु की आज्ञा है।

सेवड़ासिंघा को महारानी की यह बात काफी बुरी लगी। अपमान समझा उसने अपना, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप अपने महल में लौट आया। सेवड़ासिंघा जानता था कि रानी रत्नावली तंत्रविद्या में सिद्धहस्त हैं। तंत्रसाधना की पूर्ण ज्ञाता हैं। उन पर उसकी तंत्रविद्या का असर तभी हो सकता है जब उसकी दी हुई कोई वस्तु मंत्रपूत कर उनके शरीर का स्पर्श कराया जाय। जबकि यह उसके लिए सरल नहीं था। काफी सोच-समझ के बाद इसका भी रास्ता निकाला सेवड़ासिंघा ने, उसे पता चला था कि महारानी हर सोमवार को शिवजी का व्रत रखती हैं और पूजा-अर्चना के लिए सोमेश्वर मन्दिर जाती हैं। उसने धन का लालच देकर सोमेश्वर मन्दिर के पुजारी को अपनी ओर मिलाने की कोशिश की

लेकिन पुजारी ने उसके मंत्रपूत प्रसाद को धोखे से महारानी को खिलाने से इनकार कर दिया। पुजारी का रुख देखकर उसने पुजारी पर वशीकरण विद्या का प्रयोग कर दिया। प्रयोग सफल रहा। पुजारी पूरी तरह से उसके वश में आ गया। वह हर वो काम करने के लिए तैयार हो गया जो सेवड़ासिंघा चाहता था।

शिवरात्रि का पर्व

शिवरात्रि का पर्व था। सेवड़ासिंघा यह जानता था कि रानी रत्नावली शिवजी की पूजा के लिए सोमेश्वर मन्दिर जायेंगी। इस अवसर का लाभ उठाने के लिए उसने सोमेश्वर मन्दिर के पुजारी को निर्देश दिया कि वह मन्दिर न जाय। पुजारी चूँकि उसके वश में था अत: उसने उसके आदेश का पालन किया। इसके बाद पुजारी का रूप धारण कर स्वयं सोमेश्वर मन्दिर जा पहुँचा वह। उसे असली पुजारी के रूप में देखकर किसी को शक भी नहीं हुआ।

रानी रत्नावली अपनी दासियों के साथ नियत समय पर सोमेश्वर मन्दिर पहुँचीं। पुजारी के रूप में उपस्थित सेवड़ासिंघा ने रानी रत्नावली की विधि-विधान से पूजा करानी शुरू की। पूजा कराते समय सेवड़ासिंघा के हाथ का स्पर्श रानी के शरीर से हो गया। रानी ने इसे संयोग समझ कर कुछ नहीं कहा। लेकिन वह स्पर्श उन्हें कुछ विचित्र अवश्य लगा। पूजा के समय रानी आँखें बन्द किये बैठी ध्यान में लीन थीं, उसी समय जोरों की गर्जना हुई और उसी गर्जना के साथ सोमेश्वर शिव की संगमरमर की पिण्डी खण्डित हो गयी। आश्चर्य से देखा आँखें खोल कर रानी ने। उन्होंने पुजारी के रूप में सेवड़ासिंघा को तुरन्त पहचान लिया। क्रोध से लाल हो उठीं उनकी आँखें। फटकारते हुए गरज कर बोली वह, इसे अपना सौभाग्य समझो कि आज मेरा व्रत है और है शिवरात्रि का पर्व इसलिए तुमको कोई शाप नहीं दे सकती मैं। क्षमा करती हूँ तुमको। लेकिन आज के बाद तुम कभी मेरे पतिव्रत धर्म के आड़े मत आना, वरना अंजाम अच्छा न होगा। अपनी बात कह कर मन्दिर के बाहर निकल गयी रानी रत्नावली। सेवड़ासिंघा अवाक् देखता रहा उनको जाते हुए। उसकी कलुषित भावना धरी की धरी रह गयी। आज भी सोमेश्वर मन्दिर का शिव-पिण्ड उसी प्रकार खण्डित है।

इस घटना के बाद मानगढ़ नहीं छोड़ा सेवड़ासिंघा ने। रानी रत्नावली ने भी महाराज से इस घटना की चर्चा नहीं की। धीरे-धीरे चार-पाँच महीने का समय बीत गया। सेवड़ासिंघा ने अपने वश में कर अपनी महाभैरवी बनाने का विचार नहीं छोड़ा था अभी तक।

रानी रत्नावली पर तांत्रिक प्रहार

एक दिन रास्ते में रानी रत्नावली की खास दासी मिल गयी सेवड़ासिंघा को। उसने मंत्रविद्या के बलपर तुरन्त उस दासी को अपने वश में कर लिया। सम्मोहित

दासी को उसने आदेश दिया कि महल में जाने के पहले उसके निवास पर आकर उससे मिले वह।

बाजार में रानी की आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने के बाद दासी सेवड़ासिंघा के स्थान पर पहुँची। वह उसी की प्रतीक्षा कर रहा था। सेवड़ासिंघा ने देखा कि दासी कई प्रकार के तेल और इत्र खरीदकर लायी है। दासी उसके वशीभूत तो थी ही, उसने उससे तेल की एक शीशी लेकर शीशी के तेल को मंत्रपूत कर दिया। इसके बाद शीशी दासी को देकर बोला—इस तेल से रानी के सिर की मालिश करना, उनकी हर मनोकामना पूरी होगी।

ठीक है ऐसा ही करूँगी—यह कह कर दासी महल में चली गयी। महल पहुँच कर जब दासी ने रानी के कक्ष में प्रवेश किया तो उसकी स्थिति देखकर वह समझ गयीं कि किसी ने उस पर वशीकरण किया है। दासी ने सारी शीशियाँ रानी को दिखायीं तो रानी रत्नावली थोड़ी देर तक उनको ध्यान से देखती रहीं। फिर उन्होंने अपने गुरु का स्मरण कर अपनी तंत्रविद्या से यह जानने का प्रयास किया कि किसी शीशी में मंत्रपूत तेल तो नहीं है। ज्यों ही रानी ने मंत्र पढ़ना शुरू किया त्यों ही एक शीशी का तेल अन्दर ही अन्दर घूमने लगा। रानी रत्नावली समझ गयीं कि उनको वशीभूत करने के लिए दासी को सम्मोहित करके मंत्रपूत तेल भेजा गया है। उनको यह भी समझते देर न लगी कि यह काम सेवड़ासिंघा का ही है। महारानी रत्नावली के पतिव्रत धर्म को चुनौती देकर यह तीसरी बार उनको अपनाने का प्रयत्न किया था सेवड़ासिंघा ने। वास्तविकता जानने के बाद उनके क्रोध की सीमा न रही। वह महल की उस खिड़की के पास जा खड़ी हुई जहाँ से सेवड़ासिंघा का महल साफ नज़र आता था। क्रोध में रानी रत्नावली ने उस शीशी पर अपनी तंत्रविद्या का प्रयोग कर उसे अरावली की तराई में स्थित सेवड़ासिंघा के महल की ओर उछाल दिया। मंत्र के प्रभाव से तेल की शीशी आकाश में उड़ने लगी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसका आकार बढ़ता ही गया। और अन्त में एक विशाल शिलाखण्ड का रूप धारण कर लिया उसने।

सेवड़ासिंघा की मृत्यु और उसका श्राप

उस समय सेवड़ासिंघा अपने महल की छत पर ध्यानस्थ बैठा हुआ था। उसको क्या पता कि उसकी मृत्यु सामने आ रही है। उसने अपनी ओर आते हुए विशाल शिलाखण्ड की सनसनाती हुई आवाज सुनी तो आँखें खोल कर देखा। वह पलभर में समझ गया कि मृत्यु सिर पर आ चुकी है। अपनी तंत्रविद्या से उस विशाल शिलाखण्ड को रोकने का प्रयास भी किया, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। हवा में चक्कर काटता हुआ शिलाखण्ड आया और तीव्र गति से गिर पड़ा सेवड़ासिंघा के

ऊपर। सेवड़ासिंघा के मुँह से एक दर्दनाक चीख निकली। मरते-मरते शाप दिया उसने—रानी रत्नावली, तुमने छल से मारा है मुझे। मैं अपनी जीवनभर की तपस्या और तंत्र साधना का उपयोग करते हुए शाप देता हूँ कि तुम्हारा यह नगर कल का प्रात:काल न देख सकेगा। कोई प्राणी नहीं बचेगा इस नगर का। कल के बाद इस नगर में कभी कोई न रह सकेगा। रानी रत्नावली को जब सेवड़ासिंघा के इस शाप का पता चला तो वह समझ गयीं कि अब निश्चित है विनाश। सर्वप्रथम सेवड़ासिंघा का अन्तिम संस्कार तांत्रिक विधि से पाँच पशु की बलि देकर कराया और उसके बाद महाराज को बता दिया कि वह रातोरात मानगढ़ को खाली करने का आदेश दे दें प्रजा को। कल यह नगर हमेशा-हमेशा के लिए विनाश के मुँह में समा जायेगा। एक प्राणी भी नहीं बचेगा, पशु-पक्षी भी नहीं।

मानगढ़ से थोड़ी ही दूर पर अजबगढ़ का किला था। मानगढ़ से अजबगढ़ तक पहाड़ों से मीलों लम्बी सुरंग भी बनायी गयी थी। रातोरात उस सुरंग के रास्ते मानगढ़ का खजाना अजबगढ़ ले जाने का प्रयास किया गया। लेकिन वह प्रयास सफल नहीं हुआ। अगले दिन सूर्योदय होते ही मानगढ़ में इतना भयानक तूफान आया कि सब कुछ उजड़ गया। जो लोग नगर में रह गये थे, उसमें भी कोई नहीं बचा। महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी कि वह भयंकर तूफान मानगढ़ के मन्दिरों को नष्ट न कर सका। रानी रत्नावली अजबगढ़ चली गयी थीं। वहाँ जाने के बाद उन्होंने आदेश देकर अरावली की सबसे ऊँची चोटी पर सेवड़ासिंघा की छतरी बनवाई, ताकि लोग दूर से ही देखकर जान सकें कि परायी औरत पर नजर उठाने वालों का क्या परिणाम होता है। आज भी यह छतरी अपने मूलरूप में विद्यमान है।

मानगढ़ का विनाश

तंत्र-मंत्र के परिणामस्वरूप मानगढ़ का विनाश हुआ था। रानी रत्नावली के अजबगढ़ पहुँचने के बाद वहाँ के लोगों ने भी अपनी-अपनी रक्षा के लिए तंत्र-मंत्र सीखना शुरू कर दिया, इसलिए कि कोई तांत्रिक वहाँ भी आकर इसके द्वारा नगर को क्षति न पहुँचा सके। रानी ने ऐलान कर दिया कि कोई भी तांत्रिक उसके पास तभी पहुँच सकेगा, जब वह उनसे या नगर-निवासियों से तंत्र-मंत्र में जीत जायेगा। नगर-निवासियों का तंत्र-मंत्र की साधना करने का परिणाम यह हुआ कि छोटी-छोटी बातों को लेकर अपनी तांत्रिक विद्याओं का प्रयोग एक-दूसरे पर ही करने लगे लोग। इन तांत्रिक विद्याओं में मूठ, बाण, मारणमंत्र आदि भयानक तांत्रिक विद्यायें भी शामिल थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि अजबगढ़ भी शीघ्र उजड़ गया। उसकी भी गति वही हुई जो मानगढ़ की हुई थी। इतनी लम्बी कथा सुनाकर मौन साध गयी वह भैरवी।

वह रहस्यमय मनोरम स्थान और बाबा खर्परनाथ

धीरे-धीरे वातावरण में परिवर्तन होने लगा था और छा गयी थी निस्तब्धता। उस निस्तब्ध वातावरण में चारों ओर शुभ्र, धवल प्रकाश फैलने लगा था अब।

महासाधिका को मौन साधे देखकर न जाने क्यों व्याकुल हो उठा मैं। इस रहस्यमयी भैरवी की रहस्यमयी कथा ने मेरे हृदय में जो कौतूहल की सृष्टि कर दी थी, उसके फलस्वरूप तरह-तरह के विचार, भाव और प्रश्न उठने लगे थे मस्तिष्क में। तरह-तरह की जिज्ञासाओं की भी सृष्टि हो गयी थी मन में। अन्त में स्वयं मौन भंग करना पड़ा मुझे। बोला, राजनर्तकी से लेकर मानगढ़ के विध्वंस तक की कथा सुनी मैंने। क्या इसके पहले और बाद की भी कथा सुनायेंगी आप मुझे? बड़ी जिज्ञासा है। उसे सुनने के लिए व्याकुल है मेरा मन। मेरी आत्मा को आकुल कर दिया है आपकी रहस्यमयी और साथ ही अविश्वसनीय कथा ने?

मेरी बात सुनकर एक बार सिर घुमाकर देखा महाभैरवी ने और फिर एक लम्बी साँस ली। कुछ क्षण बाद मेरी ओर गहरी दृष्टि से देखते हुए बोली—सन् १५७५ ई० के पूर्व अरावली की हरी-भरी पर्वतमालाओं से घिरी, प्राकृतिक सुषमाओं और अलौकिक छटाओं से भरी काफी लम्बी-चौड़ी वह घाटी बहुत ही सुन्दर थी अपने आपमें। घाटी के एक ओर घनघोर जंगल था और दूसरी ओर थी झरने के निर्मल जल की धारा। झरने के दोनों ओर केवड़े के सैकड़ों वृक्ष थे, जिनकी सुगन्ध बराबर हर समय बिखरी रहती थी घाटी के वातावरण में। झरने का जल बारहो मास हर ऋतु में शीतल, निर्मल और स्वच्छ रहता था। अरावली पर्वत-शृंखलाओं के बीच से नीचे गिरता था वह झरना। पर्वत के पीछे जहाँ उसका उद्‌गम था—वह स्थान अत्यन्त रमणीक, मनोरम और सुरम्य था। उद्‌गम स्थान के चारों ओर चन्दन के पेड़ थे न जाने कितने, जिन पर हमेशा बड़े-बड़े भयंकर सर्प लटके रहते थे। मोर, पपीहा, कोयल आदि पक्षियों का भी अभाव नहीं था वहाँ। हर समय उनके समवेत स्वर गूँजते रहते थे उस सुरम्य घाटी के वायुमण्डल में। बरसात के समय में जब कभी पुरवा हवा बहती थी तो उस समय चन्दन और केवड़े की मिली-जुली सुगन्ध चारों ओर फैल जाती जैसे पूरी घाटी में। कभी किसी समय ऐसा प्रतीत ही नहीं होता था कि इसी धरती पर है वह घाटी। उसके मनोहारी और आत्मलीन कर देने वाले वातावरण में प्रवेश करते ही बस ऐसा लगता था मानो देवलोक के किसी अद्‌भुत और अकल्पनीय स्थान में प्रवेश कर गये हों।

थोड़ा रुककर आगे बतलाने लगी नागगन्धा—यहाँ तुमको यह बतलाना आवश्यक समझती हूँ कि उस समय अरावली का यह मनोरम और सुरम्य क्षेत्र नाथ-योगियों की प्रच्छन्न साधना-स्थली थी। सैकड़ों की संख्या में साधना करते थे यहाँ नाथ-साधक और उन्हीं साधकों में एक थे खर्परनाथ। बहुत ऊँचे साधक थे खर्पर-

नाथ। आकाशगमन विद्या जानते थे वह। नित्य आकाशमार्ग से गौरीकेदार, मानसरोवर आदि की यात्रा करते थे महाशय। सिद्ध और चमत्कारी सन्त थे बाबा खर्परनाथ इसमें सन्देह नहीं। उनकी सिद्धि और चमत्कार की सुगन्ध फैल रही थी पूरे राजस्थान में। एक बार उसी सुगन्ध से प्रभावित होकर एक रियासत के राजा अपनी रानी के साथ दर्शन करने आये बाबा का। सन्तान का अभाव था उस राजदम्पति को। राजा और रानी दोनों की आयु अधिक हो चुकी थी लेकिन बाबा ने सन्तान का आशीर्वाद देते हुए गम्भीर और साथ ही अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—प्रथम सन्तान मेरे आश्रम को समर्पित करना होगा तभी उसका वंश चलेगा।

ऐसा ही हुआ, राजदम्पति ने अपनी पहली सन्तान समर्पित कर दी बाबा खर्परनाथ के चरणों में, और वह सन्तान थी मैं। यथासमय स्वयं बाबा ने मेरा नाम रखा चन्द्रप्रभा। "ऐं! क्या कहा आपने?" आश्चर्यचकित होकर एकाएक मुँह से निकल गया मेरे। हाँ! मैं ही हूँ वह राजकन्या। फिर तोड़ा ठहर कर नागगन्धा आगे बतलाने लगी—"बाबा खर्परनाथ की देख-रेख और संरक्षण में धीरे-धीरे बड़ी होने लगी मैं। बहुत ही सुन्दर थी मैं। सोलह-सत्रह वर्ष की थी उस समय। शरीर के रोम-रोम में यौवन की मादकता भर गयी थी जैसे। पक्षियों के कोलाहल के बीच झरने के किनारे गालों पर हाथ धरे बैठी न जाने क्या-क्या सोचती रहती और न जाने कैसा-कैसा सुनहला सपना देखा करती थी मैं। लगता था जैसे स्वयं अपने आपसे ही प्रेम करने लगी हूँ मैं।"

"हाँ! एक बात तो बतलाना भूल ही गयी थी मैं, जानते हो क्या?"

"क्या?"

राजकन्या का नृत्य-प्रेम

अरावली की वह रमणीक घाटी जहाँ नाथसाधकों की साधना-स्थली थी, वहीं दूसरी ओर थी—यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों की क्रीड़ा-भूमि भी। प्रायः चाँदनी रात में यक्षकन्याओं का समूह आकाश से उतरकर नृत्य किया करता था वहाँ। उनके नृत्य के लय पर गन्धर्व और किन्नरों का दल तरह-तरह के वाद्ययंत्र बजाता था। नृत्य, गायन और संगीत की मिली-जुली मधुर और स्निग्ध ध्वनि से गूँजने लगती थी वह सुरम्य रमणीक और मोहक घाटी। सुन्दर यक्षकन्याओं के नृत्य को देखकर कभी-कभी स्वयं मेरे मन में भी नृत्य सीखने की इच्छा जागृत हो उठती थी। उस दिन चाँदनी रात थी, शरद पूर्णिमा की चाँदनी रात। छोटे-छोटे बादलों के सफेद टुकड़ों के पीछे कभी रूपहला चाँद छिप जाता और कुछ ही क्षणों के बाद पसर जाती उसकी चाँदनी फिर अरावली की उस घाटी के ऊपर। शान्त और निस्तब्ध वातावरण में बिखरी हुई चन्दन और केवड़े की मिली-जुली सुगन्ध और शरद पूर्णिमा की रूपहली चाँदनी ने पूरी तरह स्वर्गीय बना दिया था उस समय उस घाटी

को और उसी समय यक्ष सुन्दरियों के नृत्य की ध्वनि गूँज उठी एकाएक वहाँ। कुछ ही क्षणों के बाद समा-सी बँध गयी उस सुरम्य घाटी में नृत्य, गायन और संगीत की। झील के किनारे मौन साधे अपलक देख रही थी यक्ष सुन्दरियों के नृत्य को मैं। जैसे डूब-सी गयी थी मेरी आत्मा देव दुर्लभ नृत्य और संगीत की स्वर लहरियों में। और तभी एक सुन्दर और लावण्यमयी यक्ष युवती मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी अचानक। मेरी तन्द्रा जैसे भंग हो गयी। एक यक्ष नृत्यांगना को अपने पास खड़ी देख कर एक बार घबड़ा-सी गयी मैं। कुछ बोला न गया मुझसे। बस अपलक निहारती रही मैं उस सुन्दर नृत्यांगना की ओर, मन्द-मन्द मुस्करा रही थी वह उस समय।

मुझे मौन देखकर वह स्वयं कोमल और मधुर स्वर में बोली—''क्या नाम है तुम्हारा?''

''चन्द्रप्रभा।''

''क्या तुम भी नृत्य और गायन सीखना चाहती हो?''

''हाँ!'' धीमे स्वर में उत्तर दिया मैंने। और फिर पूछा—''आपका नाम क्या है?''

यक्ष-नृत्यांगना रत्नमाला

मेरा प्रश्न सुनकर जरा-सा हँसकर बोली यक्ष सुन्दरी—''हम लोगों के नाम नहीं होते। रूप से ही जाने-पहचाने जाते हैं यक्ष लोग। और रूप के ही आधार पर यक्ष जाति छः भागों में विभक्त है... तुम अपनी सुविधा के लिए रत्नमाला कहकर सम्बोधित कर सकती हो मुझे।'' उसी समय मेरा अपनी मण्डली के लोगों से परिचय कराया रत्नमाला ने। मण्डली की जितनी यक्षणियाँ थीं वे सभी एक से एक बढ़कर नृत्यकुशला थीं। सभी की आयु सोलह से बीस वर्ष के अन्दर थी और सभी सुन्दर, सभी लावण्यमयी और सभी एक रूप-रंग की। किसी भी प्रकार का कहीं कोई अन्तर अथवा भेद नहीं। बाबा खर्परनाथ से आज्ञा मिल गयी मुझे नृत्य और गायन सीखने की, शायद वे चाहते भी थे मेरा नृत्यकला में पारंगत होना। सीखने लगी मैं नृत्य और साथ ही गायन भी। रत्नमाला प्रमुख थी अपनी मण्डली की। मुझे सिखाना उन्होंने ही शुरू किया। जितने प्रकार के भारतीय नृत्य हैं, उन सबकी विशेषता यक्ष नृत्य में थी। स्वयं यक्ष नृत्य की भी अपनी विशेषता थी। बहुत ही कम समय में नृत्य-पारंगत हो गयी मैं। रत्नमाला प्रसन्न थी। बाबा खर्परनाथ भी प्रसन्न थे।

हाँ! एक बात तो बतलाना भूल ही गयी थी मैं।

जैसा कि बतला चुकी हूँ—बाबा खर्परनाथ उच्चकोटि के योगी थे। योगबल से आकाश-मार्ग द्वारा इच्छानुसार गमन करते थे और योगबल द्वारा उनका कई लोक-लोकान्तरों से सम्बन्ध भी था। रत्नमाला की मण्डली में यक्ष कन्याओं के अतिरिक्त गन्धर्व और किन्नरों की भी कन्यायें थीं, उनका भी रूप, लावण्य और

सौन्दर्य अद्वितीय था जिनकी कल्पना कभी भी नहीं कर सकता मनुष्य। प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में रत्नमाला अपनी मण्डली को लेकर नृत्य और गायन के लिए आती थी उस घाटी में। नृत्य और गायन के बाद तुरन्त वह अपनी मण्डली के साथ देखते ही देखते अदृश्य हो जाती थी। यह रहस्यमय था मेरे लिए। लेकिन इस रहस्य को किसी को नहीं बतलाया मैंने, बाबा को भी नहीं।

इच्छामृत्यु का वरदान

उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। बाबा खर्परनाथ के सम्मुख अपना नृत्य और गायन प्रस्तुत करना था मुझे रात्रि में। हल्के कुहरे की धवल चादर में लिपटी हुई शुभ्र धवल चाँदनी पसरी हुई थी घाटी में चारों तरफ। केवड़ा और चन्दन की मिली-जुली सुगन्ध से बोझिल वातावरण, और घोर निस्तब्धता और उस घोर निस्तब्ध रात्रि में सहसा गूँज उठे गन्धर्व कन्याओं के वाद्ययंत्र, किन्नरियों के गायन और उनके साथ गूँज उठी यक्ष सुन्दरियों के सामूहिक नृत्य की मधुर और आत्मविभोर कर देने वाली ध्वनि भी। अन्त में मेरा नृत्य शुरू हुआ रत्नमाला के निर्देशन में। कबतक मेरे पैर थिरकते रहे और कबतक उन पैरों में बँधे घुँघरुओं की लय ताल बद्ध ध्वनियाँ गूँजती रहीं वातावरण में—इसका होश ही नहीं रहा मुझे। और जब होश आया तो देखा—पूर्णिमा का रूपहला चाँद अरावली के उस पार जा चुका था और रत्नमाला और उनकी मण्डली हो चुकी थी अदृश्य। सिर घुमाकर देखा बाबा खर्परनाथ अपलक निहार रहे थे उस समय मेरी ओर प्रसन्न मुद्रा में। धीरे-धीरे चलकर बाबा के समीप पहुँची और बैठ गयी उनके सम्मुख। गद्‌गद हो उठे बाबा। अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने गम्भीर किन्तु कोमल स्वर में कहा—"कालंजयी भव। इच्छामृत्यु का वरदान देता हूँ मैं तुमको चन्द्रप्रभा। जब इच्छा करोगी तभी होगी मृत्यु तुम्हारी। तुम्हारे शरीर पर, तुम्हारे मन पर और तुम्हारे प्राणों पर काल का प्रभाव अत्यन्त मन्द गति से पड़ेगा।" यह सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गयी मैं। ऐसा भी आशीर्वाद और वरदान प्राप्त होगा मुझे और वह भी एक सिद्ध महायोगी से, स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं की थी मैंने। न जाने क्यों झर-झर कर गिरने लगे आँसू आँखों से। विगलित हो उठी आत्मा। मूक हो गयी वाणी। अवरुद्ध हो गया कण्ठ और उसी अवरुद्ध कण्ठ से बोली मैं—"कैसे इतने लम्बे जीवन का बोझ उठाऊँगी? कैसे इतने लम्बे जीवन की यात्रा पूर्ण करूँगी। और कैसे अपने आपको सम्भाले रखूँगी बाबा? बोलिये बाबा कुछ कहिये न? क्यों दिया आपने ऐसा आशीर्वाद और क्यों दिया ऐसा अभेद्य वरदान? क्या लाभ होगा इससे मुझे और क्या लाभ होगा संसार को मेरे दीर्घजीवन से?"

थोड़ा रुककर आँचल से आँसू पोछते हुए आगे बोली मैं—"जिस इच्छामृत्यु की बात आपने कही है वह साधारण नहीं है। उसके लिए प्रबल चित्त की एकाग्रता

और साथ ही प्रबल इच्छाशक्ति भी तो होनी चाहिए। कहाँ से लाऊँगी मैं ये सब।" एक लम्बी साँस ली बाबा खर्परनाथ ने और फिर मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए गम्भीर किन्तु सरस स्वर में कहा—"तुम अपने को न जानती हो न पहचानती हो और न तो समझती ही हो कि कौन हो तुम? मैं तुम्हारी आत्मा से भलीभाँति परिचित हूँ। तुमको अच्छी तरह जानता-पहचानता और समझता हूँ मैं। पिछले कई जन्मों से चल रही हो साधनामार्ग पर तुम। जिस समय तुम अपने साधनामार्ग से परिचित हो जाओगी तब तुमको ज्ञात होगा कि वह मार्ग आगामी आठ जन्मों में जाकर समाप्त होगा। इसलिए तुम्हारे माता-पिता को आशीर्वाद देकर उनसे उनकी प्रथम सन्तान के रूप में प्राप्त करना चाहा था मैंने तुमको, इसलिए कि तुम अपने अगले आठ जन्मों के जीवन को एक ही जन्म के जीवन में भोगकर अपनी आठ जन्मों की साधना पूर्ण कर लो और उन कर्मफलों को भी भोग लो और उनके साथ ही साथ उन समस्त घटनाओं का भी साक्षात्कार कर लो, जिनको आठ जन्मों में भोगना है और जिनका साक्षात्कार भी करना है।" थोड़ा रुककर बाबा खर्परनाथ आगे बोले—"भौतिक शरीर की प्राप्ति के पहले एक भटकती हुई आत्मा थी तुम। एक योगी को अपनी साधना पूरी करने के लिए भौतिक शरीर आवश्यक है। जितनी भी आध्यात्मिक साधनाएँ हैं वे सब भौतिक शरीर के माध्यम से पूर्ण होती हैं अन्य किसी शरीर से नहीं। और तुम जैसी योग्यताओं को शीघ्र भौतिक शरीर उपलब्ध नहीं होता। सैकड़ों वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तुमको अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़े इसलिए तुम्हारी आत्मा को स्थूल शरीर उपलब्ध कराकर एक योगी का कर्त्तव्य-पालन किया है मैंने। आशीर्वाद और वरदान भी इसीलिए दिया कि भविष्य में बार-बार भौतिक शरीर की उपलब्धि के लिए तुम्हारी आत्मा को प्रतीक्षा न करनी पड़े। बार-बार गर्भ की यातना न भोगनी पड़े और बार-बार जन्म और मृत्यु के कष्ट को भी न पड़े भोगना।"

"आपका कहना ठीक है बाबा, लेकिन कौन ले चलेगा मुझे साधनामार्ग पर। कौन दिखलायेगा मुझे मेरा साधनामार्ग। मैं तो बिल्कुल अपरिचित और पूर्ण अनभिज्ञ हूँ साधना और उसके मार्ग से। आप ही बतलाइये क्या करूँ मैं? अपने आपको एक साधारण युवती समझती हूँ मैं। इससे अधिक और कुछ भी नहीं।" बाबा मौन रहे, कुछ बोले नहीं, केवल एकटक गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा उन्होंने और फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद आँखें बन्द किये हुए ही अपना दाहिना हाथ मेरे मस्तक पर रख दिया उन्होंने। मस्तक पर उनके हाथ का स्पर्श होते ही मेरे पूरे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गयी और रोम-रोम झनझना उठा एकबारगी और चेतना-शून्य हो गयी मैं दूसरे क्षण और उसी अवर्णनीय अवस्था में देखा मैंने अपने पिछले जन्मों को एक-एक करके। प्रत्येक जन्म के सम्पूर्ण दृश्य बिल्कुल स्पष्ट रूप से उभरते रहे मेरे मानसपटल पर। एक जन्म के दृश्य में तुमको भी देखा मैंने।"

"मुझे देखा"—चौंककर पूछा मैंने?

नागगन्धा का पिछला जन्म

हाँ! तुमको देखा और वह भी संन्यासी के रूप में। मेरे जीवन की मरुभूमि में तुम्हारी उपस्थिति स्वाति की अमृतमयी बूँद के समान थी। योगमार्ग की पथिक थी मैं और तुम थे संन्यास मार्ग के एक युवा त्यागी पुरुष। और हम दोनों के बीच प्रेम था, आध्यात्मिक प्रेम, आध्यात्मिक आकर्षण और आध्यात्मिक स्नेह, लेकिन कब और कैसे उस आध्यात्मिक प्रेम, आकर्षण और स्नेह के अमृत में वासना और कामना का घुल गया महाविष, जिसका प्रायश्चित्त करना पड़ा मुझे नर्तकी के रूप में। इतना कहकर कुछ क्षण के लिए चुप हो गयी नागगन्धा और उसके दमकते-चमकते चेहरे पर फैल गयी विषाद की स्याह कालिमा।

मैं भी स्तब्ध रह गया यह सुनकर। बैठा रहा सिर झुकाये। सोचने लगा क्या सचमुच मेरा इस भैरवी से पिछले किसी जन्म का नाता-रिश्ता है। मन ने धीरे से कहा—हाँ है, इसमें सन्देह नहीं। बड़ी ही करुण और दारुण कथा है। तभी तो सुना रही है अपनी कथा वह तुमको लेकिन यह सब कुछ मेरे लिए अत्यन्त रहस्यमय है। कैसे यह तिमिराच्छन्न रहस्य होगा अनावृत्त? पहले ही की तरह मन ने हौले से कहा—अवसर आने पर सबकुछ हो जायेगा स्पष्ट। प्रतीक्षा करो, समझे। झुका हुआ सिर ऊपर उठाया मैंने और उसी के साथ नागगन्धा का भी मौन भंग हुआ। चेतनाशून्य अवस्था नहीं कही जायेगी उसे। वह परमसमाधि की स्थिति थी। अपनी स्पर्श दीक्षा द्वारा बाबा ने उत्पन्न कर दी थी वह स्थिति और उस परम समाधि की स्थिति ने अनावृत्त कर दिया था पूर्णरूप से मेरे साधना-मार्ग को—जिस पर पिछले कई जन्मों से अनवरत चल रही थी मैं। फिर क्या हुआ? व्यग्र हो उठा मेरा चित्त। होगा क्या?

चन्द्रप्रभा की योग-साधना

यह वह समय था जब राजस्थान की मरुभूमि पर युद्ध के बादल मँडराने लगे थे। भारत का लम्बा भविष्य रक्त से प्लावित देखकर धीरे-धीरे उस सुरम्य घाटी में दीर्घकाल से साधनारत नाथ योगीगण एक-एक कर हिमालय की ओर चले गये। जिस घाटी में आध्यात्म की सुगन्ध सदैव बिखरी रहती थी एक प्रकार से सूनी हो गयी वह। एक अबूझ-सी खिन्नता-भरी उदासी पसर गयी चारों तरफ वातावरण में। यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों की नृत्यांगनाओं के नृत्यों की सुमधुर ध्वनि भी अब सुनाई नहीं पड़ती थी उस रमणीक घाटी में। कभी-कदा रत्नमाला चली आती थी मुझसे मिलने के लिए। नृत्यसाधना और योगसाधना दोनों एक साथ चल रही थीं जीवन में। बाबा खर्परनाथ ने महासमाधि ले ली थी लेकिन अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा बराबर साधना-निर्देश देते रहे वह। उनकी कुटिया पर मेरा अधिकार हो गया था। महीनों साधनारत रहती मैं गुफा में। पिछले जन्म में जिस स्थान पर आकर मेरी साधना रुक गयी थी उसी स्थान से आगे चल पड़ी थी मैं। अपने साधना-मार्ग पर प्राय: सहज

समाधि की अवस्था में रहने लगी थी और उस अवस्था में कभी अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा तो कभी मनोमय शरीर द्वारा दोनों शरीरों से सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में भ्रमण किया करती थी। मैं एक राजकन्या और एक नर्तकी हूँ—बस, इतना ही जानती थी रत्नमाला। जब उसको मेरे योगबल और साधना-शक्ति का पता चला तो न जाने कब तक अपलक मेरी ओर आश्चर्यचकित दृष्टि से निराहती रही वह। जैसे मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं हो रहा हो उसे।

"सच कह रही हो ?"—रत्नमाला बोली।

हाँ! एक विशेष सीमा तक किसी भी लोक-लोकान्तरों में गमन कर सकती हूँ मैं। योग के अनुसार, तुम्हारे शरीर में अग्नितत्त्व की प्रधानता है। जबकि मेरे भौतिक शरीर में प्रधानता है पृथ्वीतत्त्व की। भौतिक जगत् और भौतिक शरीर में पृथ्वीतत्त्व प्रधान है और अन्य चार तत्त्व उसके अन्तर्भूत हैं, इसीलिए भौतिक जगत् और भौतिक शरीर दृश्यमान है।

नाभि उदान वायु का केन्द्र है। योगीगण पृथ्वीतत्त्व के माध्यम से उदान वायु का आश्रय लेकर सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग कर देते हैं और शून्यमार्ग से गमन करते हैं। लेकिन इस अवस्था में उनका सम्बन्ध बराबर अपने स्थूल शरीर से बना रहता है। यदि किसी कारणवश निश्चित सीमा के बाहर उनका सूक्ष्म शरीर निकल गया तो तत्काल उनके सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध स्थूल शरीर से भंग हो जायेगा। ऐसी स्थिति में वे अपने पार्थिव शरीर में न वापस लौट सकते हैं और न तो उसमें जीवित ही हो सकते हैं। ऐसे योगीगण न इधर के होते हैं और न तो उधर के होते हैं। वे पृथ्वी के ही वायुमण्डल में अपने सूक्ष्म शरीर में रह कर योग्य गर्भ की खोज में भटकते रहते हैं ताकि नया शरीर धारण कर नया जीवन शुरू करें और फिर पूर्णसाधना संस्कार के अनुसार अपने गुरु की खोज में निकल पड़ते हैं या फिर स्वयं उनका गुरु ही उनको खोज लेता है और उनका आगे के लिए साधना-मार्ग प्रशस्त करता है।

मेरी बातों को बड़े ही मनोयोग से सुन रही थी रत्नमाला। मैंने आगे कहना शुरू किया—प्रत्येक लोक-लोकान्तर और जगत् का अपना-अपना नियम और सिद्धान्त है। यक्षलोक में वायुतत्त्व और अग्नितत्त्व की प्रधानता है। अन्य तीन तत्त्व अन्तर्भूत हैं। तुम्हारे शरीर का निर्माण भी उन्हीं दोनों तत्त्वों से हुआ है। तुम्हारी प्रबल इच्छाशक्ति के आधार पर उन दोनों तत्त्वों का मिश्रण हो जाता है और तुम कुछ समय के लिए अपने शरीर को भौतिक रूप दे सकते में समर्थ हो जाती हो। लेकिन यह तभी सम्भव है जब तुम पृथ्वी की सीमा में प्रवेश करती हो।

यह सब सुनकर स्तब्ध रह गयी रत्नमाला। बोली—"क्या तुम मेरे साथ मेरे लोक में चल सकती हो ?"

"हाँ! क्यों नहीं! चलो"—मैंने कहा।

यक्षलोक में प्रवेश

अपने पार्थिव शरीर को नियम के अनुसार सुरक्षित किया मैंने, और फिर सूक्ष्म शरीर द्वारा रत्नमाला के साथ यक्षलोक के लिए चल पड़ी मैं। अग्नितत्त्व के कारण रत्नमाला की गति मुझसे तेज थी। यहाँ तुमको बतला दूँ—प्रत्येक लोक और प्रत्येक जगत् के समय की अपनी-अपनी गति है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकलने के पश्चात् कुछ ही क्षणों में रत्नमाला के साथ पहुँच गयी मैं यक्षलोक में।

अति सुन्दर, रमणीक और भव्यलोक था वह। वहाँ न सूर्य का प्रकाश था और न तो थी चन्द्रमा की चाँदनी। स्वयं वह सम्पूर्ण लोक प्रकाशित था अपने-आपमें। आकाश का रंग नीला नहीं, पीला था। ग्रह-नक्षत्रों का अस्तित्व नहीं था वहाँ। उस दिन से प्रायः रत्नमाला मुझे कभी यक्षलोक तो कभी गन्धर्वलोक तो कभी किन्नरलोक के अतिरिक्त अन्य कई अज्ञात लोक-लोकान्तरों की यात्रा कराने लगी अपने साथ। धीरे-धीरे मैं भी अभौतिक सत्ता में प्रवेश की अभ्यस्त हो गयी।

मानगढ़ के राजा से भेंट

उस दिन पूर्णिमा की रात थी। अपने आपमें लीन झरने के किनारे नृत्य कर रही थी मैं। उसी समय कहाँ से और कब मानगढ़ के राजा शिकार की खोज में अपने राज-कर्मचारियों के साथ भटकते हुए वहाँ आ गये और न जाने कब से मेरे नृत्य को मंत्रमुग्ध होकर देख रहे थे वह। एकाएक मेरी तन्द्रा जैसे भंग हुई। नृत्य की लय पर थिरकते हुए पैर अपने आप थम गये। सिर घुमाकर देखा—कुछ ही दूरी पर खड़े थे महाराज। एक हाथ में घोड़े की लगाम थामे हुए थे और दूसरा हाथ रखे हुए थे अपनी कमर पर वह। दुधिया चाँदनी में उनका व्यक्तित्व भव्य और आकर्षक लग रहा था। राजोचित शालीनता और गौरव स्पष्ट झलक रहा था उनके सुन्दर तेजोमय मुख-मण्डल पर। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मेरी ओर धीरे-धीरे बढ़े वह। सिर झुकाये खड़ी थी मैं, मेरे दोनों हाथों को अपने कोमल हाथों में लेते हुए मधुर और कोमल स्वर में बोले वह—"कितनी सुन्दर हो। क्या कोई देवकन्या हो, जो स्वर्ग से उतर कर नृत्य करने आयी हो इस सुरम्य घाटी में तुम? ऐसा नृत्य इस धरती का तो कभी भी नहीं हो सकता। निश्चय ही तुम कोई देवबाला हो। तुम्हारे रूप, यौवन और सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया हूँ मैं।" महाराज की बातें बड़ी ही सरस लगीं मुझे, लेकिन न बोला गया कुछ और न तो कुछ कहा ही गया मुझसे। बस सिर झुकाये स्थिर भाव से खड़ी रही जैसे होश ही न रहा मेरी आत्मा को। उनके कोमल हाथ के कोमल स्पर्श ने मेरे रोम-रोम को जैसे झंकृत कर दिया था एकबारगी। तन-मन दोनों सिहर उठे थे जैसे उनके सान्निध्य में अपने आपको पाकर।

अपनी रत्नजड़ित अँगूठियों से भरी कोमल उँगलियों से झुकी हुई मेरी ग्रीवा को ऊपर उठाते हुए महाराज सरस वाणी में बोले—"क्या कुछ नहीं बतलाओगी?

क्या कुछ नहीं कहोगी? क्या कुछ नहीं बोलोगी? और मेरी किसी भी जिज्ञासा का समाधान नहीं करोगी तुम?"

अब नहीं रहा गया मुझसे। अटक-अटक कर बोल गयी—जो बोलना था और जो कहना था मुझको। सारी कथा सुनकर महाराज हौले से मेरे हाथ को थामकर धीमें स्वर में बोले—"मेरी राज्य-नर्तकी बनोगी तुम चन्द्रप्रभा?"

मैं क्या कहती? सिर हिलाकर दे दी मैंने अपनी स्वीकृति।

महाराज प्रसन्न हुए। अपने आगे घोड़े पर बिठाकर अपने राजमहल में ले आये मुझे वह उसी समय।

अब मैं राजनर्तकी थी मानगढ़ की। मेरे लिए एक भव्य और आलीशान महल बनवा दिया महाराज ने। सारी सुख-सुविधायें उपलब्ध हो गयीं मुझे। नौकर-चाकर दास-दासी—किसी चीज का अभाव नहीं था मुझे। केवल प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में अपना नृत्य और गायन प्रस्तुत करना होता था महाराज के सम्मुख।

नागगन्धा की तंत्र-साधना

इतना कहकर मौन साध गयी नागगन्धा। क्योंकि उसके बाद की कथा तो पहले ही सुना चुकी थी मुझे वह। लेकिन मेरी जिज्ञासा और मेरा कौतूहल अभी शान्त नहीं हुआ था। बाबा बालानाथ के चरणों में शरण लेने के बाद की कथा जानना चाहता था मैं। जानता था कि वह कथा निश्चय ही अत्यन्त रहस्यमयी और गम्भीर होगी। सम्भवत: मेरे भाव को समझ गयी नागगन्धा। एक लम्बी जम्हाई लेकर पहले सिर घुमाकर चारों ओर देखा उसने और फिर कहने लगी। मानगढ़ के विध्वंस के बाद भी कुछ समय तक बाबा बालानाथ रहे और रही मैं भी उनकी सेवा में वहाँ। मेरे आध्यात्मिक और साधनात्मक जीवन से भली-भाँति परिचित थे बाबा बालानाथ। एक दिन उन्होंने कहा—"चन्द्रप्रभा, तुमको योग-साधना के साथ-साथ तंत्र की भी साधना करनी चाहिए। अध्यात्म-साधना वास्तव में शक्ति-साधना है और उस साधना के दो आधार हैं—पहला है योग और दूसरा है तंत्र। योग और तंत्र एक-दूसरे के पूरक हैं।

वेदों में जिसे ब्रह्माण्ड शक्ति कहा गया है इसी को साधना-भूमि में ब्रह्ममयी शक्ति अथवा ब्राह्मी शक्ति की संज्ञा दी गयी है। ब्राह्मी शक्ति के दो रूप हैं—समष्टि रूप और व्यष्टि रूप। समष्टि रूप—ब्रह्माणी शक्ति, वैष्णवी शक्ति और माहेश्वरी शक्ति—इन तीन भागों में विभक्त होकर सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में चैतन्य और क्रियाशील है। इसी प्रकार व्यष्टि रूप—मन:शक्ति, प्राण-शक्ति और वाक्शक्ति—इन तीन भागों में विभक्त होकर मानव-शरीर में क्रियाशील है। समष्टि रूप की साधना योग-साधना है और व्यष्टि रूप की साधना है तंत्रसाधना। तंत्र के जितने भी उद्देश्य हैं—उनमें एक परम उद्देश्य है—शरीर में क्रियाशील व्यष्टि रूप की तीनों शक्तियों पर सर्वप्रथम विजय प्राप्त करना और उसके बाद समष्टि रूप की तीनों शक्तियों से

उनका सामंजस्य स्थापित करना। इसी अवस्था को तंत्र में कहते हैं पिण्ड यानी शरीर-ब्रह्माण्ड-मिलन। पिण्ड-ब्रह्माण्ड मिलन के परिणामस्वरूप साधक का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सम्पर्क स्थापित हो जाता है। ब्रह्माणी शक्ति मन:शक्ति से वैष्णवी शक्ति प्राणशक्ति से और इसी प्रकार माहेश्वरी शक्ति वाक्शक्ति से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेती है।

शरीरस्थ तीनों शक्तियों पर अधिकार हो जाने का अर्थ है पिण्ड विजय। यह योग तांत्रिक साधना के लक्ष्य का प्रथम चरण है। समष्टिशक्ति को परमाशक्ति और व्यष्टिशक्ति को पराशक्ति कहते हैं। परमा और पराशक्ति का सामंजस्य लक्ष्य का दूसरा चरण है। समष्टि रूप की तीनों शक्ति पर विजय प्राप्त करना, लक्ष्य का तीसरा चरण है। ब्रह्माण्डीय शक्तियों पर अधिकार हो जाने के बाद आता है ब्रह्माण्ड विजय। और ब्रह्माण्ड विजय तंत्र के परम उद्देश्य का अन्तिम चौथा चरण है। इसके बाद है परमशून्य अवस्था। इसी अवस्था को कहते हैं कैवल्य, निर्वाण, परमगति, परममुक्ति यानी मोक्ष।

योग तांत्रिक साधना के मुख्यत: ये चार चरण हैं, जिनको उपलब्ध होने के लिए साधक को लगातार कई जन्म लेने पड़ते हैं। तुमको यह समझ लेना चाहिए कि तुम्हारी अबतक की योग-साधना अधूरी ही समझी जायेगी जबतक कि तुम योग साधना की तरह तंत्र साधना में भी पारंगत नहीं हो जाती हो। योग का आश्रय लेकर तुमने शक्ति के समष्टि रूप की साधना की है। अब तुमको उसी शक्ति के व्यष्टि रूप की साधना करनी चाहिए। तभी पिण्ड और ब्रह्माण्ड के बीच एकता स्थापित होगी और तभी साधना के अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि भी होगी।

बाबा बालानाथ के एक-एक शब्द मेरे अन्तराल में उतरते चले गये। संक्षिप्त में अध्यात्म के परम रहस्य को समझा दिया था उन्होंने। इस विषय में अपनी कुछ जिज्ञासाओं का समाधान करना चाहा और कुछ जानना-समझना चाहा मैंने, लेकिन इसके पहले ही बाबा स्वयं बोल पड़े—योग का आश्रय लेकर तंत्रमार्गीय साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए कई प्रकार की दीक्षायें हैं जिनमें प्रमुख हैं—स्पर्शदीक्षा, शक्तिपातदीक्षा और भैरवीदीक्षा। ये तीनों दीक्षायें अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय हैं।

क्रम से इन तीनों दीक्षा के उपलब्ध हुए बिना तांत्रिक साधना मार्ग पर चला नहीं जा सकता। असम्भव है। ये तीनों दीक्षा कैसे प्राप्त होती हैं—मैंने प्रश्न किया। सद्गुरु द्वारा।

सद्गुरु का दर्शन कहाँ होगा? कैसे उपलब्ध होंगे वह? मेरा दूसरा प्रश्न था।

सद्गुरु को खोजना नहीं पड़ता। साधक में इतनी योग्यता नहीं होती कि सद्गुरु को खोज सके, उनको जान-समझ सके और प्राप्त कर सके उनका दर्शन। सद्गुरु तो स्वयं अपने योग्य शिष्य को खोजते हुए आते हैं, दर्शन देते हैं और क्रम से दीक्षा भी प्रदान करते हैं।

मुझे सद्‌गुरु कब उपलब्ध होंगे—थोड़ा विह्वल होकर प्रश्न किया मैंने।

मेरी विह्वलता, व्याकुलता और आतुरता को समझ गये बाबा। बोले, प्रतीक्षा करो, यथासमय सद्‌गुरु दर्शन देंगे तुमको और दीक्षा भी उपलब्ध होगी। अन्त में तीनों दीक्षाओं के सम्बन्ध में भी बतलाया बाबा ने संक्षिप्त में।

स्पर्शदीक्षा द्वारा स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और मनोमयशरीर तीनों शुद्ध होते हैं। तीनों शरीरों का जो आपस में सामंजस्य रहता है वह दूर हो जाता है।

तीनों शरीर अपने-अपने अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप से स्वीकार कर लेते हैं। साधक को तीनों शरीरों का अलग-अलग बोध होने लगता है। योग और तंत्र दोनों की साधनायें तीन चरणों में विभक्त हैं जिनका सम्बन्ध क्रमशः तीनों शरीरों से है। तीनों शरीरों की अपनी-अपनी सीमा विशेष है। उसी विशेष सीमा के अन्तर्गत प्रत्येक चरण की साधना पूर्ण होती है। प्रथम चरण की साधना सूक्ष्मशरीर के माध्यम से पूर्ण होती है। पूर्णता के बाद स्थूलशरीर का कोई मूल्य और महत्त्व नहीं रह जाता। साधक के लिए व्यर्थ हो जाता है। ऐसे व्यर्थ हुए स्थूलशरीर को कोई महत्त्व नहीं देता है साधक, उसके लिए उपेक्षणीय हो जाता है वह। इसी कारण साधक के स्थूलशरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। भूख, प्यास, नींद आदि की मात्रा कम हो जाती है। ऐसे साधकों द्वारा स्थूलशरीर से किसी प्रकार की बाह्यपूजा, उपासना, जप-तप आदि भी करते हुए नहीं देखा जा सकता। क्योंकि अब उसकी सारी साधना-उपासना, पूजा-पाठ, जप-तप, ध्यान, धारणा आदि उसके सूक्ष्म शरीर द्वारा होने लग जाती है। जब यथासमय सूक्ष्मशरीर की विशेष सीमा के अन्तर्गत साधना का दूसरा चरण भी समाप्त हो जाता है तो साधना के तीसरे चरण का प्रारम्भ होता है मनोमय शरीर में। लेकिन यह सब तभी सम्भव है जब साधक को शक्तिपात दीक्षा उपलब्ध होती है।

जैसा कि मैंने तुमको बतलाया है, बाबा ने आगे कहना शुरू किया—व्यष्टि रूपा पराशक्ति को तांत्रिक भाषा में कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। शरीर में उसके तीनों रूप—मन, प्राण, वाक्—तो क्रियाशील रहते हैं, लेकिन स्वयं वह प्रसुप्त अवस्था में रहती है। उसे जागृत और चैतन्य करने के लिए शक्तिपात दीक्षा है। वास्तव में जिस योग तांत्रिक साधना और उसके तीन चरण की चर्चा मैंने की है वह कुण्डलिनी शक्ति की ही साधना है। शक्तिपात दीक्षा द्वारा चैतन्य कुण्डलिनी शक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—प्रथम तो चैतन्य अवस्था है, दूसरी उत्थान अवस्था है और तीसरी अवस्था है तिरोधान अवस्था। जैसे शक्तिपात दीक्षा द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जागृत और चैतन्य होती है उसी प्रकार भैरवी दीक्षा द्वारा उसका उत्थान और तिरोधान होता है। तुमको ज्ञात होना चाहिए कि इस विश्वब्रह्माण्ड में जितने भी लोक-लोकान्तर और उनसे सम्बन्धित जितने भी जगत् हैं, उनमें अनन्त सत्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी शक्तियाँ क्रियाशील हैं। जागृत होते ही कुण्डलिनी शक्ति का सूक्ष्म सम्बन्ध उन

अनन्त शक्तियों से अपने आप स्थापित हो जाता है। उन शक्तियों का उपयोग लाभदायक भी है और हानिकारक भी है। साधक उनका जिस रूप में उपयोग और प्रयोग करेगा उसी के अनुसार उसको सहयोग देंगी और सहायता भी करेंगी वे। उनका सहयोग और सहायता लौकिक भी है और पारलौकिक भी, इसी का नाम तांत्रिकसिद्धि है।

"क्या आपको सद्‌गुरु का दर्शन हुआ और आपने प्राप्त की दीक्षा?" —मैंने पूछा।

हाँ! दर्शन भी हुआ और दीक्षा भी प्राप्त हुई तीनों? थोड़ा रुक कर नागगन्धा बतलाने लगी—मानगढ़ तो नष्ट हो ही चुका था। महाराज और महारानी भी नहीं रहे। वह रमणीक और मनोरम घाटी उजाड़ और मरघट जैसी हो गयी थी। एक दिन बाबा बालानाथ मुझे लेकर कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर निकल पड़े। तीन महीने की कठिन यात्रा के बाद बाबा के साथ मानसरोवर पहुँची मैं। अत्यन्त शान्ति का अनुभव हुआ वहाँ मेरी आत्मा को। कैलाश और मानसरोवर के बीच एक गुफा में बाबा के गुरु भाई न जाने कब से रह रहे थे। नाम था योगनाथ। योगनाथ प्रसन्न हुए बाबा से मिलकर। दो परम योगियों का मिलन अपूर्व लगा मुझे। दो महान् योगियों के सान्निध्य में मैं भी रहने लगी गुफा में। जब कभी इच्छा होती—सूक्ष्मशरीर द्वारा यक्षलोक पहुँचकर रत्नमाला से मिल आती। अब तक गुफा में रहते हुए एक वर्ष से ऊपर हो गया था।

सद्‌गुरु महात्मा मिलरेप के दर्शन

उस दिन पूर्णिमा की रात थी। कैलाश मानसरोवर की हिममयी घाटी में दुधिया चाँदनी पसरी हुई थी। वातावरण में घोर सन्नाटा बिखरा हुआ था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। रात का शायद दूसरा प्रहर था। गुफा के सामने एक पत्थर पर चुपचाप बैठी चित्त को एकाग्र करने का प्रयास कर रही थी और तभी एक लम्बा-चौड़ा मजबूत कद-काठी का विशालकाय पुरुष मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसका पूरा शरीर लबादा से ढँका हुआ था। कोहड़े जैसा बड़ा-सा सिर केवल दिखलायी दे रहा था। उसका मस्तक काफी चौड़ा था। भौंहें घनी थीं। आँखें भी बड़ी-बड़ी थीं, जिनमें से तेज निकल रहा था। गले में उसने विभिन्न रंगों के मनकों की मालाएँ पहन रखी थीं—जो लबादे के बाहर पेट तक लटक रही थीं। एक विलक्षण मानवाकृति वाले उस पुरुष का गोल और भरा-भरा चमकता चेहरा गम्भीर था। चाँदनी में उसके गम्भीर चेहरे को बिल्कुल साफ देख रही थी मैं। उस विशालकाय पुरुष को अचानक अपने सामने देखकर न मैं भयभीत हुई और न तो आतंकित। हाँ! अपने आपमें कुछ विचित्र-सा अनुभव अवश्य कर रही थी मैं।

कुछ क्षण बाद उस विशालकाय पुरुष का गम्भीर स्वर गूँज उठा कैलाश मानसरोवर के निस्तब्ध वातावरण में, तिब्बत से चलकर यहाँ आया हूँ मैं तुमको तंत्रदीक्षा प्रदान करने के लिए.... मेरा नाम मिलरेप है और तिब्बत के सियांग मठ में निवास करता हूँ। वह मठ अत्यन्त गोपनीय है और है मेरी साधनास्थली।

यह सुनकर स्तब्ध हो गयी मैं। सद्गुरु स्वयं तुमको खोजते हुए आयेंगे और तुमको दीक्षा प्रदान करेंगे—बाबा बालानाथ के ये शब्द एकबारगी कौंध से गये मेरे मस्तिष्क में। सद्गुरु कैलाश-मानसरोवर की हिमभूमि में प्रकट होंगे—निश्चय ही बाबा इस रहस्य से परिचित थे, तभी तो मुझे लेकर वहाँ पहुँचे थे वह।

स्पर्श दीक्षा

मैं तत्काल उठ खड़ी हुई और आगे बढ़कर चरण स्पर्श किया मैंने महात्मा मिलरेप का। और उसी क्षण उस महान् तंत्रसाधक ने मेरे मस्तक पर अपना दाहिना हाथ रखा। उस महात्मा के हाथ का स्पर्श होते ही अपने तीनों शरीरों का अलग-अलग अनुभव किया मैंने। अपने उन शरीरों को जिस शरीर से देख रही थी वह था कारणशरीर दिव्य, तेजोमय और धवल।

वह मेरी स्पर्श दीक्षा थी। उसके बाद महात्मा मिलरेप योग मार्ग से अपने मठ में ले आये और वहाँ उन्होंने शक्तिपात दीक्षा और फिर भैरवी दीक्षा प्रदान की। और मैं भैरवी बन गयी महातंत्र साधक महात्मा मिलरेप की। फिर तो चल पड़ा कठोर योग तांत्रिक साधना का क्रम। अनेक दुर्लभ और अविश्वसनीय सिद्धियाँ प्राप्त हुईं मुझे और अनेक लोक-लोकान्तरों का भ्रमण किया मैंने। समाप्त हो गयी काल की एक दीर्घ अवधि। महात्मा मिलरेप को महासमाधि लेने का समय आ गया था। एक दिन उन्होंने मुझे अपने साधना-कक्ष में बुलाया और मन्द स्वर में कहा—मेरी महासमाधि के समय तुमको यहाँ नहीं रहना चाहिए। तुम अब यहाँ से चली जाओ और जाकर असम की शक्ति भूमि में प्रवाहित होने वाली ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित महाश्मशान में निवास करो उसके बाद वक्रेश्वर के महाश्मशान में चली जाना क्योंकि वहाँ ही अपने पार्थिव शरीर का त्याग करना होगा तुमको सदैव के लिए। यक्षलोक में तुम्हारे लिए पीठासन का निर्माण कर दिया गया है। शरीर-त्याग के बाद वहाँ चली जाना और शेष साधना उसी पीठासन पर बैठकर पूर्ण करना तुम।

इतना कहकर महात्मा मिलरेप ने सदैव के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं। पद्मासन की मुद्रा में बैठे महासमाधिस्थ उस महान् साधक को अपलक निहारती रही मैं न जाने कब तक, झर-झर कर निकल रहे थे आँसू मेरी आँखों से उस समय। कण्ठ अवरुद्ध हो गया था मेरा। रोमाञ्चित हो रहा था मेरा पूरा शरीर। अन्त में उस महापुरुष को अन्तिम प्रणाम किया मैंने और चरण-स्पर्श कर कक्ष से निकल आई मैं।

अपने गुरुदेव के अनुसार उसी समय तिब्बत से चल पड़ी नेपाल, भूटान, सिक्किम होते हुए अन्त में पहुँची मैं असम। वहाँ पूरे पचास वर्ष रहकर आ गयी तारापीठ के महाश्मशान वक्रेश्वर में।

इतना सब कुछ सुना कर हो-हो कर हँसने लगी नागगन्धा। खूब हँस लेने के बाद बोली—अब तक तेरा दम फूल रहा था न पूरी कथा सुनने के लिए। सुन लिया न। अब शान्ति मिली तेरी आत्मा को।

क्या उत्तर देता मैं। मैं तो जड़वत् था और था पाषाणवत् उस समय। कुछ न बोला जा रहा था और न तो कुछ कहा ही जा रहा था मुझसे।

और... और.... तभी एक प्रबल झटका लगा मेरे अस्तित्व को और उसी अवर्णनीय झटके के साथ ही जैसे गहरी नींद से जग गया मैं। आँखें खुल गयीं मेरी। साँझ की स्याह कालिमा धरती पर फैल चुकी थी। अब मेरे सामने थे, सुदूर तक फैले हुए आलू, ईख और धान के खेत, बहती हुई नदी, आपस में लड़ते-झगड़ते और भौंकते कुत्तों के झुण्ड और था पीपल का लम्बा-चौड़ा विशाल वृक्ष—जिसके नीचे पैर फैलाये बैठी थी पूर्ववत् नागगन्धा। जिसके एक ओर लुढ़की हुई थी कारणवारि की खाली हड़िया। चारों ओर वातावरण में बिखरी हुई थी घोर निस्तब्धता। सुदूर माँ तारा के मन्दिर के पीछे से चाँद झाँक रहा था—जिसके चारों ओर टिमटिमा रहे थे कुछ तारे।

कितना समय लगा था—इतनी लम्बी कथा सुनने में एक दीर्घआयुसम्पन्न कालंजयी योगिनी की। बस अधिक से अधिक दो घण्टे का समय। उस दो घण्टे में विभिन्न प्रकार की जो उपलब्धियाँ हुईं—उसका कोई मूल्य नहीं।

नागगन्धा की महासमाधि

एकाएक मेरी दृष्टि घूम गयी उस मानवेतर शक्तिसम्पन्न महाभैरवी की ओर।

हे भगवान्! यह क्या? अपने आप निकल पड़ा मेरे मुँह से।

भैरवी के नेत्र बन्द थे। मुँह थोड़ा खुला था। चेहरे पर साधना की चमक अवश्य थी, लेकिन किसी प्रकार का भाव नहीं था वहाँ। पैर पसरे हुए थे और दोनों हाथ सामने की ओर फैले हुए थे। कारणवारि की खाली हड़ियाँ टूट कर बिखरी हुई थी एक ओर।

सहसा न जाने क्या कौंध-सा गया मेरे मस्तिष्क में। अपलक निहारने लगा मैं भैरवी के मुँह की ओर। फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर न जाने क्यों, और न जाने कैसे निकल पड़ा मेरे मुँह से—माँ... माँ... माँ! भैरवी माँ। अन्त में विगलित हो उठा मेरा कण्ठ। और उसी विगलित कण्ठ से एक बार फिर पुकार उठा—भैरवी माँ...। मेरा आर्तनाद गूँज उठा उस सुनसान और नीरव वातावरण में। लेकिन भैरवी माँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा मेरे आर्तनाद का। पाषाणवत् और जड़वत् बैठी रही पूर्ववत् वह अपने स्थान पर।

भैरवी माँ का पूरा शरीर हिम की तरह शीतल हो चुका था। महासमाधि ले ली थी उन्होंने। लेकिन कब? यक्षलोक में अपनी कथा सुनाते समय...।

अन्त में रहा न गया मुझसे और संभाला न गया अपने आपको। उस महान् साधिका का और उस महान् आत्मा के चरणों को पकड़कर फूट-फूट कर रो पड़ा मैं और रोते हुए कहने लगा—माँ, तुम साक्षात् माँ हो। मेरा-तुम्हारा कब किस जन्म में कौन-सा सम्बन्ध था माँ यह तुमने नहीं बतलाया मुझे... कौन-सी ऐसी घड़ी थी—जब तुम योगभ्रष्ट हुई और मैं हुआ संन्यास मार्ग से च्युत...। मैं जानना चाहता हूँ माँ सब कुछ जानना चाहता हूँ। बोलो न माँ बोलो न कुछ...। कब तक मेरे शब्द बिखरते रहे और कब तक उनके साथ गूँजते रहे मेरे रुदन के स्वर, बतला नहीं सकता मैं।

साँझ का समय।

रामपुर रेलवे स्टेशन। अटैची रखकर चाय पीने गया उसी दुकान पर। उस समय वहाँ एक बुढ़िया बैठी चाय बना रही थी। उसके हाथ से चाय का प्याला लेते हुए पूछा मैंने—अब लड़की नहीं बैठती दुकान पर?

कौन लड़की? बुढ़िया सिर घुमाकर मेरी ओर आश्चर्य से देखती हुई बोली—कौन लड़की। अरे वही, बारह-तेरह साल की, जिसने अपना नाम बतलाया था श्यामा... मेरा वाक्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि बीच में ही बोल पड़ी बुढ़िया—यहाँ कोई ऐसी लड़की-वड़की नहीं रहती और न तो सबेरे-सबेरे मेरी दुकान ही खुलती है। जब खोलती हूँ तो मैं ही खोलती हूँ और जब बैठती हूँ तो मैं ही बैठती हूँ। इतना कहकर बुढ़िया अपने काम में लग गयी।

मैं भौचक्का-सा मुँह देखने लगा उस बुढ़िया का। तभी अपर इण्डिया के आने की आवाज सुनाई पड़ी। कब आया प्लेटफॉर्म पर और कब बैठा डब्बे में आकर अपने बर्थ पर और कब ट्रेन चली, इन सबका होश ही नहीं रहा मुझे। और जब तन्द्रा भंग हुई तो रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी। आकाश में चाँद निकल आया था और उसकी चाँदनी पसरी हुई थी धरती पर। चारों ओर घोर निस्तब्धता और उस घोर निस्तब्धता के सीने को चीरती हुई भागी जा रही थी अपर इण्डिया एक्सप्रेस अपनी गति से।

खिड़की के बाहर आकाश की ओर शून्य में अपलक निहार रहा था मैं। बार-बार आँखों के सामने नागगन्धा की छवि उभर आती थी और बार-बार याद आ जाती थी नागगन्धा की सारी की सारी कथा।

●

अरुणकुमार शर्मा
की
अन्य कृतियाँ

मारण पात्र

वह रहस्यमय कापालिक मठ

तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

मृतात्माओं से सम्पर्क

तीसरा नेत्र (प्रथम खण्ड)

तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)

मरणोत्तर जीवन का रहस्य

परलोक विज्ञान

कारण पात्र

कुण्डलिनी शक्ति

अभौतिक सत्ता में प्रवेश

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

Rs. 180.00
ISBN 81-7124-491-2
9788171244911
www.vvpbooks.com